
मुद्रक—श्री० सत्यमत, अम्बुदय प्रेस, प्रयाग ।
प्रकाशक—पं० रामनरेश त्रिपाठी हिन्दी-मंदिर प्रयाग ।

भूमिका

संस्कृत बहुत प्राचीन भाषा है। भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास इसी भाषा में है। प्राचीन ऋषियों और पण्डितों ने इस भाषा में ऐसे-ऐसे ग्रंथ लिखे, जिनसे भूमण्डल पर भारत-वर्ष का गौरव चिरस्थायी हो गया है। इस भाषा में शब्दों की संख्या बहुत ही अधिक है। प्रकृति, प्रत्यय और विभक्ति के संयोग से शब्दों की ऐसी रचना की जा सकती है जिनसे मनुष्य के हृदय के गूढ़ से गूढ़ भाव प्रकट हो सकते हैं। ऐसी शक्ति संसार की अन्य भाषाओं में बहुत ही कम है। संस्कृत भाषा के व्याकरण के समान पूर्ण व्याकरण तो संसार की किसी भाषा में नहीं। विद्वानों का कथन है कि संस्कृत ही समस्त आर्य-भाषाओं की जननी है। भारतवर्ष के लोग इस भाषा को देववाणी कहते हैं। कोई समय ऐसा था कि संस्कृत इस देश की साधारण बोलचाल की भाषा थी। पर अब यह मृतभाषा कही जाती है।

संस्कृत भाषा के ग्रंथ साधारणतः दो भागों में विभक्त किये जा सकते हैं—एक धर्मग्रंथ, दूसरे साहित्य। धर्मग्रंथ अठारह भागों में विभक्त हैं, जिन्हें अठारह विद्या कहते हैं। उनके नाम यह हैं—चार वेद, चार उपवेद, छः वेदाङ्ग, चार उपाङ्ग। चारों वेदों के नाम हैं—ऋक्, यजु, साम और अथर्वे। क्रमशः चारों उपवेदों के नाम हैं—आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, और अर्थशास्त्र। छः वेदाङ्गों के नाम शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, कल्प, ज्योतिष और छन्द, तथा चार

उपाङ्गों के नाम पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र हैं। इनमें से एक एक विषय में सम्यन्ध रखने वाले अनेक ग्रंथ हैं। धर्मग्रंथों में भी साहित्य विषयक बहुत सी बातें हैं और साहित्यग्रंथों में धर्म विषयक बातों की चर्चा है। फिर भी धर्म और साहित्य दो भिन्न भिन्न विषय माने गये हैं।

साहित्य-ग्रन्थों में मुख्य काव्यग्रंथ हैं जो दो भागों में बंटे गये हैं, एक को श्रव्य और दूसरे को दृश्य कहते हैं। श्रव्य काव्य तीन प्रकार के होते हैं—एक पद्यमय, जैसे रघुवंश आदि; दूसरे गद्यमय, जैसे कादम्बरी आदि; और तीसरे गद्य-पद्य-मय, जिन्हें चम्पू कहते हैं, जैसे नल-चम्पू आदि। दृश्य काव्य नाटक कहलाते हैं। कविता-कीमुदी का विषय केवल साहित्यिक है। साहित्य में भी श्रव्य काव्यों की ही चर्चा इस में की गई है, और उन्हीं में से उदाहरण उद्धृत किये गये हैं।

सम्पादक महाशय ने इस पुस्तक के लिखने में बहुत परिश्रम किया है। कवियों के उत्तम उत्तम श्लोक चुनचुन कर उन्होंने संग्रह किये हैं, जिनसे सहृदय पाठकों को अपूर्व आनन्द प्राप्त होगा। कवियों के समय-निरूपण में बड़ा मत-भेद है। प्रस्तुत पुस्तक के सम्पादक महाशय ने अपनी स्वतंत्र सम्मति प्रकट की है। खेद है, कि प्रक की कुछ अशुद्धियाँ ज्यों की त्यों रह गई हैं। जिनके लिये हम अपने पाठकों से क्षमा प्रार्थी हैं। अगले संस्करण में सब अशुद्धियाँ ठीक कर दी जायेंगी।

कविता-कीमुदी के प्रेमी पाठक इस पुस्तक के लिये बहुत दिनों से उत्साहित हैं। हमारे पास सैकड़ों पत्र आये

हैं जिनमें धेरी करने के लिये हमें उलझना दिया गया है। उनसे हमारा सविनय निवेदन है कि अनेक कार्यों में व्यग्र रहने के कारण हम साहित्य-सेवा में कुछ पिछड़ गये हैं अचर्य, पर हमारा उत्साह कम नहीं हुआ है। इसके बाद उर्दू या अङ्गरेज़ी की कविता-कौमुदी में से जो पहले तैयार होगी, पाठकों को सेवा में उपस्थित करने की हम तैयारी कर रहे हैं।

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग ।
रामनयमी, १९८१

}

प्रकाशक

हिन्दी-मन्दिर प्रयाग द्वारा प्रकाशित पुस्तकें



कविता-कौमुदी, पहला भाग-हिन्दी	३५
" " दूसरा भाग-हिन्दी	३५
" " तीसरा भाग-संस्कृत	३५
" " चौथा भाग-उर्दू (तैयार हो रहा है)	३५
स्त्रीकवि-कौमुदी—स्त्रीकवियों की जीवनी और कविताओं का संग्रह (तैयार हो रहा है)	३५
पर्यिक (खंडकाव्य)	३५
" राजसंस्करण, सचित्र, सजिल्द	३५
मिलन (खंडकाव्य)	३५
कुल-लक्ष्मी—विवाह से पहले पढ़ने की पुस्तक, सजिल्द	३५
दम्पति-सुहृद्—विवाह के बाद पढ़ने की पुस्तक "	३५
सुभद्रा—उपन्यास	३५
हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास	३५
हिन्दी-पद्य-रचना (पिण्ड)	३५
एहीम—सुप्रसिद्ध एहीम कवि की जीवनी और कविता	३५
भौति-शिक्षावली—नीति के श्लोक अर्थसहित	३५
आकाश की घाँटें —	३५
रात-कथा कहानी, पहला भाग	३५
" " दूसरा भाग	३५

श्रीम

रानी जयमती—उपन्यास, सजिल्द

रीडरें—बालकों के लिये

पहली पुस्तक—

दूसरी पुस्तक—

तीसरी पुस्तक—

चौथी पुस्तक—

कन्याओं के लिये—

कन्या-शिक्षावली प० भा०

" " दू० भा०

" " ती० भा०

" " चौ० भा०

सम्मेलन-परीक्षा तथा हिन्दी के सब सुप्रसिद्ध प्रकाशकों
को पुस्तकें मिलाने का एकमात्र पता—

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग ।

सूची ।

कवि	पृष्ठ	कवि	पृष्ठ
१ भकाल जलद	१	२२—धनञ्जय	१३५
२—भण्णय दोक्षित	६	२३—पद्मगुप्त	१४०
३—भमरक	६	२४—परिडित पात्रक	१४७
४—धमितगति	१७	२५—पाणिनि	१५५
५—अध्वक्षोप	२४	२६—प्रकाशदर्प	१६०
६—भानन्दवर्धन	३१	२७—बाणभट्ट	१६५
७—कन्हण	३६	२८—विलहण	१७२
८—कालिदास	४२	२९—भट्ट नारायण	१८२
९—कुमारदास	६५	३०—भट्ट भल्लट्ट	१८६
१०—कृष्णगिरि यति	१७	३१—भवभूति	१९२
११—क्षेमेन्द्र	७१	३२—भरहृदि	१९८
१२—गोवर्धनाचार्य	८६	३३—भारवि	२०४
१३—नन्दक	९२	३४—भास	२१२
१४—जगद्धर	९५	३५—भिशाटन	२१
१५—जगन्नाथ परिडित	१०१	३६—भोउ देव	२२
राज		३७—मङ्गक	२२०
१६—जयदेव (१)	११२	३८—मयूरभट्ट	२३१
१७—जयदेव (२)	११६	३९—मध्य	२३५
१८—जलहण	१२०	४०—मुरारि	२४६
१९—भट्टत्रिविक्रम	१२५	४१—मोतिका	२४६
दामोदर गुप्त	१२६	४२—राजानक रत्नाकर	२५०
१—दिपाकर	१३३	४३—राजशेखर	२६१

कवि	पृष्ठ	विषय
४४—लोटागुरु	२६७	मान
४५—पररुनि	२७२	उक्ति-प्रश्रुति
४६—वाल्मीकि	२७७	वगन्त
४७—पाशुरेश	२८१	प्रोज्ञ
४८—पिकट नितम्बा	२८४	वर्ग
४९—पिञ्जका	२९६	शरद्व
५०—विषादण्य	३०१	देमन्
५१—व्यासदेव	३११	शिशिर
५२—शिवस्यामी	३३८	चन्द्रमा
५३—शीला महारिका	३४३	बाहु
५४—धीदर	३४५	प्रिय भागमन
५५—सुयन्धु	३५३	प्रमान गणन
५६—सोमदेव भट्ट	३५६	मिथ
५७—हर्षदेव	३५८	हाम्य
कौमुदो-कुञ्ज		जाति
वक्रोक्ति	३६५	भाषति
कवि काव्य प्रशंसा	३६८	सेवा-पद्धति
मिथ	३७४	पहेली
दूती प्रेषण	३८१	नवोद्गा
विरही वन प्रलाप	३८४	प्रोषित-मर्हका
दूती वाक्य	३८६	संज्ञिता
वक्ता के प्रति प्रश्न	३९१	विप्रलब्धा
री	३९३	उत्कण्ठिता
	३९५	वास्तवसत्ता

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
अभिसारिका	४४७	कुर्यैद्योपहास	४६०
सामान्य घनिता	४५२	वैयाकरण	४६१
नैयायिक प्रशंसा	४५२	वीर प्रशंसा	४६४
नैयायिक निन्दा	४५३	जिह्वा	४६५
गणक प्रशंसा	४५५	मूर्ख-निन्दा	४६६
बुगणक निन्दा	४५७	दरिद्र-निन्दा	४७४
वैद्य-प्रशंसा	४५८	राजनीति	४८४

कवि	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
४४—लीलाशुक	२६७	मान	३६८
४५—चररुचि	२७२	उक्ति-प्रत्युक्ति	४००
४६—याल्मीकि	२७७	वसन्त	४०१
४७—वासुदेव	२८६	ग्रीष्म	४०४
४८—विकट नितम्बा	२९४	वर्षा	४०५
४९—विज्जका	२९६	शरदु	४१८
५०—विद्यारण्य	३०१	हेमन्त	४०६
५१—व्यासदेव	३११	शिशिर	४११
५२—शिवदयामी	३३८	चन्द्रमा	४११
५३—शीला भट्टारिका	३४३	चाटु	४१३
५४—धीदय	३४५	प्रिय आगमन	४१४
५५—सुयन्धु	३५३	प्रभात वर्णन	४१५
५६—सोमदेव भट्ट	३५६	मित्र	४
५७—हर्षदेव	३५८	हास्य	४
कौमुदो - कुञ्ज		जाति	४
बक्रोक्ति	३६५	आपत्ति	४
कवि काव्य प्रशंसा	३६८	सेवा-पद्धति	४
मित्र	३७४	पहेली	४
दूती प्रेषण	३८१	नवोदा	४
विरही का प्रलाप	३८४	प्रोषित-मर्तृका	४
दूती वाक्य	३८६	खंडिता	४
सखी के प्रति प्रश्न	३९१	विपलब्धा	४
स्त्री	३९३	उत्कण्ठिता	
स्त्री-प्रशंसा	३९५	धासव-सज्जा	
स्त्री-रूप	३९५	स्वाधीन पतिका	

कविता-कौमुदी

अकाल जलद

अकालजलद का असली नाम क्या था, इसका पता अभी तक नहीं चल सका है। सुभाषित ग्रन्थों में इसके नाम से जो श्लोक उद्धृत किये गये हैं, उनके साथ कर्ता का नाम “दाक्षिणात्य” लिखा है। इन्होंने कोई ग्रन्थ बनाया था कि नहीं, अभी तक इसका भी पता नहीं लगा है।

ये महाकवि राजशेखर के पितामह थे। राजशेखर ने बालरामायण की प्रस्तावना में अपना परिचय इस प्रकार लिखा है—

“स मूर्ध्ना यत्तापीह गुणगण इवाकालजलदः
सुरानन्दः सोऽपि ध्वजपुर पेयेन दधमा ।
न चाग्रे गण्यन्ते नरकं कविराजप्रभृतयो
महाभारतस्मिन्नपमवनिः पापावरकुले ।

इस श्लोक में अकालजलद गुणी बतलाये गये हैं। ये दक्षिण देश के निवासी थे और यायावर कुल में उत्पन्न हुए थे। ये नया सदी में उत्पन्न हुए थे।

उनका अकालजलद नाम नहीं था, किन्तु एक श्लोक इन्होंने बनाया और उस श्लोक में अकालजलद शब्द का चढ़े

कविता-कौमुदी

अकाल जलद

अकालजलद का असली नाम क्या था, इसका पता अभी तक नहीं चल सका है। सुभाषित ग्रन्थों में इनके नाम से जो श्लोक उद्धृत किये गये हैं, उनके साथ कर्ता का नाम “दाक्षिणात्य” लिखा है। इन्होंने कोई ग्रन्थ बनाया था कि नहीं, अभी तक इसका भी पता नहीं लगा है।

ये महाकवि राजशेखर के पितामह थे। राजशेखर ने बालरामायण की प्रस्तावना में अपना परिचय इस प्रकार लिखा है—

“स मूर्खा यत्नामीह गुणगण द्वाकालजलदः
सुरानन्दः सोऽपि ध्रुवपुर पेयेन दधमा ।
न चाम्ये गण्यन्ते तलं कविराजप्रभृतयो
महाभागस्तन्मिथप्रमज्जति याथावरकुले ।

इस श्लोक में अकालजलद गुप्ती बनलाये गये हैं। ये दक्षिण देश के निवासी थे और याथावर कुल में उत्पन्न हुए थे। ये नर्या सदी में उत्पन्न हुए थे।

इनका अकालजलद नाम नहीं था, किन्तु एक श्लोक इन्होंने बनाया और उस श्लोक में अकालजलद शब्द का ब्रह्म

अकाल जलद ।

अच्छे ढंग से विन्यास किया । वह ढंग लोगों को बहुत पसन्द आया; तब से इनका नाम ही अकालजलद पड़ गया । इनका यह नाम इतना प्रसिद्ध हुआ कि उसने इ असली नाम का लोप कर दिया । वह श्लोक नीचे लिए जाता है ।

“ भैरवैः कोटरशाविमिश्रं तमिरश्मान्तर्गतं कष्टपैः
पाठीनैः पृथुपक्ष्मपौडलुडिनैर्वन्मिन् मुहुर्मुहं चिंतम्,
तस्मिन् शुष्कमरम्यस्त्राज्जदं नागत्य तच्चिंतम्,
यन्माकण्डनिमग्नपद्मपरिणां रूपैः पयः पीयते ।

यहाँ अकाल जलद के कुछ मनोहर श्लोक उद्धृत किये जाते हैं—

मुग्धे मुग्ध विषादमत्त पलजिह्वयो गुग्गुलुज्ज्वला
मन्त्राय हिल पुण्डरीकनयने माध्यानिनान्मानय ।
लक्ष्मी बोधदगः स्वयंवापिधौ धन्यन्तरंवांश्छला-
द्वयस्य प्रतिषेधमात्मनि विधिं शृण्वन्तरिः पातु वः ॥ १ ॥

मुग्धे ! विषाद छांड़ो, थल मोंडनेवाले इस कंठ का त्याग करो, पुण्डरीकनयने ! उसमें यन्त्रां करो; इन मानतीयों का आदर करो, स्वयंस्वर के समग्र धन्यन्तरि ने इस प्रकार पाण्डाल में लक्ष्मी का समभाया जा दूसरों के लिए प्रतिषेध हुआ उसको अपने लिए विधि गुनने हुए विष्णु तुम्हारी रक्षा करें ।

मन्त्रात्प्राप्तनीयं मातु मुविशं जंघं धरायामिदं
कोट्यः दण्डं मर्दं तरेव पठेत् कर्मदूरी दुष्कर्म ।
मन्त्रेणैव विधानि यानि पन्थिजिह्वायि समाश्रयिः
मन्त्रांनीयविधेनुज्ज्वलितगारयेत्यथां दृष्टयः ॥ २ ॥

उपानी में प्रवेश ! तुम धन्य हो, पृथिवी के सुदिमान
तुम्हारा ध्यान करे मे । दूसरा चीन ऐसा कर सकता है ! यह
कठिन काम तुम्हें ही शोभता है दूसरा चीन ऐसा कर सकता
है मयसे लाभ पहुँचानेवाले मेलों पर तो तुमने पथर पर-
माणे और किसी को लाभ न पहुँचानेवाले दान के वन में
तुमने पानी चम्पाया ।

भैरवः होतुर्भाविभिर्भूमिभिः समस्तभूमि ॥ १ ॥

प्राचीनैः पुरैश्चैतुर्दिग्भिर्भूमिभिः सुदुर्लभैः ॥

नमिमांस्तु कुरुत इत्येतद्देवाणां तपसिर्जन

वेनाश्चैतन्निमानन्दस्यैवित्ति ॥ १ ॥

फोटर में रहने वाले मेदक मरने के समान हो गये। फलपुत्र
पृथ्वी के भीतर चुम्ब गये, गडलियां कीचड़ में लोट लोट
कर जिस तालाब में झुलझुल हो गयी थी, उस तालाब
में भाकर भकाउलझड़ में यह काम किया, जिनमें हाथियों
का दूध गला हुआ हुआ कर वानों की रहा है ।

पञ्चभूत भूतनिष्ठाः स्वाशान् विशम्भु प्रभा

भान्मयी शिरसा प्रणम्य कुरु मामिच्छस्यवासे पुनः ॥

महावीर्यं पयस्वीश्वसुरं शोचिष्मदीवालप

स्वोक्तिं ज्ञानं नदीयं चर्मनि घरा गणान्भूमिनिष्ठम् ॥ ४ ॥

शरीर नष्ट हो जाय, पञ्चभूत पञ्चभूतों में मिल जाय, पर
विधाता ! प्रणाम करके मैं आपसे यह माँगता हूँ कि भाव
मुझे उसके तालाब का जल, उसके दर्पण का प्रकाश, उसके
घर के आकाश का आकाश, उसके मार्ग की भूमि और उसके
पंखों की दवा बनावे ।

अप्य दीक्षित

अन्य दीक्षित दक्षिण के नियामों में और शीघ्र थे । इन्होंने अनेक ग्रन्थ बनाये हैं । येदान्न, अन्नद्वार आदि चिह्नों के इनके ग्रन्थों में से कतिपय ग्रन्थ गायें गये हैं । इनके भाई का नाम नीलकण्ठ दीक्षित था । इन्होंने नीलकण्ठ दीक्षित के पीछे नाग-यण दीक्षित ने नीलकण्ठचम्पू नामक ग्रन्थ बनाया है । उन्होंने चम्पू के बनाये जाने का समय १६३७ बतलाया है । इस अनुमानतः अन्यदीक्षित का समय सोलहवीं सदी का अन्तिम भाग निश्चित किया जाना चाहिए ।

अप्य दीक्षित के ग्रन्थ

- | | |
|------------------------|-----------------------|
| १ आत्मार्पण स्तुति | १३ रत्नाग्रयणी |
| २ उपक्रम पराक्रम | १४ रसिकरञ्जनी |
| ३ कुसुमयानन्द | १५ रामायणसारस्वत |
| ४ चतुर्भुजसार संग्रह | १६ घरदराजशतक |
| ५ चन्द्रकुलस्तुतिः | १७ वादनक्षत्रमालिका |
| ६ चित्रमीमांसा | १८ विधिरसायन सुरयोपजी |
| ७ वृशकुमारचरितसंक्षेप, | १९ वीरसाव |
| ८ नामसंग्रहमाला | २० वृत्ति वातिक |
| ९ प्रहसितकस्तव, | २१ वैराग्यशतक |
| १० भक्तिशतक | २२ शब्दप्रकाश |
| ११ भारततात्पर्यसंग्रह | २३ शारीरिकन्यायरक्षाम |
| १२ मध्यमतविध्वंस | २४ शिवकर्णामृत |

२५ शिवतत्त्वविवेक

२८ शिवार्चनचन्द्रिका

२६ शिवादित्यमणिदीपिका

२९ सिद्धान्तलेशसंग्रह

२७ शिवाद्वैतनिर्णय

३० हरिद्वंशसारचरितम्

यहाँ इनके कुछ मनोहर श्लोक उद्धृत किये जाते हैं:—

के घोराः के पिशुनाः के रिषः केऽपि दायादाः

जगद्विह्वलस्य यशो यस्य यशो स्यादित्थं चेत्तः ॥ १ ॥

घोर कौन है, चुगलखोर कौन है, शत्रु कौन है, और भाई बन्धु कौन हैं ? यह समस्त संसार उसके यश में है, जिसने अपने चित्त को अपने यश में कर लिया है ।

पुष्पति पुरुषे सलिलैर्मुष्णति पुष्पं फलं यः सत्तु इव

वर्तन्ते सन्तः सममुपकर्तारि चापकर्तारि च ॥ २ ॥

जिस प्रकार पुष्प जल से सींचने वाले अथवा फल फूल तोड़ने वाले दोनों के साथ समान व्यवहार करता है, उसी प्रकार अपकार करने वाले या उपकार करने वाले दोनों के साथ सज्जनों का समान व्यवहार होता है ।

पितृभिः कलहायन्ते पुत्रास्तथाप्यमन्ति पितृभक्तिम्

परदारानुषयन्तः परन्ति शास्त्राणि दारैः ॥ ३ ॥

पिता के साथ तो पलट किया जाता है, और पुत्रों को पितृभक्ति पढ़ाई जाती है। स्वयं परस्त्री का उपभोग करते हैं, और स्त्री को शास्त्रोपदेश सुनाते हैं ।

नीतिशा नियतिशा वेदशा अपि भवन्ति शास्त्राः

महाशा अपि शम्वा स्याज्ज्ञानशानिनो वित्ता ॥ ४ ॥

नीति जानने वाले हैं, भाग्य जानने वाले, वेद जानने वाले और शास्त्र जानने वाले भी हैं ब्रह्म को भी जानने वाले मिल सकते हैं, पर अपने अज्ञान को जानने वाले बहुत कम हैं ।

अशनीत पिवत खादन जाग्रत संविशत तिष्ठत वा
सकृदपि चिन्तयतान्हः सावधिक्को देहबन्ध इति ॥ ५ ॥

साओ, पाओ, जाओ, बैठो, उठो, पर दिन में एक बार
यह बात सोच लो कि इस शरीर का नाश निश्चय है ।

भोगाय वामराणां योगाय विवेकिनां शरीरमिदम्
भोगाय च योगाय च न कल्पते दुर्विदग्धानाम् ॥ ६ ॥

मुलों के लिए यह शरीर भोग साधन है और विवेकियों
के लिए योग का साधन है । पर दुर्विदग्धों के लिए न तो यह
भोग का साधन है और न योग का ।

अयुतं नियुतं वापि प्रदिशन्तु प्राकृताय भोगाय ।

प्रोक्षन्ति न जिह्वलैः कैश्चि पश्यन्मूत्राः ॥ ७ ॥

संगार के भोग के लिए तो मृदजन हज़ारों लानों
पर दिया करते हैं । पर पाँच छः शिल्पपत्र से मुक्ति
मही नहीदी जाती ।

यद्वाः कथमद्वा कथमिष्येनुयुक्तं यथा देशम् ।

कोटूक् कृतान्तपुरमिति कोऽपि न जिज्ञासते लोकः ॥ ८ ॥

यद्देश केमा है ? अद्देश ? केमा है ? इस प्रकार स्थान
देशों के संबंध में प्रश्न किया जाता है । पर यमराज की पु
केमा है ? इस विषय में कोई भी मनुष्य कुछ प्रश्न नहीं करता ।

त्यक्तायां ममकारभ्यक्तुं यदि शक्यते पाणी
कथंस्या ममकारः किन्तु न सर्वत्र कथंस्याः ॥ ९ ॥

मममाय (यह मेरा है, मेरा भाग) का त्याग कर देना
चाहिए । यदि उसका त्याग करना कठिन हो तो ममता
करना चाहिए और यह सर्वत्र करना चाहिए । समस्त
संगार का अवन ममभना चाहिए ।

पुत्रा इति दाता इति पोष्यान् मूर्खो जनान्ब्रूते
अग्रे तमपि निमग्नयात्मा पोष्य इति नावति ॥ १० ॥

मूर्ख मनुष्य पुत्रों और स्त्रियों की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते हैं, पर अज्ञान में डूबने अपनी आत्मा की रक्षा करना अपना कर्तव्य नहीं समझते ।

अमरक

अमरशतक नाम से एक पुस्तक इनकी प्रसिद्ध है । उसमें इनके बनाये स्फुट श्लोकों का संग्रह है । ये सब श्लोक शृङ्गार के हैं । इनकी कविता बड़ी ही उत्तम होती थी । ये जाति के सोनार थे । इनके विषय में लिखा है “विश्वप्रण्यत-माहीन्धमबुलतिलको विध्यमर्गः। तीयाः” । इनके विषय में एक किंवदन्ती प्रचलित है । कहते हैं, शङ्कराचार्य से शास्त्रार्थ करने के लिए जयमण्डन मिश्र की स्त्री तैयार हुई और उन्होंने कामशास्त्र के प्रश्न किये तब शङ्कराचार्य ने कुछ समय मीठा । ये सन्यासी थे । उन्हें कामशास्त्र की बातें मालूम नहीं, अतएव उन्होंने नेपाल के राजा (जिनका उसी समय वेदान्त हुआ था) के शरीर में प्रवेश किया और कामशास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया । इस किंवदन्ती में कितनी प्रामाणिकता है, इसका निश्चय पाठक करेंगे ।

ये कवि नवमशतक के हैं । आनन्दवर्द्धन ने अपने ध्वन्यालोक में इनके श्लोक उद्धृत किये हैं । इससे ये नवमशतक में प्रसिद्ध थे यह बात साबित होती है । ऐसी दशा में शङ्कराचार्य के ये समकालीन नहीं हो सकते ।

हैं, थोड़े ही दिनों में मेरा जाना होगा यह जानकर तुम शोक मत करना । श्रिय की यह बात सुनकर मुन्हा ने यह किया जिससे दूसरों के सभी फल अकस्मान् समाप्त हो गये । अर्थात् वह मर गया और दूसरे पथिकों का ज्ञाना यन्त्र हो गया ।

लोलाक्षया गुण्यनिषौ मम हृत मोदत्रमन्यादृशं

मलाकाक्षया न जानि करणाः कर्तुं नरा पारिताः ।

प्रणानाभितुरस्य संततगलदाप्नोयथा मुग्धया

हीरोष्णरथमितैरसद्य मदनव्याधिः समावेदितः ॥ ३ ॥

नायक घर से चलने के समय की घाने' पाइता है—जबमें चलने की सैरार हुआ, तब यशस्वालों ने मुँह भारी नहीं किया । क्योंकि वहाँ माता पिता भादि थे । इससे यह अति शोक घाने भी न कर सकी । केवल भाँसुओं की धारा पहाती रही और लम्पे और गर्म हवाओं से मदन-व्याधि की असहनीयता उमने बनलाई ।

भादृष्टि प्रसताग्निपरप पदवीमुदीक्ष्य निविर्णवा

विम्लिम्बेणु पथिष्यदःपरिणतो पराम्ये समुत्तरति ।

दारेकं सनुया गृहं प्रतिरहं राग्यक्षिप्यदिम्लहने

माभूरागन इत्यमन्दपठित्तामीष पुनर्वांरितम् ॥ ४ ॥

अहाँ तक दिखायी पड़ता था वहाँ तब उसने पनि के मार्ग को देखा । तदन्तर यह दुःखी हुई, दिन टल गया, अन्धकार फैलने लगा, इससे रास्ता साफ़ साफ़ दिखायी न पड़ा । पुनः दुःख से पथिक की हवी में घर यन्त्र विधा । उसी समय उसे सन्देह हुआ कि वहाँ भाये तो नहीं, इससे पुनः वह फिर घर देखने लगी ।

चदुलनयने शून्या दृष्टिः कृता खलु केन ते
 क इदं सुकृती द्रष्टव्यानामुवाच पुं पराम् ।
 यममिद्विनितप्रम्यैरद्वैतं मुयमि चेत्तसा
 वदनकमलपापी कृत्वा निमीलितलोचना ॥ ५ ॥

हे सुन्दरनेत्रे, किसने तुम्हारी आँखों को शून्य बनाया?
 फौन पुण्यान्मा द्रष्टव्य दन्तुओं को खीसा बना हुआ है!
 अर्थात् यह सुन्दर पुरुष यौन है जिसका ध्यान तुम कर रही
 हो। चिपलियाँ खत के समा। टोंक-जिसमें तुम हृदय से नहीं
 छोड़ती और हाथों पर मुगकाल रखकर तथा भाँसे पन्द
 कर जिसकी तुम पूजा कर रहे हो।

अथोन्मयमिनाहगाद्भुलिनमन्वाभिद्योम्भोरति,
 स्थरपोद्गामविक्रमिगाधरदलं निरेन्दुगुणं मुगम् ।
 आमोलाप्रपनीनयान्तगतिर्न अतान्दश्य निन्दयत्य वा
 बन्धेदं हृदसादिदं प्रतिदिनं दीनेत्याया स्मर्यते ॥ ६ ॥

लिप्ती यिरहिणी में फोड़ पड़ता है - दोनों हाथों की भँगु-
 लियों को मिलाने से नमिल हुए हाथों पर तुमने अपना मुक्त
 रखा है, जल्दी जल्दी नाँस के चलने में अधर काँप रहा है,
 दुःख में मुँह किट्ट हो गया है, पन्द आँखों के फोनों से मधु-
 घारा पड़ रही है। इस प्रकार तुम जिस शच्छे या पुरे मनुष्य
 की मित्रता का प्रतिदिन दीनता पृथक् स्मरण वि-
 करती हो?

निजपागा पदनं ददति हृदयं निमृष्टमुन्मथ्यते
 निद्रा नैति न हृदये प्रियमुत्तं मगदिनं ददपने ।
 अष्टं शेषमुपेति पादाग्नितः प्रेषात्तदोपेक्षितः
 एकरः पुरयनाकट्य द्रविते मानं वर्ष कादिताः ॥ ७ ॥

मौन भुंत्तु यो उक्ता गते हि, समुवा हृदय दाक गदा हि,
नीद गतो मानी भीर प्रिय वा मुन मों दिव्याया गता पदना,
दिव्याय यो गता हों, येन गृह्य गते हि, उम मनस पर पर पदे
दुष्ट प्रिय यो धार मेने देवता गत. गता, सतिगता । विम गुण के
भोगोंमें मूम गतो ने हमसे प्रिय पर मान पगया ।

हृदय गरी हृदये गतगति दमना-शयेन लं सत्त,

मात्रे मोदति दमनाभूकनय दिव्यामुन भुदति ।

कौमुदी गति दुर्भेदगता मान, न मुनः मय

दमनाभा यदि मोदति श्रित्तमे दमनाभय मंमन. ४ ४ ॥

हृदय योद गता हि, दात गता विवगता, उदिवता यो मन
मद गता गता हि, मय गतिगता यो गते हि, भगिों मे भगि मर
गता हि, विगता यो भुंत्तु गता गता हि, हि गता विगता मान के
काने के दाते मेने यह दमा हि, उमवा मेने गता विगता । ये
विगता गता मे ध.प हि लो मान न क गता उमिन गममगी हि ।

मदनाभ यदि श्रित्तमे दमनाभय कानय वा,

हृदये विवगति. ४ (मंमोदि मंमोदि. ४ ।

मन के विगता मयभुविगताद्विगता विगता,

येदे वा दिवता: दमं दमतिने दमनाभय दमति. ४ ५ ॥

प्रिये, भौत यो म दिवता यो मयभुविगता भौत मन यो मयभु
कानेवागे मान वा भौत विगता वा मान न गता । यदि मं
मो गताके दिवता मयभुवा यो मयभु विगता मयभुवा यो
मय मान वा मेने मे मयभु. ४ यदि मयभुवा मे मेने मेने ।

मयभुविगतादिमयभुवा मयभुविगतादि मयभुविगता

मे मयभु. ४ मयभुविगतादि मयभुवा मेने मेने मयभुविगता ।

मानो तोनि अनो न माराभगादभ्येनि मानः मय
काशे यानि धर्मेन चोत्तिमिति सुग्न मनश्चिन्ता ॥१०॥

मैं मानरुपी रोग में दूरी हूँ, मैं व्यय उनके पास
समय नहीं जा सकनी और कोई चतुर सगी भी नहीं है
अपरदस्ती मुझे ले जाय। ये भी मानी हैं, अपनी लघुता के
में नहीं आते। समय यान रहा है, जीवन चञ्चल है, इन विचारों
में मेरा मन चंचल हो रहा है।

सुखे सुगन्धयैव नेनुमन्वितः काशः विमारभ्यते
मानं घत्स्व एति विधान कमुगां दुरीकुल प्रेषयि ।
सख्यैव प्रनियोधिता प्रतिवचस्नामाह भीतानना
नीचैः शयं हृदि मितो हि ननु मे प्राग्नेश्वरः श्रोष्यति ॥११॥

बाले। क्या बालपन से ही समस्तकाल पिताना चाह
हो। मान करना साँखो, धैर्य धारण करो, प्रिय के प्रति सिधा
अच्छी नहीं। सखी ने जब इस प्रकार समझाया, तब डरती
डरती वह बोली, धीरे धीरे बोलो, नहीं तो हृदय में रहने वाले
प्राग्नेश्वर तुम्हारी ये बातें सुन लेंगे।

चपलहृदये किं स्वातन्त्र्यात्तथा गृहमागत-
अरण्यरतिः प्रेमादांदिः प्रियः समुपेक्षितः ।
तविदमधुना पाचमीव निरस्तमुल्लोदया
रुदितशरणा दुर्जातानां सहस्र रुपां फलम् ॥१२॥

चञ्चल हृदयवाली। प्रिय घर में आया था, वह तुम
चरणों पर पड़ता था, पर उस प्रेमी प्रिय को तुमने उपे
क्षित, अब तुम्हारे जीवन से सब सुख दूर हुए, अब रो
ने और अपने क्रोधों का फल भोगो।

पत्रं न भवनेस्ति बाष्पगुह्योर्नो नेतयोः कर्मत्व

रागोर्ध्वं द्वापरे चरयो रज्ज्वा न बाष्पकः ।

भासोऽस्ति नित्यं निष्ठुरेति भवता मिथ्यैव संभाव्यते

सालेन लिखतु प्युतोऽवरया न्यायेन केनापुनः ॥१३॥

कानों में गहनें नहीं हैं, आँसुभरे आँखों में काजल नहीं रहले के समान आँख पर लाली भी नहीं है, पैरों पर महा-भौ नहीं है, सिर्फ़ याते' न करने के कारण तुम्हारा को निष्ठुर समझना झूठा मतलब होता है । यह जब पत्र इतने लगती है, तो हाथ से पत्रम पड़ता छूट जाते हैं, अब किस प्रकार लिखे ?

प्रज्ञाने नयने विषाण्डुरणः क्षामं कपोलद्वयं

घास्ते बाहुल्ये शिरोऽदपयो व्यस्तारितिः स्रजः ।

सैव मद्रुगमपार्श्वपादि हि द्वाभामभ्यां समांतरिता

याने वा मयि जीवतीति वचनं भावं संभाव्यते ॥१४॥

भाँसे मलिन हो गयी हैं । आँसु पीछा पड़ गया है । हाँ गाल दुर्बल हो गये हैं । चौद फंघे से उतरी हुई माँ नुम होनी है । तिर के बाल उदाभे हुए हैं । मेरे जाने की न, सुनफार ही तिरापी ऐसी दशा हो जाती है, जो मरने ली है, यह मेरे चलने आने पर जीती है, मारे ! यह बात खर नुम नहीं पड़ती ।

राजाः किं न मिश्रिन्ति सुन्दरि पुनश्चिन्ता तददा स्मृतं

मेा बापों जिनकी कृशामि वपदायेव मदाने मयि ।

मज्जामपराधारेण विदुषीताधुना पशुना

इहा मां हविनेन भावि मरणावतादभवा हविनः ॥१५॥

गये हुए पुनः मिलते हैं इसलिए हे सुन्दरी ! तु
चिन्ता मत करना । क्योंकि नुम बहुत दुर्बल हो
आँसू भर कर जब मैंने यह कहा, तब लज्जा से उस
स्थिर हो गई, गिरते आँसू का उसने पी लिया
और देखकर हँसती हुई भारी मृत्यु के लिए अपना
बतलाया ।

अच्छिन्नं नयनाम्बु यन्धुषु कृतं तापः सखीप्राहितो
भ्यास्तं दैन्यमशेषतः परिजने चिन्ता गुरभ्योपिता ।
अदृश्यः किल निरुनि प्रजति सा आसौः परन्विद्यने
त्रिस्तम्भो भव विप्रयोगजनितं दुःखं विभक्तं तया ॥ १६ ॥

सदा सहनेवाली अश्रुधारा यन्धुओं को दे दी, त
सखियों में रस दिया, अपनी समूची दीनता साथ सहनेवा
को दी, माता पिता आदि को उमने चिन्ता अर्पित क
आप्तफल यह बहुत सुखी है, केवल प्राण फट्ट दे रहे हैं
आर निश्चिन्त रहे । विपोग व्यथा को उसने इस प्रकार बाँट
दिया है ।

अमरुतो माय न च सत्रु गुणैरेव श्रिताः
प्रियो मुक्ताहारस्वय चरणमुखे निरतिताः ।
दूरागेर्म गुणे सत्रु निजदृष्टप्रत्ययिता-
मुतापं सामान्यभारवै हृदयमनापशमने ॥ १७ ॥

यह सुरा नहीं है और गुणहीन भी नहीं है। यह प्रिय
मुक्ताहार मुग्धाने चरणों पर पड़ा है । इसको उठा लो और
गले में धारण करो । मुग्धाने हृदय के भग्नाप को दूर करने के
लिए दूराग उपाय नहीं है । दूसरी प्रिय के सामने नायिका को
बनुरता में समझानी है ।

तो इससे प्रसन्न हो जाओ, अपना धाम है, नहीं तो पछताना पड़ेगा ।

क प्रस्थितासि करभोरघने निशोधे प्राणाधिकेऽ वगति यत्र निजः प्रियो मे
एकाकिनी यद् कथं न विभेषि बाले शूरोस्त्रि बुद्धितशरेऽ मदनःसहायः ॥१८॥

हे करभोर ! इस अंधेरी रात में यहाँ के लिए तुमने प्रस्थान किया है ? जहाँ प्राणाधिक प्रिय रहते हैं । बाले तुम अकेली हो, डर नहीं लगता ? शूर कामदेव धनुर्बाण लेकर साथ है ।

अमितगति

ये एक जैन ग्रन्थकार हैं । ये घारा नगरी के प्रसिद्ध राजा भोजदेव के चाचा मुंजदेव की सभा में थे । इन्होंने धर्म-परीक्षा, सुभाषितरत्नसन्दोह, धावकाचार आदि ग्रन्थ लिखे हैं । इन्होंने सुभाषितरत्नसन्दोह के अन्त में उसकी समाप्ति का समय इस प्रकार लिखा है:—

समारुदैतस्मिँरुग्रिदशवसतिं विक्रमनूपे
सदस्त्रे वर्षाणां प्रभवति हि पञ्चाशदधिके
समाप्तं पञ्चम्यां भवति धरणिं मुंजमुपती
सिते पक्षे पीपे बुधदितमिदं शास्त्रमनघम् ।

विक्रम के स्वर्गारोहण के एक हजार पचास वर्ष धीतने पर, मुंजराज के राज्य के समय पीप शुक्ल पञ्चमी के दिन निर्मल और चिदानों का हितकारक यह शास्त्र समाप्त हुआ । अर्थात्

विक्रमी १०५० संवत् में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ, जिसका
सन् ६६३ होता है ।

यहाँ इनके कुछ उत्तम श्लोक दिये जाते हैं ।

कोपास्ति यस्य मनुजस्य निमित्तमुच्छी,
नो तस्य कोऽपि कुरते गुणिनोऽपि भक्ति ।
आशीर्विषं भजति को ननु दंदशूकं,
नानोमरोगशमिना मणिनापि युक्तं ॥ १ ॥

जो मनुष्य बात बात में क्रोध करता है, अपनी और दूस
की आत्मा को दुःख पहुँचाता है, यह मनुष्य चाहे गुणी—अने
गुणों का भण्डार भी क्यों न हो; कोई उसकी भक्ति—सेवा
शुभ्रूपा, नहीं करता, क्योंकि उससे अशांति का भय रहता
है । देखो, नाना प्रकार के रोगों को शांत करने वाली मणि
से शुक भी दंदशूक जाति के सर्प को कोई नहीं पालता या
पकड़ता, क्योंकि वह हानि पहुँचाता है, विष से संयुक्त होता
है और पकड़ने पर मनुष्य को काट लेता है ।

पुण्यं चित्तं व्रततपोनियमोपवासीः
क्रोधः क्षणेन दहतीधनयद्दत्ताशः ।
मत्वेति तस्य वशमेति न यो महात्मा
तस्याभिष्टुद्धिमुपयाति नरस्य पुण्यं ॥ २ ॥

जो महात्मा पुरुष यह सोचकर कि, “जिस प्रकार
अग्नि ईंधन के समूह को क्षण भर में जलाकर भस्म कर देता
है, उसी प्रकार यह क्रोध भी धन, तप, यम, नियम और उप
वासों द्वारा उत्पन्न हुए पुण्य को बात की बात में नष्ट कर देता
है, उसके वश नहीं होता—क्रोध नहीं करता—यह (महात्मा)
अपने पुण्य की वृद्धि करता है; उसका पुण्य बढ़ता है ।

दीर्घं न न भूतलनी तिर्य्योऽपि रराः कुर्वन्ति चेन्मरिचोद्गमोऽपि वा ।
 चर्चं विहस्य भावभावदायकं च संस्मृत्य विदुषां निमग्नोऽपि ॥ ३ ॥

इस संसार में इन तीन का शिखर अर्द्ध (दानि) को धर
 करना है, उनसे न तो कुपित हुए बाधा और न शत्रु ही कर
 सकते हैं, न सिद्ध, दानों और साध हो कर सकते हैं, क्योंकि
 वे तो अधिक से अधिक यदि दानि कर सकते हैं तो एक भय
 जन्म में केवल प्राणी ही का ध्यान कर सकते हैं और यह बांध
 हो संसार की धन का उल्लाने धाने धर्म का नाश कर
 जन्म जन्म में नाश पुनः देना है ।

यः कारयेत् शिखेति एवं मनुष्यः
 बोद्धव्यं शमनं तद्भावात्
 यन्त्र कुर्वन्ति विना निमित्तमनी
 नो तत्र बोद्धव्यं शमनं विदुषां मीमांस ॥ ४ ॥

जो मनुष्य ऐसे तो नर्पश शांत रहना है, परंतु किन्
 कारणवश दुःख हो जाता है, तो उसका यह बांध उस कारण
 के नष्ट हो जाने से नष्ट हो जाता है परंतु जो मनुष्य बिना
 कारण ही कुपित होता रहता है, उसके बांध को बोन शांत
 कर सकता है ?

भावात्तदोपमवदुःखमुर्धति मन्वे
 मानेन तर्पयन्निन्दितवेरस्यः
 विद्यादवाधमवमादिगुणोप इति
 शाब्देति गर्पयामेति न सुखबुद्धिः ॥ ५ ॥

मनुष्य मान के कारण मानसिक पीड़ा, कोप, भय, और
 दुःख को मान होता है, निन्दित रूप और घेप को धारण करता
 है, पर्य विद्या, दया, धर्म आदि समस्त गुणों से हाथ धो बैठता

है । इस लिए जो ध्येष्ट गुदियालें पुरान हैं, ये काम करने । ये सदा अपने को अगुणी ही समझा करते

लोकाधिपतिऽपि कृत्वाऽपि बहुधृतोऽपि,
धर्मस्थितोऽपि धिगतोऽपि भ्रामान्वितोऽपि ।
अभयं पद्मगतिरादुष्टिनो मनुज-
मन्त्रादि इमं कृते न वदत इदम् ॥ १ ॥

इन्द्रियविषय रूपी सर्प के विष में पीड़ित लोग न नीच काम भी कर डालने हैं, और यहाँ तक कि अपने ही सम्मान, पुन्योन्नता, पाण्डित्य, धर्मात्मापन, विरागिता, भादि समस्त गुणों को बिलकुल भूल जाने हैं, अर्थात् लौकिक सम्मानादि गुणों से विशिष्ट पुरुष भी विषयों में फँस निषेध काम करने में नहीं चूरते ।

लोकाधिपतिं गुरुजनं पितरं मन्त्रि-
वन्दुं सनाभिमतुलं मुहूर्तं स्वमारं ।
मृत्युं प्रभुं तनयमप्य जनस्य मन्त्र्यो,
नो मन्यते विषयवैरिबशः वदाचित् ॥ २ ॥

इन्द्रिय विषय भोग रूपी घेरी घे पक्ष में पहुँच कर मनुष्य अपने हित और प्यारे लोग जो गुरु, माता, पिता, भाई, बहिन, स्त्री, पुत्र, मित्र, स्वामी, सेवक आदि हैं उन्हें भी भूल जाते हैं और इनकी कुछ भी चिन्ता नहीं करते ।

नेन्द्रियाणि विवितान्यतिदुर्धराणि,
तस्याविभूतिरिह नास्ति कुतोपि लोके ।
स्वास्थ्यं च जीवितमनर्थविमुक्तमुक्तं,
पुंसो विविक्तमतिपूजिततत्त्वबोधैः ॥ ८ ॥

जिस मनुष्य ने इन दुर्जेय इन्द्रियों का जय कर लिया है, इनके बश में न होकर इनपर ही अपना अधिकार जमा लिया है, उस मनुष्य के समान इस संसार में किसी की भी विभूति नहीं है और न किसी का जीवन ही प्रशंसनीय है। भावार्थ - हरएक मनुष्य को इन्द्रियों का जय करना ही योग्य है और उसी से अपने जीवन को वृत्तार्थ मानना चाहिये।

जगदति यचोऽप्यक्तं यक्त्रं तनोति मलाविलं
स्तकपति गतिं हन्ति स्थाम् ध्रुवीकुम्भे तनुम् ।
दहति शिष्टिबन्धसर्वांगानां च धौतकाननम् ।
गमयति यधुसंभानां वा करोति जरा न किम् ॥ ९ ॥

बुढ़ापे के आने से मनुष्य के यजन अव्यक्त हो जाते हैं, जीभ लड़खड़ाने लगती है, मुँह सचंदा मल से भरा रहता है (छार, कफ आदि घटने लगते हैं) गति स्थलित हो उाती है चलने पर पैर कहीं रखने पर कहीं पड़ जाते हैं, सामर्थ्य नष्ट हो जाता है, शरीर शिथिल होने लगता है, अग्नि से जलाए गए पन के समान पीचन त्नाक में मिल जाता है और कहीं तक कहें जिस का पहले कभी अनुमान भी नहीं कर सकते, वह अवस्था बुढ़ापे से इस शरीर की हो जाती है।

प्रबलपवनपातध्वस्तप्रदीपशितोपमै-
रलिमलनिभैः कामोदभूतैः सुखैर्विपसिभैः ।
समपरिचितैर्दुःखग्रान्तेः सन्तापतिनिदिनै-
रितिहृतमनाः शंके वृद्धः प्रकम्पयते करौ ॥ १० ॥

हमारा अनुमान है कि बुढ़ापे के कारण जो मनुष्य हाथ कंपाते हैं वे सर्वदा अपने अंतर्गत के इस प्रकार के भाव प्रकट करते रहते हैं। वे कहते हैं - मादयो! हमने जो पीयतावस्था में

कामजन्य सुख भोगे थे, वे अब विपतुल्य हानिकारक सिद्ध हुए।
आँधी के ठेग से बुझाई गई दीपक की लौ के समान क्षण
विनाशी और महादुःख के स्थान निकले। सज्जन लोग;
पहले से इनकी निंदा करते हैं, सो विलकुल ठीक है, उस-
तनिक भी झूठ नहीं। इसलिए इनका भोगना सयंथा अनुचित
ही है।

चलयति तनुं दृष्टे भ्रान्तिं करोति शरीरिणा
रचयति बलादन्यकोक्तिं सनोति गतिभक्तिं ।
जनयति जनेनाना निंदात्मनयंपरंपरां
हरति मुरभिं गन्धं देहाजरा मदिरा यथा ॥ ११ ॥

जिस प्रकार मदिरा पीने से शरीर को बल चिबल
देती है, आँखों को घुमा देती है, अस्कुट यचन कहलवाती
घलने में बाधा डालती है, लोगों में निन्दा का पात्र बना दे-
ती, धीरे देह की सुगंधि हर उसे दुर्गन्धित कर देती है उसी प्रका-
र जरा (मृदायन्त्रा) भी शरीर को कँपा देती है, आँखों की ज्योति
कम कर देने से दृष्टि में भ्रान्ति कर देती है, दृष्टे कूटे कुछ बे-
कुछ शब्द पुलवानी है, पूर्य की भ्रान्ति ठीक ठीक नहीं चलने
देती, लोगों में नाना प्रकार की निंदाएँ करवाती है और
शरीर को दुर्गन्धमय कर देती है।

भजनं मरणं प्रत्यासन्नं, विनश्यति यौवनं,
प्रभवति जरा सर्वाङ्गानां विनाशविषायिनी ।
विरमन्तं पुषाः कामार्थेभ्यो वृषे कुम्भाद्वरं
बहिर्दुमिति वा कर्षेऽन्यान्तस्मिन् पलितं जने ॥ १२ ॥

मृदायन्त्रा धाने के समय जो कुछ कँसा श्येत हो जा-
ये लोगों के पान के पास आकर अपने आगमन से इस

सूचना देते हैं कि हमें हिताहितविभेदियों !
 रा मरण अब समीप है, शीघ्र ही मरण आने वाला है,
 की अवधि पूरे हो चुकी, यह सीक्षाएँ नए सन के ही
 हैं। देखो ! यह तुम्हारे भीतर, मीठे सुहृदों या रहा है,
 से कि तुम्हारे ये अंग जो कि इस समय काम करने में
 हैं, शक्तिहीन हो जायेंगे। इसलिए काम, अर्थ को छोड़ो;
 जो अब तक भोग चुके सो भोग चुके, अब धर्म
 के ध्यान दो। अंत के दिनों में भी कुछ अपना हित
 तो।

तृष्णां विलं शमयति मदं ज्ञानमाविष्करोति,
 नीतिं धृते हरति विषदं संपदं संचिनेति ।
 पुंसां लोकहितयशुभदा संगतिः सज्जनानाम्,
 किंवा कुर्याच्च फलममलं दुःखनिर्नाशदशा ॥ १३ ॥

ज्ञानों की संगति करने से चित्त की तृष्णा (डाह) शुभ
 है, मद नष्ट हो जाता है, ज्ञान की वृद्धि होती है, नीति
 का आचरण करना आने लगता है, विषय दूर भाग
 है, सम्पत्ति एकत्र होकर आश्रय करने लगती है, और
 लोक में शुभ फल प्राप्त होता है। इसलिए बहुत कहने
 ! ! समस्त दुःखों के नाश करने में समर्थ सज्जनों की
 से क्या क्या उत्तम फल नहीं प्राप्त होते ?

विताहादि व्यसनविमूर्तं शोभायतेनेदि,
 पशोन्पादि अयणसुखदं न्यायमार्गानुयायि । ✓
 तर्प्यं पथ्यं व्यपगतमदं सार्थकं मुक्तवादं,
 यो निर्दोषं रचयति वचस्तं मुखाः सन्त मादुः ॥ १४ ॥

जो पुण्य जिस की प्रशंसा करने वाले, शत्रुओं के वि-
शोक सन्ताप के नाशक, बुद्धि के बढ़ाने वाले, मुनने में वि-
न्याय्यमार्ग के अनुसरण करने वाले, मन्त्र, तिरकार
भयंकर, याधारहित, निर्मद और निर्दोष बनने वाले तथा
होने हैं, उन्हें विद्वान् लोग मन्त्र कहते हैं । मायार्थ—अ-
मनुष्य सत्जन बनना चाहें उन्हें चाहिए कि वे उपर्युक्त गुण-
वाले पचन वाले ।

अश्वघोष

महाकवि भयघोष का उद्भव हुए थे ? इसके निश्चय करने
का कोई उपाय नहीं है । यह यौद्ध थे; क्योंकि भदन्त अश्वघोष
के नाम से इनका परिचय पाया जाता है । भदन्त यौद्ध
सन्ध्यासियों का कहने थे । अन्यान्य ग्रन्थों के देखने से पता
मिलता है कि बुद्धचरित के अतिरिक्त और भी ग्रन्थ इनके
पनाये हैं । कुछ लोगों का कहना है कि यह यौद्ध नहीं थे और
इनके नाम के साथ भदन्त शब्द भ्रम से जोड़ा गया है ।
उस भ्रम का कारण केवल यही है कि इन्होंने बुद्धचरि-
त नाम का एक ग्रन्थ बनाया है, पर यही किसीके यौद्ध या
अयौद्ध होने का प्रमाण नहीं है; क्योंकि महाकवि व्यासदास
शेमेन्द्र ने भी तो “वोधिसत्त्वावदान कल्पलता” नाम की पुस्तक
लिखी है जो कि यौद्ध धर्म से सम्बन्ध रखनेवाली पुस्तक
है । पर वे यौद्ध नहीं थे । बुद्धचरित की समाप्ति और
रम्भ की शैली देखने से भी इनके यौद्ध होने का पता
नहीं मिलता ।

बुद्धचरित का वर्णन रामायण और रघुवंश से समानता बता है। आदिकवि वाल्मीकि और महाकवि कालिदास जिस तरह प्रसाद गुण का आदर किया है और उसमें पना अनुराग प्रकट किया है, उसी तरह इस महाकवि ने भी। कालिदास के पीछे होनेवाले कवियों के ग्रन्थों में जिस रीति की प्रधानता देखी जाती है, उसका परिचय इस महाकवि के ग्रन्थ में कहा नहीं है। इससे इस बात के मानने के लिए विवश होना पड़ता है कि यह महाकवि कालिदास के पहले या पीछे उत्पन्न हुआ था।

इस समय इस महाकवि का बनाया केवल एकही ग्रन्थ "बुद्धचरित" पाया जाता है। इस ग्रन्थ में शान्तरस प्रधान है और फणरस अप्रधान। प्रसाद और माधुर्यमयी वैश्वी रीति है। इनके ग्रन्थ में शान्तरस की जैसी पुष्टि हुई है, जैसा मधुर, वर्णन हुआ है, वैसा अन्यत्र कवियों के ग्रन्थों में, कालिदास के ग्रन्थों के छोड़कर, दूसरी जगह नहीं पाया जाता। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ बुद्धचरित से कुछ श्लोक नीचे दिये जाते हैं, जिनसे इनके विषय में ऊपर कही हुई बातों की पुष्टि होगी।

ततस्तथा भर्तारि राज्यनिष्ठो तपोवनं याति विषर्णवास्तति ।
भुञ्जी समुत्थितस्ततः स काजिभृशुभं दिशुष्मेश पपात च क्षिती ॥ १ ॥

जब राज्य से निरपृष्ट होकर फुट्टे कपड़ों से महाराज (बुद्ध) वन में गये, तब दौड़ें या सारस दोनों हाथों को उठा कर रोजे लगा और रह भूमि पर गिर पड़ा।

वेपथुर्वयं भूतश्च द्रोहः सन्दर्पः हर्षः शुजाय्यामुपगूह्य कथ्यन्मम् ।
ततो निराशो विष्टपः सुहृन्मुह्यन्पी शरीरेण पुन न चेतसा ॥ २ ॥

पुनः वह कन्यक नाम के घोड़े को दोनों हाथों से पकड़ कर चिढ़ा चिढ़ाकर रोने लगा । जब बुद्ध के लौट चलने की आशा जाती रही, तब वह केवल शरीर से नगर की ओर चला, चित्त से नहीं ।

यमेकरात्रेण तु भवुराज्ञया जगाम मार्गं सह तेन वाजिना ।
इयाय भवुरिंरहं विचिन्तयैस्तमेव पन्थानमहोभिरष्टभिः ॥ ३ ॥

स्वामी (बुद्ध) की आज्ञा से जिस मार्ग को उसने ३ घोड़े के साथ एक रात में तै किया था, उसी मार्ग में स्वामी के विरह के कारण उसके आठ दिन लग गये ।

निशम्य च यस्तशरीरगामिनौ विनागतौ शब्दबुल्लवंमेष सौ ।
शुनोच वाष्पं पथि नागरा जनः पुरारथे दाशरथेरियागते ॥ ४ ॥

शाक्य कुल के दीपक के बिना शिथिल अङ्ग से चलते चले उन दोनों को देखकर मार्ग में नगरवासियों ने माँह बहाये । जैसे पहले रामचन्द्र को घन में छोड़ कर लौटने पर रथ को देखकर नगरवासी रोये थे ।

पुनः कुमारो विनिवृत्त इत्यथो गवाक्षमाग्राः प्रतिमदिरेऽङ्गनाः ।
वेविकट्टहं च विलोचय वाजिनं पुनर्गवाक्षाणि पिपाय शुक्लधुः ॥ ५ ॥

नगर की स्त्रियों ने सुना कि कुमार लौट आये, अतः वे दौरी पर चढ़कर गिट्ठियाँ खोलकर देखने लगीं । पर जब लोंगों ने घोड़े की पीठ खाली देखी, उस समय सिङ्की कर ये रोने लगीं ।

यस्मानश्च नरेन्द्रमदिदं विलोकयन्नुपहृतं यथुषा ।
पुष्टेन श्वाय कन्यको जनाय दुःखं प्रतिवेदयन्निव ॥ ६ ॥

जब यह राजभवन में गया, तब उसकी आँखों से आँसू
पड़ रहे थे और वह उन्होंने आँखों से चारों ओर देख रहा था ।
वह अपने पुष्ट स्वर से रोता था, मानो अपना दुःख लोगों को
बतला रहा था ।

उक्तः सवाष्पा महिषी महीपतेः प्रवृत्त्या महीषीय वत्सला ।
प्रवृत्त बाहू निपात गीतमी विलोचयणां कदलीव काशनी ॥ ७ ॥

तब महाराज की प्रधान रानी गीतमी जिसकी आँखें
आँसू से भर गयी थीं और जिसकी दशा बछड़ों के नष्ट होने
पर वत्सला भंस के समान थी; वह हाथ बांध कर गिर पड़ी,
जैसे बछ्छल पक्षी घालों सोने की कड़ियाँ गिरती है ।

सपैव संप्रविराजलोचना विषादसम्बन्धकपायगदगदम् ।
स्वाव निरधामचलस्ययोधरा विगादशोकाद्यधरा यशोपरा ॥ ८ ॥

यशोपरा (बुद्ध की स्त्री) की आँखें शोकाग्नेय के कारण
आँसू से भर गयी थीं, क्रोध से उसकी आँखें लाल हो गयी
थीं, अधिक शोक होने के कारण वह खोल नहीं सकती थी,
निश्वास से उसकी छाती धड़कती थी । वह बोली —

विशि प्रसुप्तमवर्ग विहाय मां गतः कस्यचिद् मन्मथोरथः ।
रागलो च त्वयि कथ्यते व मे समं गतेषु त्रिषु मन्मते भवः ॥ ९ ॥

हे छन्दक (सेवक) रात को निद्रा में अचेत पड़ी हुई
भुक्तो छोड़कर वह मेरा मनोरथ कहाँ चला गया ? तुम तो
लौट आये, और कथ्यक भी आया । तीनों के एक साथ जाने
से मेरा हृदय काँप रहा था ।

मन्मथे नृपेन हितेन साधुना त्वया सहायेन वयार्थकारिणा ।
गतोर्गदुःखी एव नानुदये नश्य विष्ठा दण्डः कस्यचिद् ॥ १० ॥

मैंने फिर से से जा रहा था इस मध्य रात्रि अंधकार लीला शुरू हो गया था।

ਸ਼ਾਸਤਰਿਯ: ਦੁਰਦ੍ਰਿਸਤਯੋ: ਦੁਰਾਸਤ੍ਰੁ ਰੋਧਾਦਸਥਾਤ੍ਰਿੰਸੰਧੀ ।

इमांश्च न भक्षयिष्ये नारुण्डण्येन वस्त्राभिरिहं दाम्भिकः ॥ १५ ॥

महापति का इस लय समाप्त हुआ, अब होन मूल उन्हीं
का निष्ठा, यद्यपि वे देव-समूह में विषये विषयों ही महापति
अनसुख के हाथों से। तुम्हारे दिव्यता ही नये जैसे
यदि वे माँ से ही ही दिव्यता ही है ।

निम्न दण्डद्वयकाव्ये कृतस्य संशुद्धे च निम्नं लिखत ।

परायण शोभाविहारी महापात्रिका इत्यादिनाम्ना १९८२-८३ ॥ १६ ॥

उम्मेद भौर बामदेव पैर देवपार सधा भवने दुव पै निभय
मुपार महागज मदेव देवपार गिर दइ. डिग प्रवार इन्द्र पै
उम्मेव मे वृद्धपुत्र गिरता हे ।

नमो भूद्वयं सुप्रसन्नमेन्द्रितो जनेन दृष्टव्यमिदमेव धारितः ।

निरीक्ष्य हृदया ज्ञानं । जन्मा हृदं मदाच्छाद्ये विद्वत्तय वाचिभ्यः ॥१०॥

થોડી દૂર તક મહારાજ શુભશોક સં અચેત થે, રૂઝવેંત વાજુ વાઘવ જામારેં હુર થે । માર જ મેંશુ મરી અ તો મેં પોંડે પેં દેવાવર રૂ માં. મેં પડે પડે ચિલાવ કરને લગે ।

बहुनि कृषा समरे शिवायि ते मृदाया बन्धक विविध कृतम् ।

गुणविषो देन कथं न मे मुक्तः दियोवि रुचन्निदमग्रदरितः ॥ १८ ॥

पाशपा, रजो में तुमने मेरे बहुत से प्रिय काम किये हैं, पर आज तुमने मेरा पताही अपकार किया, क्योंकि गुण-प्रिय मेरे प्रिय पुत्र को तुमने शत्रु के समान बन गे भेज दिया।

सदय मां वा नथ तत्र यत्र स वयं हुतं वा पुनरेनमानय ।

कृतेहि तस्मान् मम नास्ति जीवितं विगादरेणस्य सदौष्यादिव ॥१५॥

तो आज तुम मुझको वहाँ ले चलो जहाँ मेरा वह पुत्र है ।
अथवा तुम स्वयं शीघ्र जाकर उसीको ले आओ । क्योंकि
उसके बिना मेरा जीना असम्भव है । जैसे किसी रोगी का
जीवन अच्छे औषध के बिना असम्भव होता है ।

प्रसङ्गमे भद्रं तदाश्रमाजिहं हृत्स्वया यमम मे जलाञ्जलिः ।

इमे परिप्लव्णिहि मे पिपासयो ममासवः प्रेतगतिं विपासयः ॥२०॥

ये भलेमानुस, मुझे यतलाओ वह स्थान कहा है ! जहाँ
मेरी जलाञ्जलि (जल देने वाले पुत्र) को लू ले गया है । मेरे
प्यासे ये प्राण जो प्रेत—मति को जाने वाले हैं, उसको
चाहते हैं ।

इति तनपदियोगजातदुःखः क्षितिमदृशं सह विहाय धैर्यम् ।

दशरथ इव रामशोकवरयो बहु विमलाप मृषो विसंशकम् ॥२१॥

पुत्र के पियोग से महाराज को बहुत दुःख हुआ । वृषिधी
के समान उनकी स्वाभाविक धीरता जाती रही । राम के
शोक से जैसे दशरथ ने विलाप किया था, उसी प्रकार मर्चेन
होकर महाराज विलाप करने लगे ।



आनन्दयर्दन

ये १६ गण्डालोक नामक भल्लहृद प्रणय के चर्मा में । कश्मीर राज भवनिशर्मा के समय में ये चर्मा मान में, यह बात राज-तर्फूची में जानी जाती है । राजा भवनिशर्मा चर्मा में ६० वर्षी सदी के ५५ वे वर्ष में ८५ तक कश्मीर का राज्य किया था । राजतर्फूची में लिखा है—

“सुखादः निवर्तनी वदितमनुवर्तनः
मयी तदादाभागा.५ नापापः वदितमनुवर्तनः ।

निचे बताये प्रश्नों के मातृ भाषा लिखें आते हैं -

- १-अप्यथाश्लोकः ।
- २-विषमपाठः सर्वज्ञा । ग्रन्थः काश्च ।
- ३-दृष्टिविग्रहः
- ४-अनुनयः
- ५-मत्तयटीका
- ६-धर्मोत्तमयिनिधायटीका
- ७-देवीशतकः

महाकवि राजशेखर ने इनके शिष्य में लिखा है,

“एवमिनातिगभीरेषु कायवनास्त्रनिवेशिना ।
भावाद्बर्हन्तः कश्च मासीदन्तभूवर्हन्तः ॥

इनके कुछ मनाहर श्लोक भींच लिखे जाते हैं:—

**भवितामुज्ज्वलमिदं तद्गच्छेत्तु सदा कुरुते न विनाशः ।
कृतिवन्नुपदिष्टा मुनिस्तस्मात्सुखदा कुर्यात्सुखोद्यताम्॥**

सदा साथ के पापण वरुण के निबलें बंधर से जो हित हो गया है और उत्तम दम्तुओं के निमल के दूर से जो रोमाञ्चित हो रहा है, वह दृढ़ या शरीर आदमी कह्यता करे।

पुनर्युत्थितो यदि यत्प्रवृत्तमात्मनोऽयम् ।
 श्यामे दधुस्तवात्मिन्दुषि निदिशतः सत्पुण्यस्य पुंताः ॥
 कस्यान्मृतेस्मिन्निति विविधेषु दृष्टिरेवमृते सं ।
 दीपे सिन्धुदमात्रो मुनिभिरपि हतिः श्रेयं रूपं यदाहः ॥१॥

प्राणेश, आपमें समस्त जगत् का सार मैं एक स्थान देखता हूँ। तुम्हारे इस श्याम शरीर को बड़े पुण्यात्मा देखे हैं। इस अमृत को छोड़ कर किस मनुष्य का अनुराग दूसरे में होगा। तुम्हारी बड़ी बड़ी आत्में ही अमृत हैं। स्वर्ण धारी हरि को देख और मुनि दोनों ने इस प्रकार कहा। हरि आपकी रक्षा करें।

प्रतीपमानं पुनर्युदेय वस्यस्ति पापीषु महाद्वयीनाम् ।
 एतत्प्रसिद्धावयवातिरिक्ताभाति सादृश्यमिवाद्भुताम् ॥२॥

महाकवियों की पापी में जो बात मालूम होती है या कुछ और ही है। जिस प्रकार खियों के शरीर में प्रसिद्ध अङ्ग के अतिरिक्त लादव्य एक दिल्क्षण ही शोभा देता है।

या साधुनिव साधुवादमुखान्मान्सर्वमूढानपि
 प्रोच्यन्ते कुलो सतो मजिनतां दृष्टिर्न सा वास्तवी ॥
 या याताः धुतिगोचरं च सहता इषाहपत्कंधरा
 तित्वं योपि न मुक्तशस्यकयलास्ताः निः कधीनो गिरः ॥३॥

जो देश मूक बने हुआ वो भी साधुओं के समा साधुवाद देने के लिए पकान दम्य वे वह बुद्धिमान सज्जनों की

इति दशार्धं इति मदीं द्वि जीव जिगमे। शुनार्धं पदतं ही
मदमा परिजो का भी कन्धा हर्षं मे उद्विगित न हो जाय, और
ये जाना खाना म छोड़ दें, यह क्या कविजो की धार्मी है ?

वे धर्म इत्युदीर्यो मदनी विमर्शमम् ।

कन्धानो मालातानो दुर्जनाः मारुता इव ॥ ५ ॥

एतुन दिनों का मरुतिन मरुतनों का परिधम जो हरण
करना चाहते हैं, ये दुर्जन भी मरुतनों के समान ममस्फ-
र्त्तीय हैं ।

वः प्रोत्तिमि को मर मर्ष देवनासु वारुणु मनीषु ।

मुदयोर्धममरुदरुपानुमन् मूरममरुमाचमर्षमि ॥ ६ ॥

पर देनेपाने देवनाओं के रहने जो मनुष्य दूतरे मनुष्य
की प्रोत्ता धन के सोन से करना है, यह मूर्ख है और मैं उसे
पहला नृगण समझता हूँ ।

वपुर्वमूनि सवहनि महामहानि चन्द्रोयलं मुधनमरुदलमरुदनाय ।

मूर्षाङ्गने न मरुदेनि न चालमेनि येमोदितेन दिवमरुमिधं वरात्रिः ॥ ७ ॥

ये धर्मेकः यहं यहं प्रकाश उदित होने हैं, चन्द्रमा भी
संसार का गोमा ही यद्गता है, पर उदय होना तो एषा सूर्य
का है, जिगमे उदय होने से दिन होता है और भस्त्र होने से
रात्रि होती है ।

कोकान्दादिरमति न यः क्षीयमाणानि भूयः

एतः एते लम्बिमिच्छन् दिनमुत्तं सुतनं नामविष्यन्

ईव हीदृक्पमनि यथा मनुमात्मानमेव

एतः काळं नामपति सत्ये सोप्यर्थं पश्य चन्द्रः ॥ ८ ॥

स्वयं क्षीण होने पर भी जो मरुद छोटों को आनन्दित
करता है, उससे स्वर्ग में रहने पर क्या प्रातःकाल नहीं

होता । पर भाग्य कैसा है, यह चन्द्रमा भी अपना ही मर फरने के लिए प्याकुल रहता है और इसीमें उसका स समय बीतता है ।

नास्योपश्रुपयनी तनुर्न दशानी मोक्षोपेक्षोपेक्षः परः

मन्य यावत् नैव केमति ि शुभ्यङ्गमर्भः शर्वते ॥

मं तोपीजमयज्यस्य द्वद्वे न्यम्न गुता उभया ।

तादृक् स्वाद्वशमेव येन मुनता भोग्यं पशुं मन्वते ॥५॥

उसका लंबा शरीर नहीं है, बड़े दो दांत भी नहीं है और न बड़ा बड़ा फर (सूँड़) है । हाथी . यह ठीक है कि माइन्दा में यह सिंह का बच्चा तुम्हारी घराबरी नहीं पर सदत, पा इसके द्वद्व में प्रकाश ने एक बड़ा तेजोवीज रखा है, जिससे तुम्हारे समान पशुओं को यह अपना भोजन समझता है ।

केलिं कुरुष्व पत्रिभु'हव सरोरुदाणि ।

गाइस्व शीलतयनिकंरिणीपपाणि ॥

भावाभुरक्तकरिणीकरतालित्राह ।

मातङ्ग मुद्य मृगराज्रयानिलपम् ॥१०॥

आनन्द करो, कमलों को खाओ, पहाड़ी नदियों के जल का भवगाहन करो, पर मातङ्ग ! सिंह से युद्ध की इच्छा छोड़ दो, क्योंकि प्रेमिका हथिनी के हाथों से तुम्हारे भङ्ग लादित होते हैं ।

मनोरमशर्तु'जो भुवननाथशुद्धोचित—

रत्नैरलमयः रत्नः हतारदः कविद्रावसु ॥

प्रशमयि सचेतसां विषयमीदृशां यो दूशो ।

नुत्तपचलकन्दरे विपुर एव चिन्तामणिः ॥११॥

कल्हण

ये कवि काश्मीर देश के निवासी थे । काश्मीर के इति-
हास “राजतरङ्गिणी” का निर्माण इन्होंने ही किया है । कश्मीर-
राज जयसिंह के समय में इन्होंने राजतरङ्गिणी बनायी थी ।
जयसिंहाभ्युदय नामक एक काव्य भी इन्होंने बनाया है ।
इन्होंने राजतरङ्गिणी बनाने का समय राजतरङ्गिणी में इस
प्रकार लिखा है —

लौकिकेऽभ्ये चतुर्विंशोऽष्टकालस्य साम्प्रतम् ।

सप्तम्यान्वधिष्ठं पातं सदस्यं परिवृत्तरा ॥

१०३० शक में इन्होंने राजतरङ्गिणी बनायी । ये कश्मीर
राज्य के प्रधान मन्त्री भी थे ।

अन्य काश्मीरक कवियों के रामान इनकी कविता भी
मौद्भीर सरस है । देखिए—

वृत्तिं त्वां यदुक्तवते इति क्षुब्धं धरोनुकम्पोक्तिभिः—

व्यक्तं निन्दति योग्यतां मितमतिः कुर्वन्त्युनीराममः ॥

गर्भोपायनिषेधं कथयति स्थातुं यदन्वेषयत् ।

५

युत्वा दुःखमदुःखं विनशुने पीडां जनः प्रारतः ॥ १ ॥

दुर्जन मनुष्य भगनी वृत्ति—दुर्जनता को अच्छा समझना
है, दया को धार्मिक से उसका हृदय दुःखी होना है, भगनी प्रशंसा
करता है और योग्यता की निन्दा करता है, क्योंकि उसकी
बुद्धि धोड़ी होती है । अनेक प्रकार की भावनाओं का उर्जन
करके बुरे उपायों के अगलघन का समर्थन करता है, दुर्जन
का नाम सुनकर अति तीव्र पीड़ा पहुँचाना है ।

पादभ्रंशं सुमन्यवेदय तदपौ प्रागेव नाशस्त्रिगु

स्वार्थभ्रंशं प्रयाप्य दिनं भगने दीनान्धवदभ्युदयम् ॥

मणो रुग्ण दृशोऽप्य भीर्यदि न तत्तुल्यः किमेव त्वमे—

दिग्यन्तःपुरुषोऽधमः बलवति प्रायः वृत्तोपक्रियः ॥ २ ॥

हुज्जन मनुष्य किसी के द्वारा उपहृत होने पर प्रायः इस प्रकार सोचता है, यदि आज मेरे माम्यों का उदय नहीं हुआ तो आज के पहले ही इन्होंने क्यों नहीं दिया ? यदि मुझसे स्वार्थसिद्धि की आशा न होती, तो ये अपने गुराँव माई बन्धुओं को ही क्यों न देते ? मैं शतरां पुराणों को जानता हूँ इसी डर से यह मुझको देता है, नहीं तो यह रूपन कस का देनेवाला है, उपहृत होने पर अधम पुरुष इसी प्रकार सोचते हैं ।

कणे' तद्वपयन्ति हुन्दुभिर्ये राष्ट्रं सुदुर्दजोपितं

तद्वप्राकृतया वदन्ति करुणं यस्मात्प्रपायान्भवेत् ॥

छापन्ते तदुदीर्यते यदरिथाप्युभं न मर्मान्तरु

घकेचिन्ननु शास्त्रमौग्यनिधयस्ते भूधृता रज्जुकाः ॥ ३ ॥

नगारे की आवाज़ के साथ जो देश में घोषित किया गया है, वह भी जो कानों में कहता है, लज्जा देने वाली बातों को नम्रतापूर्वक प्रकाशित करता है, हृदय को जलाने वाली जो बातें, शत्रु नहीं कह सकने उगपति जो सारीफ़ करता है, इस प्रकार की जिसमें शडता और भोलापन होता है, वे ही राजाओं को प्रसन्न कर सकते हैं ।

हा कष्ट' तदवातिनीपि विकल प्राग्भारमालीक्य मा—

मन्यत्रैव विपासवः प्रतिदिनं गच्छन्त्यमी जन्तवः ॥

इयं त्वयं जलातिभारवहनप्रोद्ध तलेदादिव

स्थामूर्तिं बड़वानले जलनिधिर्मन्येऽनुहोत्यन्वदम् ॥ ४ ॥

यह बड़े कष्ट की बात है कि मेरे इस जलराशि को विकल समझ कर मेरे तीर पर रहनेवाले जन्तु भी विपासा से

पीड़ित होकर दूसरी जगह जाने हैं, इस प्यारे जलपाशियों के पालन करने में उत्पन्न जग में समुद्र अपना जल बड़वानल में हवन करना है ।

मयांश परिपालनेन नदीनां धोणीभूनां रक्षणा—

विधामया मः कनकमुष्टिं परिचिह्नितमादिनम् ॥

गाम्भीर्वांशिनमात्मनो जलधिना लब्धमाध्यागधमा

देवेन्द्रवंशनाम्नो हुतमसं नवं नद्विभुजितम् ॥ ५ ॥

यहाँ श्री मयांश के पालन करने में, गर्वनों की रक्षा करने से और विष्णु को विधाम करने के लिए स्थान देने से समुद्र ने जो अपनी गम्भीरता का उचित फल पाया था, वह सब मन्थन पीड़ा की घयदाहट से देवताओं को अमृत देकर उसने नष्ट कर दिये ।

आध्वर्यं बड़वानलः स भगवानाध्वर्यमभ्योनिधि—

यत्कमोतिशयं विचिन्त्य मर्ममय कथः समुत्पद्यते ॥

एकस्याध्वर्यस्मरस्य विवतस्तृप्तिं जाता जलै—

एवस्यापि नहाम्नो न त्वु सज्जोपि जातः भ्रमः ॥ ६ ॥

आध्वर्य बड़वानल के लिये है, विष्णु के लिए है और समुद्र के लिए भी है, जिसके बहुत काम को सोचकर मनुष्य का मन कम्पित होने लगता है, एक की - जो अपने आध्वर्य को ही खाता है - जल पीने से तृप्ति नहीं हुई । अर्थात् बड़वानल आज तक जलपीने से तृप्त नहीं हुआ, और विष्णु को वहाँ सोने में कोई फट नहीं हुआ । और दूसरे महात्मा के शरीर को थोड़ा भी भ्रम नहीं हुआ ।

नोद्वेगं यदि यासि यच्चदितः कर्णं ददामि हर्षं

न्यां पृच्छामि यद्वक्ष्ये किमपि तस्मिंश्चिन्त्य देव्युत्तरम् ॥

नैराश्यानु गणानिगमनिर्निर्ण निःश्वस्य पट्टदृश्यते

पृष्ठादिः पथिर्दः स्मिन्सर्वाधर्ग्यादीर्वादादतः ॥ ७ ॥

एदि तुम पयडा न जाओ और यदि तुम सावधान हो कर सुनो, तो मैं तुमसे पूछता हूँ - मोच पर उत्तर दो, क्यासे अधिक तुम्हारे यहाँ आकर निराशा-जनित तीखे पक्षात्ताप से गर्म साँस लेकर जो तुम्हारी ओर झंपता है, उससे बढ़वानल का दाह किना अधिक है ।

इतः स्वपिनि केशवः कुलमित्तस्य दोषद्विषा-

मित्तस्य शरणाधिष्ठा शिखरिणा गणाः शेरते ॥

इतश्च बड़वानलः तद्वत्तत्सामर्थ्यकै-

रहो चित्तमूर्जितं भाग्यदं च विधोर्गुणः ॥ ८ ॥

एक ओर विष्णु मोते हैं, दूसरी ओर विष्णु के शत्रुओं का समूह सोता है, एक ओर शरण में आये हुए पर्यतों का समूह आस करता है, एक ओर संवर्तक नाम के मंत्रों के साथ बढ़वानल है । ओह, समुद्र का शरीर कितना बड़ा है और वह केना भार सहता है ।

वैकुण्ठाय श्रियमभिनव शीतभानु भवाय

प्रादादुर्ध्वः प्रयसमपि वा यन्निणे तत्क गम्यम् ॥

पृष्ठादीन् स्वमपि मुञ्चे पट्टदृशतिस्म ईदं

कोऽप्यनस्माद्वयति मुञ्चेस्वमुपेधोधिस्तयः ॥ ९ ॥

लामी विष्णु को दी, नवीन चन्द्र शिव को दिया और समुद्र को उर्ध्वःध्या दिया, इनकी तो कोई गिनती नहीं; क्यासे नि को (अगस्त को , समुद्र ने अपना शरीर तक दे दिया, से समुद्र से बढ़कर संसार में यौन बढ़ा स्थायी है ?

वैकुण्ठाः प्रदिर्किर्लज्जरीः समीरैरधि- क्रियेत यदि रुद्धतटाभिमुप्यः ।

पथिर्नः स भानु भाग्यविपर्ययाणां दानुमंनगापि भतस्य मु दानुतायाः १०

रदा के समान उज्ज्वल लहरियाँ को घायु के द्वारा फैलाने वाले समुद्र के तट यदि रोक लिये जाय, तो यह घायुओं के भाग्य का ही दोष है, दाता की दानशक्ति का दोष नहीं है ।

भन्तये सततं सुदृम्यमग्निनास्तानेन पाथोपरी-

रासानापतनस्तांगवन्धैरालिङ्ग्य गृह्णसी ॥

व्यक्तं मौक्तिकरत्नतां जलकगाम्भीरापपरम्बुधिः

पायोऽम्येन कृतादरो लघुरग्निं प्राहोष्यन्ते स्वामिभिः ॥ ११ ॥

जो जल के कण सदा समुद्र में ही रहते हैं, उन्हें ही मेघ लेजाकर जब पुनः समुद्र को देता है, तब तरङ्गों से आलिङ्गन कर के समुद्र उनका ग्रहण करता है और उन्हींको मोती बना देता है । छोटा भी हो, यदि उसका दूसरे भादर करते हैं, तो स्वामी भी उसका भादर करता है ।

परामृशति सरपृष्ठं मुहुरपेलवं धीक्ष्यते

महत्किमपि स्वमित्यसम्पमई गृहते ॥

कुतोपि परिपेलवप्लविमवाप्य काचोपले

बहत्पतिकदर्पनां यत वराक्कः पामरः ॥ १२ ॥

विचारा मूर्ख मनुष्य कहीं से काँच का टुकड़ा पाता है तो उसे बड़ी छालसा से छूता है, धार धार उसे देखता है, यह बड़ा भारी कोई रत्न है यह समझ कर प्रसन्नता पूर्वक उसे छिपाता है, इस प्रकार वह अनेक कष्ट उठाता है ।

भस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरहो चन्द्रो न संभाष्यते

नो देवः कुसुमायुधो न च मधुदूरे विरिधः प्रभुः ॥

पूतस्मे मतमुन्पितेयममृतान्काचिन्स्वयं तिष्ठुना

या मन्थाचललोदितेन हरये दत्त्वाग्निं रक्षिता ॥ १३ ॥

इसको सृष्टि करने के लिए चन्द्रमा प्रजापति नहीं बना था । कामदेव भी प्रजापति नहीं था । फिर ब्रह्मा के प्रजापति होने को यात तो दूर हो है । मैं तो समझता हूँ कि यह धर्म से स्वयम् आपन्न हुई है और मन्थन के समय समुद्र में विष्णु को लक्ष्मी देकर इसकी रक्षा की थी । मर्थात् लक्ष्मी से भी यह सुन्दरी है । इसी श्लोक के समान कालिदास का भी श्लोक है ।

भारवद्भिष्वाधरा हृत्पद्मैः सिलकरामना ॥

हरिमध्या-शिवाकारा सर्वदेवमर्थाव सा ॥ १४ ॥

इसका भिष्वाधर मास्यत (सूर्य या प्रकाशमान है) है, पद्मैः रुष्ण है, मुँह चन्द्रमा है, मध्यभाग हरि (सिंह या विष्णु) के समान है, इसका आकार शिव (सुन्दर वा महादेव) है, वह सर्वदेवमयी है ।

सम्भोदप्रतिपादितः प्रिययन्त्रीबदालबालावलि

भिर्दोषेण मनःप्रसादपयसा निष्पन्न सेवकियः ॥

बाहुस्तदमीक्षितं किल कलम्बालेपि बालोत्पत्ती

राजम्दानमहीच्छते विजयते कथ्यन्तुमादीनपि ॥ १५ ॥

अच्छे क्षेत्र (पात्र) में दिया हुआ दानवृक्ष कल्पद्रुम आदि को भी जीत लेता है । प्रिययन्त्री द्वारा इसके बालबाल बनवाये जाते हैं और दोषरहित मानसिक प्रसन्नतारूपी जल से यह सींचा जाता है, छोटा होने पर भी यह दाता के मनो-रथों को पूर्ण करता है ।

यो यं जनापहरणाय सृजत्युपायं तेजैव तस्य नियमेन भवेद्विमाशः ॥

एवं प्रसूति नयमान्यकरं यमनिभूत्वाभुः दःसशमयेत्सलिलैस्तमेव ॥ १६ ॥

क्यों कि वैसा करना हिम्मत का काम है, साहस का काम है । उन मतों के समर्थन करने की शक्ति मुझमें नहीं है । एक विद्वान् ने कालिदास को गुप्त राजाओं का समकालीन बताया है और अपने इस मत में उन लोगों ने प्रमाण यह दिया है कि कालिदास ने रघुवंश में "गुप्त" शब्द का प्रयोग किया है । इस मत का समर्थन करना मेरी शक्ति के बाहर की बात है । इस मत का जब मैं समर्थन करना चाहता हूँ, उस समय "सगुप्तमूल प्रत्ययः" के गुप्त-शब्द में ऐसी कोई योग्यता दिखाई नहीं पड़ती, जो गुप्त राज्य के समय कालिदास के होने को प्रमाणित करे । यहाँ गुप्त शब्द रक्षित के अर्थ में आया है, यह सामान्य प्रयोज्य गुप्त शब्द नहीं है । यदि इसी प्रकार किसी प्रयुक्त शब्द को देख कर किसी के समय का अनुमान किया जा सकता है, तब ऐसा कोई काल नहीं, जिसमें कालिदास का होना प्रमाणित न किया जा सके । कालिदास पुरुरवा के समय हुए थे, क्योंकि शब्द ही नहीं, किन्तु पुरुरवा पर इन्होंने विक्रमोद्योगीय नाटक बनाया है । इसी प्रकार दुष्यन्त, शिव और रघु, अज, दशरथ, राम आदि सभी के समय कालिदास हुए थे क्योंकि इन सब का इन्होंने वर्णन किया है । इन्हीं कारणों से मैं कहता हूँ, उन खोजों का सङ्कलन करना मेरे लिए आवश्यक नहीं है । हाँ, कालिदास के विषय में संसृत कवियों की जो उक्तियाँ मिलती हैं, उनका संग्रह कर देना ही मेरे लिए पर्याप्त और प्रामाणिक है ।

अमिनन्द महाकवि ने कवियों के संबन्ध में एक श्लोक लिखा है, उसमें कतिपय कवि और उनके आश्रयदाता राजाओं का वर्णन है ।

हालेनोत्तम युवया कविदृषः श्री कालिने स्तुतितः
 ग्यातिं कामपि कालिदासकवयो भीताः शम्भुराजिना
 श्रीरूपो विततार गदयकपये वागाय वागी पलम्
 तयः मन्त्रिपामिनन्दमपि च श्रीहार वगोऽप्रीन् ॥

इस श्लोक से मालूम होता है कि शक विजयी विक्रमादित्य के यहाँ कालिदास रहते थे । कुछ लोग कहते हैं, कि इस श्लोक में बहुवचन का प्रयोग किया गया है, जिससे कम से कम तीन कालिदासों का होना सिद्ध होता है । इस संयन्ध में महाकवि राजशेखर का एक श्लोक भी उद्धृत किया जाता है, जिसमें तीन कालिदासों का होना स्पष्ट लिखा है—

एकोऽपि जीयते इन्त कालिदासो न केनचिद् ।

गङ्गारे संलितोद्गारे कालिदासप्रबोधिषु ॥

इस प्रकार मयमसदी के पहले तीन कालिदास हुए थे । यह बात मालूम होती है । कालिदास के नाम से इस समय जो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं, उनमें कौन किस कालिदास का बनाया है, इसका निर्णय करना कठिन है, क्योंकि इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता ।

कालिदास कब हुए थे ? उनका समय क्या है ? यह बड़ा ही जटिल विषय बनाया गया है । विक्रमादित्य की सभा में कालिदास थे और विक्रमादित्य का जो समय है 'अर्थात् ईसवी सदी से पहले, यही समय कालिदास का समय है, यह भारतीय पण्डितों का कहना है । पर पश्चिमी पण्डित कालिदास का समय ५वीं या ६वीं सदी मानते हैं । चारु नगरी के राजा सिन्धु राज की सभा में परिमल नाम के एक कवि रहते हैं, जिन्होंने

मपने को अभिनव कालिदास लिखा है । इससे कुछ लोग
 इन्हें कालिदास समझते हैं और सिन्धुराज का समय
 कालिदास का मतलाते हैं । कुछ लोग कहते हैं कालिदास
 ने मालविकाग्निमित्र नामक नाटक में शुङ्गराज अभिमित्र
 का वर्णन किया है और उनके युद्ध का उल्लेख किया है जो
 धर्मों के समान वर्णन हुआ है । इससे कालिदास का
 होना ई० स० से पहले मानना चाहिए । रघुवंश, कुमार-
 सम्भव, मेघदूत, अभिज्ञान शाकुन्तल, मालविकाग्निमित्र और
 विक्रमोपशीष ये छः ग्रन्थ कालिदास के नाम से प्रसिद्ध हैं । ये
 सब ग्रन्थ एक ही कालिदास के बनाये हैं, या भिन्न भिन्न कालि-
 दासों के, इसका निर्णय करना कठिन है । पर इनकी भाषा पर
 ध्यान देने से इनके एककृत्य होना मानने की इच्छा होती
 है । इनके अतिरिक्त अमृतसंहार, नलोदय आदि ग्रन्थ भी
 कालिदास के नाम से प्रसिद्ध हैं, इसके कर्ता कोई दूसरे
 कालिदास होंगे ।

ज्योतिषिन्दाभरण नामक ज्योतिष ग्रन्थ के कर्ता भी
 कालिदास थे, पर ये कालिदास प्रसिद्ध कालिदास से भिन्न थे ।

(रघुवंश से)

अथात्मनः शब्दगुण गुणज्ञः पदं विमानेन विगाहमानः ।

रघोर्वरं वीक्ष्य मिथः स क्षापी रामाभिधानो हरिरिन्द्रियवाच ॥ १ ॥

भगवान् रामचन्द्र पुष्पक विमान के द्वारा आकाश मार्ग
 से लट्ठा से चले । वहाँ से उन्होंने समुद्र को देखा । उस समय
 उनके मनमें समुद्र के विषय में जो भाव उत्पन्न हुए वे राम-
 चन्द्रजी ने अपनी स्त्री से कहे ।

विदेहि पर्यामलयादिभक्त मन्त्रेभ्यः स्तुतिः ॥
 छायापथेनेव शरत्प्रसन्नमाकाशमाविष्टः तथारतारम्
 वैदेहि, देखो, मेरे सेतु के ठारा यह फैलिल
 चल तक दो भागों में विभक्त हुआ मालूम प
 समुद्र शरत्काल के आकाश के समान मालूम
 जिसमें सुन्दर ताराएँ छिटकी हों और जो छायाप
 दो भागों में विभक्त हुआ हो ।

गुरोर्विंशतः कपिलेन मेत्ये रसातलं संक्रमिते पुराणे
 तदर्थमुक्तमवधारयतिः पूर्वंः क्लृप्तार्थं परिधिर्धितोदनः ॥

इस समुद्र को मेरे पूर्यजों ने ही बढ़ाया है । वि
 करना चाहते थे कपिल उनके यक्षीय अश्व को रसा
 लेकर चले गये । उसी अश्व के लिए मेरे पूर्यजों ने
 लोदी और उसमें यह समुद्र बढ़ा ।

गर्भं दधन्पर्वमरीचयोध्रमादिशृदिमग्राभुवत्तं वसूनि ।
 नविष्मन् बहिमसौ विभक्तिं प्रह्लादनं अयतिरत्नम्पनेन ॥ ४ ॥

इस समुद्र से सूर्य की किरणें गम धारण करती हैं,
 समुद्र में रत्नों की वृद्धि होनी है । बिना रघुन के उलनेया
 भाग यह समुद्र धारण करता है और प्रसन्न करनेया
 न्योनि रात्रि का धारण करता है ।

तो कामधेनी प्रजिगृह्णन्तं मितं दश व्याप्य विशो महिमा ।
 विष्णोर्विवास्वानवपात्सीवनीदृक्पथा रुतविपत्तया वा ॥ ५ ॥

यह अनेक धनमार्ग धारण करता है । भवनी महिमा से
 दशों दिशाओं में फैला हुआ है । विष्णु की महिमा में

इसकी भी महिमा ऐसी है और इतनी है इसका निश्चय नहीं किया जा सकता है ।

शभिप्रकृद्गामुत्सहसनेन संस्तूपमानः प्रथमेन धाता ।

ध्रुवः पुगान्तो धितयोगनिद्रः संहृत्य लोकान्पुरुषोऽधिरोते ॥ ६ ॥

प्रलय काल में भगवान् विष्णु समस्त लोकों को एकत्र करके इस समुद्र में शयन करते हैं और यहां ही विष्णु के नाभिकमल से उत्पन्न आदि ब्रह्मा उनकी स्तुति करते रहते हैं ।

परुषिष्ठा गोप्रमिदात्तमग्धाः शतशो महीमाः ।

वृषा ह्योपप्लविनः परोम्भो धर्मोत्तर्धं मध्यममाधयन्ते ॥ ७ ॥

इन्द्र पर्वतों का पक्ष-छेदन करने लगे । तब अनेक पक्षी उसकी शरण गये, जिस प्रकार घोटित राजा उदासीन धर्मात्मा राजा की शरण में जाते हैं । कहते हैं कि ईनाक आदि कई पक्ष समुद्र की शरण में अब तक घटमान हैं ।

रमावलादादिभवेन पुंसां भुवः प्रयुक्तोद्ग्रहणक्रियायाः ।

भस्वाच्छमम्माः प्रलयप्रवृत्तं मुहूर्तविक्रामार्णं बभूव ॥ ८ ॥

परहायतार में जब भगवान् रसातल से पृथ्वी को अपने तों पर रखकर निकाल रहे थे, तो उस समय यदा हुआ लयकालीन इसका स्वरञ्ज जल, एक मुहूर्त उनके मुख की शोभा के लिए हुआ था ।

मुषार्पणेण प्रकृतिप्रगल्भाः स्वयं तर्गाधरदानदक्षा ॥

भनन्वसामाग्नकलप्रवृत्तिः विवम्बसी पाययते च सिन्धुः ॥ ९ ॥

नदियाँ समुद्र की ओर मुख करने में स्वभाव से ही गन्म हैं और समुद्र भी अपना तरङ्गरूपी लहर देने में दक्ष

है । समुद्र का अपनी स्त्रियों के प्रति यह व्यवहार अनुपम
यह नदियों का अधर स्वर्य पीता है, अपना उनको पीने
लिए देता है ।

ससत्त्वमादाय नदीमुत्साम्भः संमोलयन्तो विवृताननन्वात् ।
भमी शिरोभिस्तिमयः सरन्मूर्ध्नि वितन्वन्ति जलप्रवाहाद् ॥ १० ॥

इन तिमि नाम की मछलियों ने नदी के मुहाने पर
प्राणिसहित जल अपने मुँह में लिया । खाने की इच्छा से ज
इन्होंने अपना मुँह बन्द किया, तब इनके रन्ध्रयुक्त मस्तक
जलधारा निकलने लगी ।

मातङ्गनर्कः सहस्रोत्पत्तिभिर्भान्द्रिषा पश्य समुद्रकेनाद् ।
कपोलसंसर्पितया य पूर्णा मज्जन्ति कर्णक्षयचामरावम् ॥ ११ ॥

यह देखो, जल के हाथी कूद रहे हैं, उनके कूबने के समय
समुद्र फेन दो भागों में विभक्त हो जाता है, जो फेन इनके
कपोलों पर लगा रहता है, यह एक क्षण के लिए चामर के
समान मालूम पड़ता है ।

वेलात्रिलायद्रत्ना मुञ्जगा महोर्मिर्विरुज्जन्तुनिर्विशेषाः ।

सूर्यांशुपररश्मयदरागै र्व्यत्रस्त वृत्ते मणिभिः कथरपीः ॥ १२ ॥

समुद्र के तीर पर बड़े बड़े मज्जगर सर्प पड़े हुए हैं,
समुद्र की बड़ी बड़ी लहरियों में मिल गये हैं । सूर्य की किरणों
के पड़ने ॥ इनके फण के मणि जय प्रकाशित होते हैं, तब
परचाने आने हैं ।

तवाधालार्चिर्बु विजुमेनु पर्वलमेतत्साहसोर्मिर्बेगाद् ।

रन्ध्राद् रजोनमुञ्च कर्णक्षयचामरावकात्रनि शङ्खपुष्पाद् ॥ १३ ॥

तुम्हारे अधर की समानता करने वाले मूर्गों पर लहरियों के वेग से यह शंखों का समूह फैल गया है और मूर्गों के ऊपर उठते हुए टहनियों में शंखों का मुँह फैल गया है, जिस कारण ये कठिनता से वहाँ से निकल पाते हैं ।

प्रवृत्तमात्रेण पयोसि पालुभावतयेगादुधमता घनेन ।

भाभाति भूयिष्ठमयं समुद्रः प्रमथ्यमानो गिरिणेव भूयः ॥ १३ ॥

मेघ ने जल पीना प्रारम्भ ही किया था कि जल के चक्कर के वेग से वह घूमने लगा, ऐसी दशा में मालूम होता है यह समुद्र पुनः पर्वत के द्वारा मया जाता है ।

दूरादपञ्चकनिभस्य तम्बी तमालतालीयनरात्रिनीला ।

भाभाति बेला लवणाम्बुराशेर्धारा निबद्धेव कलङ्कुरेखा ॥ १४ ॥

यह लवण समुद्र लोहे के चक्के के समान है, दूरसे छोटी मालूम पड़ने वाली उसकी तीरभूमि, जो माल ताली आदि वृत्तों से नीली हो रही है—कलङ्कुरेखा के समान मालूम पड़ती है ।

वेकानिकः केतकरोणुभिस्ते संभावयन्प्याननमापताक्षि ।

मामल्लर्म मण्डनकाकदानेवे'नीव विम्याधरवदन्तृष्णम् ॥ १५ ॥

समुद्रतीर का वायु केतकरेणु से तुम्हारे मुख को शोभित कर रहा है, यह जानता है कि तुम्हारे विम्याधर का मैं अभि-
लाषी हूँ । और उसके सजाने आदि में जो समय लगेगा, उसके सहने में मैं असमर्थ हूँ ।

पूते वयं सैकतभिन्नशुक्तिःपर्यस्यमुक्तापटलं व्योधेः ।

माहा मुहूर्तेन विमानवेगात्कूले कलावर्जितपूगमाद्यम् ॥ १६ ॥

एक मुहूर्त में ही विमान के वेग से हम लोग समुद्र के उस तीर पर पहुँच गये हैं, जहाँ तीर की रेबोली ज़मीन पर

फूटी हुई सीपों में मोतियाँ दैन्ती हुई हैं और फलदूरी
सुपारी के पृष्ठ हैं ।

बुरुध्य तावत्करमोः पञ्चानमाने' सुगन्धेभिर्नि दूष्टिमानम् ।
एषा विदुरीभयगः समुद्रान्तरानना निगानीय भूमिः ॥ १८ ॥

हे करमोः, तुम्हारे नेत्र सुगंध के समान हैं, इसलिए तुम
पीछे—जिस मार्ग को हम लोग छोड़ भाग्य हैं—देखो, वह
समुद्र से दूर होनेवाली भूमि और घन मानों पास दीई
भाते हैं ।

कचित्पथा संघाते मुरागां कटिङ्गानां पततां कचिच्च ।
पथाविधौ मे मनसोऽभितापः मघतंते पश्य तथा विमानम् ॥ १९ ॥

कभी देवताओं के मार्ग से, कभी मेघ मार्ग से और कभी
पक्षियों के मार्ग से यह विमान चल रहा है, इसके चलने में
विषय में जैसी मेरे मन की इच्छा होती है, वैसेही यह विमान
भी चलता है ।

असौ महेन्दुद्विपदानुगन्धिस्त्रिमार्गगायीचिविमर्दशीतः ।
आकाशवायुर्दिनपीयनोन्धानाचामति स्वेदलवान्मुसे ते ॥ २० ॥

यह आकाश—वायु जो इन्द्र के हाथी के मद्गन्ध से
घासित है और गङ्गा की तरङ्गों के संसर्ग से शीतल हो
है—दोपहर के कारण तुम्हारे मुँह पर जो पसीना आ
उसे पोंछता है ।

करणे वातापनलम्बितेन स्पृष्टस्त्वया चण्डि कुतूहलिभ्या ।
आमुशतीवाभरणं द्वितीयमुद्दिषविसुद्वलयो घनस्ते ॥ २१ ॥

हे चण्डि, कुतूहलिनी होकर तुमने मिट्टी से हाथ निकाल
उसको तुम्हारे आभरण के रूप में धारण कर

शित हो गया और मातृम पड़ने लगा कि वह तुम्हे दूसरा धारण पहना रहा है ।

अमी जनस्थानमपोदविभ्रं मत्वा समारम्भनवोटजानि ।

अप्यासते दीरभृतो यथास्वं चिरोन्मिहताभ्याश्रममण्डलानि ॥ २२ ॥

जनस्थान के सभी बाधाविभ्र दूर हो गये, यह समझ कर ये मुनिगण नये भोषड़े बना रहे हैं और अपने अपने आश्रमों में जो बहुत दिनों से छूटा हुआ था—रहे हैं ।

रीपास्थली दम विचिन्दता म्वां भष्टं मया नृपुरमेवसूर्याम् ।

भट्टरपत न्वरणाविन्दविश्लेषदुःखादिव वद्धमीनम् ॥ २३ ॥

यही भूमि है जहाँ तुम को डूँदते हुए मैंने पृथिवी पर गिरा हुआ तुम्हारा एक नृपुर देखा था, जो तुम्हारे चरणों के धियोग द्वारा से मानो चुपचाप पड़ा था ।

त्वं रक्षसा भीरु यतोऽपनीता तं मार्गमेतः कृपया लता मे ।

भदर्शयम्यकुमशक्त वत्यः शाखाभिरायजितपटुर्वाभिः ॥ २४ ॥

हे भीरु, राक्षस तुमको हर कर जिस मार्ग से ले गया वह मार्ग कृपाकर, इन लताओं ने मुझे बतलाया था । ये खोल नहीं सकते थीं, पर पटुयहीन शाखाओं के द्वारा इन्होंने बतलाया ।

एवमद्य दर्भाङ्कुरनिर्वपेक्षस्तथागतिर्जं समशोधयन्माम् ।

व्यापारयन्त्यो दिशि दक्षिणस्यामुत्पदमरात्रीयदिलोचनानि ॥ २५ ॥

तुम्हारा पता मुझे इन मृगियों ने बताया । इन्होंने घास खाना छोड़ दिया, और चिक्सित कमल के समान अपनी भाँसें दक्षिण दिशा की ओर उठायीं, इससे तुम्हारा दक्षिण दिशा में जाना मुझे मातृम हुआ ।

एतद्गगिरेर्माल्यवतः पुरस्तादाविर्मवात्यम्बरलेखि मृगम् ।
नव पथो यत्र घनैर्मया च त्वद्विप्रयोगाधु समं विसृष्टम् ॥ २६ ॥

इस माल्यवान् पर्वत के आगे जो आकाश को छूने वाला
पर्वत का शिखर दिखायी पड़ता है, वहाँ मेघों ने तो नवीन जल
बरसाया और मैंने तुम्हारे वियोग से उत्पन्न भाव ।

गन्धधाराहतपम्बलानां कादम्बमर्षोद्गगतवेशां च ।
स्निग्धाम केकाः शिलिनां बभ्रुवर्षस्मिन्नसदृशानि विना तथा मे ॥ २७ ॥

जहाँ तुम्हारे बिना मुझे ये सब चीज़ें असह्य मालू
पड़ती थी—घृष्टि के कारण छोटे छोटे जलाशयों से उत्पन्न
गन्ध, अर्धविकसित कदम्ब पुष्प और मयूरों की मनोह
कृष्ण ।

पूर्वाभूत स्मरता च वन कम्पोला भीड तबोपशृङ्ग
गुहाविसारीव्यतिवाहितानि मया कथं विदुषवगजिन्तानि ॥ २८ ॥

भीड, उस समय पहले का अनुभूत तुम्हारा सकम्प
भालिङ्गन मैंने स्मरण किया और उसी स्मृति से गुहा में
फँसनेवाला मेघगर्जन का समय मैंने किसी प्रकार धिक्काया ।

आमारिच्छित्तिव्यवयोगान्मामक्षिणोद्यत्र विमिश्रकोरीः ।
विहस्यमाना नवकन्दलैस्ते विवाहपूमादवलोकनधीः ॥ २९ ॥

उस शिखर पर मैंने विकसित कन्दली के नये पुष्प देखे
ष्टि से सीधी हुई भूमि के भाग के वन उसमें लगे हुए थे
नको देखने से मुझे विवाह के भूम से लाल हुई तुम्हारे
नों का स्मरण हो गया और उससे मुझे बड़ा कष्ट हुआ ।

वतान्वासीरवनेपगुह्यान्वाहयशक्तिवतारसावि ।
गुहाप्रीक्षां पिबन्तीष कोदादूनि वग्नास्तद्विहानि दृष्टिः ॥ ३० ॥

यह पम्पा का जल समीपस्थ चेतस घन से छिपा हुआ है। पर चञ्चल सारस थोड़ा दिखायी पड़ते हैं। उस पम्पा जल को दूर से पड़ी हुई मेरी दृष्टि मानों थक कर पान कर रही है यहाँ से हटना नहीं चाहती ।

भद्रावियुक्तानि रथाङ्गनाम्नामन्योन्यदत्तोत्पलकेशराणि ।

इन्द्रानि दूरान्तरत्पतिना से मया प्रिये ससृष्टमीक्षितानि ॥ ३१ ॥

यहाँ पम्पासर पर मैंने अच्युक्त चक्रवाक दम्पती को देखा था। वे आपस में एक दूसरे को कमल केशर दे रहे थे उनको तुमसे दूर रहने वाले मैंने यही स्पृहा से देखा था ।

इमां वदशोकलतां च तन्वीस्तनाभिरामस्तवकाभिनयाम् ।

त्वत्प्राप्तिं दुष्या परिश्रुतामः सौमित्रिणा साधु रदं निषिद्धः ॥ ३२ ॥

इस पतली पम्पातीर की अशोकलता को, जो गुच्छरूपी स्तनों के कारण नय गयी है, देख कर मैंने समझा कि तुम मिल गई और आलिंगन करने के लिए चला, पर रोते हुए लक्ष्मण ने मुझे दैसा करने से रोक दिया ।

भूर्भिमनान्तरलम्बिनोर्ना भ्रुत्वा स्वर्न कांचनकिंकिणीवाम् ।

माधुरन्तीव समुत्पतन्वो गोदावरीसारमपद्रुयस्त्वाम् ॥ ३३ ॥

विमान के भीतर छटकनेवाली सुवर्ण की घंटियों का शब्द सुन कर आकाश में उड़ने वाली यह गोदावरी के सारसों की वंक्ति तुम्हारी ओर आ रही है ।

पद्मा स्वपापेशरुमध्यपापि यथासुखं वर्धितकाङ्क्षया

मानन्दपद्ममुत्तुल्लङ्घ्यसारा दूरा चिरान्त्यवयटी मनो मे ॥ ३४ ॥

यह पंचवटी है, जहाँ छोटे छोटे आम के वृक्षों को घड़ों के फल से तुमने घड़ाया था, जिसमें कृष्णमृग ऊपर की ओर

रहे हैं । बहुत दिनों पर देखने के कारण यह पंचमों
के आनन्दित पर रही है ।

भद्रानुगोदं गृहयानिगृह्यस्तरंगवानेन विनीतमेदः ।

रहस्त्वदुत्सङ्गनिगमं मुखं स्मगमि वानीरगृहेषु सुतः ॥ १५ ॥

यहाँ गोदावरी के तीर पर मैं शिकार में लौट कर आया ।
गोदावरी की तरंगों से मेरी थकावट दूर हुई और मुझमें
गोद में मैं सो गया । मैं वत्स गृह का अपना सोना स्मरण
करता हूँ ।

धूमेदमाग्रेण पदान्मथोनः प्रभंशयां यो नहुषं चकार ।

सम्पाविलाग्मःपरिशुद्धिरेतोर्भांमो मुनेःस्थानद्विप्रतोऽयम् ॥ १६ ॥

जिन्होंने भृकुटि के संचालन मात्र से नहुष को इन्द्रपद से
हटा दिया था, उस मुनि का—जो गोद से अल को शुद्ध बनाने
है यह पृथ्वी का स्थान है, अर्थात् अगस्त्य का आश्रम है ।

प्रेताग्निधूमाग्रमनिन्वकीर्तेस्तस्मेदमाकान्तविमानमार्गम् ।

प्रात्वा हविर्गन्धिर्जोविमुक्तः समश्नुते मे रुपिमानमात्मा ॥ १७ ॥

उस महर्षि के तीनों अग्नियों का धूम जिसमें हवि
की गन्ध है, विमानमार्ग तक आ रहा है, उसके सूँघने से
मेरा मन निष्पाप होगया है और यह हलका मादूम
पड़ता है ।

गृह्यमुनेर्मानिनि शतकर्णेः पञ्चाक्षरो नाम विशाखादि

भमाति पर्यन्तचर्चं विद्वरान्मेघान्तरालस्यमिधेन्दुविभ्रम् ॥ १८ ॥

हे मानिनी, यह शतकर्णी मुनि के पञ्चाक्षर नामक झींझा-
तर है जो चारों तरफ से घन से घिरा हुआ, मेघों से छिपे
चन्द्रमा के समान मादूम पड़ता है ।

दुष्टा न दम्यन्तामस्मिन्निष्ठायाः । साधुर्न विमर्शयति ।

अस्मादिच्छन्ति विमर्शयतिः दम्यन्तामस्मिन्निष्ठायाः ॥५५॥

जाने ये मुनि दम्यन्तुर जानें ये भीरू मुनी के । साथ रहने
ये । उसकी मर्यादा में व्यवहार होकर इष्ट में योग अप्पाराभी
को मंत्र कर काट जान्द गया था ।

साधुदम्यन्ति विमर्शयन्तिः । दम्यन्तामस्मिन्निष्ठायाः ।

विमर्शयति । दुष्टा न दम्यन्तामस्मिन्निष्ठायाः । न विमर्शयन्ति । ॥५५॥

जिसे दूरे भटाभी में रहनेवाले दम्य मुनि के यहाँ रहने
वालेवाले दम्य का योग, दुष्ट का विमान के उतरवाले कामें
को निष्ठाविन कर रहा है ।

विमर्शयन्ति दम्यन्ति । दम्यन्तामस्मिन्निष्ठायाः ।

विमर्शयन्ति । दम्यन्तामस्मिन्निष्ठायाः । ॥५५॥

साधुदम्यन्ति दुष्टान् । साधु जानें ये दम्यते सदस्यी तदस्या
जानें हैं, ये दम्यन्ति कर रहे हैं, दम्यन्ति तो चार तो
मर्श है भीरू वाच्यो मूर्ध् ।

अमुं गच्छन्ति विमर्शयन्ति । साधुदम्यन्ति दम्यन्ति ।

गच्छन्ति विमर्शयन्ति । अमुं गच्छन्ति विमर्शयन्ति । ॥५५॥

यद्यपि इनकी मर्यादा ने भी इष्ट को हाथ होगयी है,
जाने इनके लिए भी व्यवहार्य नेभी है । पर दुष्टुराहट भीरू
की मिला उनका दम्यता, विमर्श यदाने करधनी का दित-
ताना तथा उनके हीरू दिताना व्यवहार इनको विचलित
ही कर गये ।

अमुं गच्छन्ति विमर्शयन्ति । साधुदम्यन्ति दम्यन्ति ।

गच्छन्ति विमर्शयन्ति । अमुं गच्छन्ति विमर्शयन्ति । ॥५५॥

ये ऊर्ध्व बाहु हैं, हमारे स्वागत के लिए इन्होंने
भुजा हमारी ओर उठायी है, उसमें अक्षमाला का
धारण किया है और वह हाथ मृगों की छुजलाहट दूर
है तथा कुश लाता है ।

‘सार्धयमत्वात्मयति’ ममैव कम्पेन किञ्चिन्प्रतिगृह्य स्म’ ।

‘दृष्टि’ विमानम्ययधानमुक्तां पुनः सहस्रार्धिपि संनिधत्ते ॥४॥

ये मौनी हैं, इस कारण शिर थोड़ा हिला कर इन्होंने
प्रणाम ग्रहण किया है, विमान के ध्ययधान से मुक्त हुई दृष्टि
पुनः सूर्य की किरणों में ये लगाते हैं ।

अहः शरण्याः शरमङ्गनाप्रस्तपोवनं पावनमाहितान्ते ।

चिराय संतर्प्यः समिदिरग्निं यो मग्गपूतां तनुमप्यदोषीव ॥५॥

यह अग्निहोत्री शरमंग मुनि का पवित्र तपोवन है
जहाँ शरणागियों की रक्षा होती है । लकड़ियों से बहुत
दिनों तक अग्नि को रागुष्ट कर जिसने अन्त में मग्गपूत
अपने शरीर का भी क्षय कर दिया ।

बापागिनोताप्यतिष्ठमेव भूविह तमाप्यकलेषमीव ।

तत्पातिषीवामपुना सपर्यां स्थिता गुपुत्रेन्विषपारपेव ॥६॥

भात्र शरमंग के अतिथियों की परिचर्या गुपुत्र के समान
उनके आश्रम के वृक्षों पर है, ये वृक्ष अपनी छाया द्वारा पथियों
के पत्थिम को दूर करने हैं, और अनन्क प्रकार के फल देते हैं ।
अर्थात् महर्षि यथ नहीं हैं ।

काराग्न्यनोदगादिरीमुखोऽग्नौ शृङ्गाग्रमग्नान्गुद्वयवर्धकः ।

वज्रानि मे कपुताग्निं कपुद्वंशः कटुप्रानिष चिगहृत् ॥७॥

दरौकरी मुख से लज्जा शब्द हो रहा है, जिसके शृङ्ग
(शिखर या शीत) में वज्र की वज्रपक लगा हुआ है, है कपुतर,

गात्रि, यह चित्रकूट पर्यंत मस्त धूल के समान मेरी आँखों को बांध रहा है ।

एषा प्रसन्नस्तिमितप्रभादा सरित्त्रिपुरान्तरमावतन्वो ।

मन्दाकिनी भाति मग्नोपकटे मुक्तावली दण्डगतैव भूमेः ॥ ४८ ॥

यह मन्दाकिनी नदी बहुत दूर होने के कारण छोटी मानूम पड़ती है, इसका प्रवाह सुन्दर और निश्चल है, पर्यंत के पास यह नदी घुप्यों के गले में पड़ी हुई मोतियों की माला के समान मानूम पड़ती है ।

अथ मुखाधोऽनुगिरं तमालः दद्यात्तमादाय सुगन्धि वस्य ।

यवाङ्कुरा वाण्डुषपोलशोभी मयावतंसः परिकल्पितस्तैः ॥ ४९ ॥

पर्यंत के पास सुन्दर उत्पन्न हुआ यह तमाल वृक्ष दिखाई पड़ता है, जिसके सुगन्धित पत्र लेकर यवाङ्कुर के समान पीले तुम्हारे कपोलों पर शोभने वाला कर्णभूषण मने बनाया था ।

अनिमद्विषासपिनीतसन्त्यमपुष्पलिङ्गात्फलबन्धि वृक्षम् ।

वर्तयः साधनैस्तद्वेराविष्टतः इमतरप्रभावम् ॥ ५० ॥

यह अत्रि मुनि की तपस्या का घन है, जहाँ उनका विशाल प्रभाव स्पष्ट दीख पड़ता है । बिना दण्ड और भय के ही यहाँ के जन्तु चिन्तित हैं और पुष्प के बिनाही वृक्ष फल देते हैं ।

अत्राभिप्रेक्षाय तपोधनानी सप्तर्षिस्तोदृष्टदेवपदमाम् ।

प्रवर्तयामास चित्तानुसूया सिद्धोत्तमं म्बम्बनौलिमालाम् ॥ ५१ ॥

अत्रि मुनि की पत्नी अनुसूया ने यहाँ तपस्वियों के स्नान आदि के लिए गंगा को प्रवाहित किया है, जिस गंगा से सप्तर्षिगण सुवर्ण-कमल तोड़ते हैं और जो गङ्गा शिवजी के मस्तक की माला है ।

वीरासनैर्ध्याननुपासृषीणाममीसमध्यासितवेदेमध्याः ।

निवातनिष्कम्पतया विभान्ति योगाधिरूढा इव शास्त्रिनोऽपि ॥ ५२ ॥

जिस घेदो पर वीरासन से बैठ कर ऋषि लोग ध्य करते हैं, उस घेदो पर के वृक्ष वायु के न होने के कार निष्कम्प हैं और वे योगी के समान मात्सूम पड़ते हैं ।

त्वया पुरस्तादुपपाचितो यः सोऽयं वटः श्याम इति प्रतीतः ।

राशिर्मणीनामिव गारुडानां सपट्टमरागः परिलो विभाति ॥ ५३ ॥

तुमने पहले जिससे प्रार्थना की थी, यह वही प्रसिद्ध श्यामवट है, जो हरित मणि के राशि के समान मात्सूम होत है और फलने पर पट्टमराग युक्त हरितमणि के राशि के समान मात्सूम पड़ता है ।

कचिन्महासेपिभिरिन्द्रनीलैर्मुक्तामयी वहिरिवानुविद्धा ।

भग्नप्रमाला सितपङ्कजानामिन्दीवरैराश्वचिताःतरैव ॥ ५४ ॥

गङ्गा थीर यमुना की तरङ्गों के आपस में मिलने से मात्सूम पड़ता है कि मुक्तामयी यदि में प्रकाशमान इन्द्रनील हैं ही और श्वेत कमल की माला के समान मात्सूम पड़ता है तसके बीच बीच में नील कमल गूँथे गये हैं ।

कचिन्महानां त्रिप्रमाणानां कादम्बर्यसर्गावतीव पङ्क्तिः ।

भग्नप्रकाशागुल्फगजरा भक्तिमुपशब्दनकल्पितेव ॥ ५५ ॥

यहाँ मानसनेत्र के प्रेमी श्वेत हँसों की पङ्क्ति — जिसमें लें हँसों से मिल्यो हुई सी मात्सूम होती है, और वहाँ पेशी पर चन्दन से चित्र बनाया गया है जो फाले गज की बीच बीच में रेंसा खींची गयी सी मात्सूम पड़ता है ।

इचिन्प्रभा चान्द्रमसी तमोभिरलायाविलीनैशवली कृतेव ।

अन्यत्र शुभा शरदभलेसा रुध्रेष्विवाल्क्यनमःप्रदेशा ॥ ५६ ॥

कहीं छाया में छिपे अन्धकार से मिली हुई चन्द्रमा की
प्रभा के समान और कहीं शरद के शुभ्र मेघ के समान मालूम
पड़ता है जिसके मध्य में आकाश दिखाई पड़ता है ।

इचिञ्च हृण्योरगभूषणेषु भस्माङ्गरागा तजुरीवरस्य ।

पश्यान्वयाङ्गि विभाति गङ्गा मिश्रप्रवाहा यमुनातरङ्गैः ॥ ५७ ॥

कहीं महादेव के शरीर के समान मालूम पड़ती है, जिसमें
काले सर्प छिपे हैं और जो भस्म के कारण श्वेत है । हे
सुन्दराङ्गि, यमुना की तरङ्गों से मिलने के कारण गङ्गा ऐसी
मालूम पड़ती है, यह तुम देखो ।

अभिज्ञानशाकुन्तल से

वास्यस्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुन्मत्तया,

कण्ठः क्षमिभक्तवाप्यरुतिरनिशं चिन्ताजडं दर्शनम् ।

वैहर्ष्य मम तावदीदृशं महो स्नेहादरण्यौकसः

पीक्यन्ते गृदिणः कथं नु तनवाविश्लेषदुःखैर्नरेः ॥ ५८ ॥

भाज शकुन्तला जायगी, इससे मेरा हृदय उत्कण्ठित हो
गया है, गले में वाप्य के एक जाने से आवाज़ नहीं निकलती,
आँसों से कुछ दिखाई नहीं पड़ता । मैं घनवासी हूँ, फिर भी
स्नेह के कारण इतना व्याकुल होगया हूँ । तब संसारी जन
कन्या के नयीन वियोगदुःख से क्यों पीड़ित न होते होंगे ।

पातुं न प्रथमं श्यदस्यति जलं शुभ्रमाभ्यरीतेषु वा,
 बादणे नियममदनादि भयता स्नेहेन वा पतय
 आधेयः शुभ्रमप्रगुनियमये यस्याभयमुन्मयः
 मेयपाति शत्रुना । पतिगृहं सर्वैरनुज्ञापयाम् ॥ ५९

धृष्टो को सम्योधन करके महर्षि कहते हैं,
 तब को बिना जल दिये जो श्यय पाहले जल न पीनी
 छपि उत्सको महने प्यारे थे तथापि स्नेह से भाग
 र्ही न तोड़ती थी, जब आप स्वय को पतले पतल फूल
 १, उस समय जो उत्सय करती थी, यह शत्रुन्तला
 पने पतिगृह में जाती है, आप स्वय आशा दें ।

यस्य त्वया मण्यपिरोत्तमिह्नी दीनी
 तैलं श्यपिष्यत मुले कुशसुविचिह्नी,
 श्यामाकमुष्टिपरिवर्द्धितरो जहाति
 सोऽयं न पुत्रकृतकः पद्वी मृगस्ते ॥ ६० ॥

जिस मृग को कुश का डाल लगने से घाय होगया
 र उसमें इङ्गुदी का तेल तुमने लगाया था, क्योंकि यह
 व भरने के लिए प्रसिद्ध है, जिसको तुमने साँचा की
 र पाला था, यह तुम्हारा छत्रिम पुत्र मृग तुम्हारा स
 र छोड़ता ।

अस्मान् साधु विविन्त्य संव्रमधनानुचैःकुलं स्वात्मनः
 स्वयस्यस्याः कथमप्यवान्धवृत्तां स्नेहप्रवृत्तिं च ताम्,
 सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया,
 भाग्यायत्तमतः परं ॥ खलु तद्वाप्यं वधूवन्धुभिः ॥ ६१ ॥

मुनि शत्रुन्तला के लिए राजा को सन्देश कहते हैं—
 । तपस्वी हैं इस बात को सोच कर अपने ऊँचे कुल

कविता-कौमुदी ।

ओर देख कर और यान्धवों की आश्रा के बिना भी इसने जो तुम पर प्रेम किया है, उसकी ओर देख कर तुम अपनी स्त्रियों में इसे साधारण प्रतिष्ठा का पद देना, इसके बाद जो कुछ है वह भाग्याधीन है, यह कन्या के स्वजनों के कहने की बात नहीं है ।

शुभं पश्य गुरुन् कुरु प्रियसखीवृत्तं सपत्नीजने,
भर्तृविंप्रकृतापिरोपकृतया मास्म प्रतीर्ष गमः,
भूयिष्यं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुरसेविनी,
यान्येषं गृहिणीषद् सुवतयो वामा कुलस्थाधयः ॥ ६१ ॥

पतिगृह में जाने के समय मुनि ने शकुन्तला को उपदेश दिया— यज्ञों की सेवा करो, अपनी सौतों से प्रियसखी के समान व्यवहार करो, पति यदि अपमान भी करें तो क्रोध से उनके चिरुदाचरण मत करो, नौकर चाकरों के साथ उदारता पूर्वक व्यवहार करो । अपने भाग्य का गर्व मत करो, स्त्रियाँ इसी प्रकार गृहणी पद पाती हैं, इससे विपरीताचरण करनेवाली छल की कण्टका होती हैं ।

भर्तृविं कन्या परकीय एव
सामय सम्प्रेष्य परिगृहीतुः
जातो ममार्य विशदः प्रकामं
मन्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा ॥ ६२ ॥

कन्या परकीय धन है, उसको पति के पास भेज कर मेरी आत्मा हल्की होगयी है, जिस प्रकार किसी की धाती लौटाने पर आत्मा प्रसन्न होती है ।

मेघदूत से

भनुमिंशं प्रियमपिधवे विद्धिमामम्बुवाहं
तत्सन्देशौहं दयनिहितैरागतं त्वत्समीपम्,
यो वृन्दानि न्वरयति पथि श्राम्यतां शोषितानाम्,
मन्दस्निग्धैर्ध्वनिभिरवलावेषिमोक्षोन्मुक्तानि ॥ १४ ॥

यक्ष मेघ से अपना स्त्री से कहने के लिए सन्देश कह
है। मैं तुम्हारे पति का मित्र हूँ, मुझे तुम मेघ समझो।
तुम्हारे पति का संदेश लेकर मैं आया हूँ, मेरा गर्जन सुन
मार्ग में थिथाम करनेवाले ये पथिक जानने के लिए जल
फरते हैं, जो अपनी स्त्री के वियोगिनी चिन्ह घेणी वध गुह
याने के लिए उत्सुक रहते हैं।

इत्याकषाते पवनतनयं मैथिलीशोन्मुत्ती सा
त्वामुत्कण्ठोत्थमितवृद्धया वीक्ष्य संभाष्य चैव,
धोष्यत्यस्मात् परमयदिता सीम्यसीमन्तिनीनां
कान्तोदन्तः सुहृदुपगतः संगमात् किञ्चिद्वनः ॥ १५ ॥

जब तुम ऐसा कहोगे तो यह हनुमान को जानकी के
समान उत्फण्डित होकर तुम्हारी ओर देखेगी और तुम्हारा
सम्कार करेगी। इसके पदघात साधधान होकर तुम्हारी घाने
सुनेगी। सीम्य स्त्रियों के लिए पति का संदेश उसके मित्र के
द्वारा यदि मिले तो संगम से थोड़ा ही कम है।

तामायुष्मन् मम च वचनादात्मनश्चीनदनुं
मूपा पृथ तव सहचरो रामगिर्याधमन्यः
अप्यारब्धः कुशलमयले वृष्टति त्वी विपुलः
इर्नामात्वं मुह्यतिविदां प्राथिनामेवदेव ॥ १६ ॥

अथैस्तावन्मुहुर्यचितैर्दृष्टिरानुप्यते मे
कूर्ममित्रश्चपि न सङ्गते सङ्गमं नी कृतान्तः ॥ ६९ ॥

गेरू आदि घानुओं से पत्थर पर मैं तुम्हारी प्रणय कुं
मूर्ति अङ्कित करता हूँ, और उस मूर्ति के चरणों पर अ
पड़ना चाहता हूँ उस समय आँसू से आँखें भर जाती हैं,
भाग्य ऐसी दशा में भी हम लोगों का सङ्गम नहीं देख सक

मामाकाशप्रणहितमुने निर्दयारहेपहेतो-
लंघ्यावास्ते कथमपि मया स्वप्नसन्दर्शनेषु,
पश्यन्तीनां न खलु यदुशो न स्थली देवतानां
मुक्तासूलास्तारुकिशलयेष्वथु लेखाः पतन्ति ॥ ७० ॥

स्वप्न में जब कभी मैं तुमको पाता हूँ, तब गाढालिङ्गन
करना चाहता हूँ और गाढालिङ्गन करने के लिए आकार
में—शून्य में हाथ बढ़ाता हूँ, मेरी यह दशा देख कर घन देव
ताओं के बड़े बड़े अश्रुचिन्दु वृक्षों के पत्तों पर गिरते हैं ।

भिरवा सद्यः किशलयपुयान् देवदारुदुमायान्
वे तवक्षीरश्रुतिमुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः
आलिङ्गन्ते गुणवतिमया ते तुषाराद्रिवाताः
पूर्वस्पष्टं यदि किलभवेदङ्गमेभिस्त्ववेति ॥ ७१ ॥

देवदारु वृक्ष के पत्तों से होकर और उसके दूध से सूर्य
जो हिमालय की वायु दक्षिण की ओर से चलती है उसका
इस अभिप्राय से आलिङ्गन करता हूँ कि पहले इस वायु
तुम्हारे अंगों का संयोग हुआ होगा ।

कुमारदास

इन्होंने जानकीहरण नाम का काव्य लिखा है, इनका यह काव्य कालिदास के काव्यों के बराबरी का है । महाकवि राजशेखर ने इनके विषय में इस प्रकार लिखा है:—

जानकीहरणं कर्तुं रघुवंशे स्थितं सति

कविः कुमारदासो वा रायणो वा यदि क्षमी ।

कुछ लोगों का कहना है कि ये कुमारदास सिंहल के राजा थे और कालिदास के मित्र थे । छठी सदी में कुमारदास नाम का एक राजा सिंहल द्वीप में था, इसका पता मिलता है । सम्भव है तीन कालिदासों में का दूसरा या तीसरा कालिदास इनका मित्र भी रहा हो । सतीशचन्द्र विद्याभूषण ने बतलाया है कि कालिदास की समाधि का पता सिंहल में लगा है ।

जोहो, इन बातों से यह मानना कि रघुवंश कर्ता कालिदास के मित्र कुमारदास थे यह ठीक नहीं, क्योंकि दोनों के समय में विशेष भ्रान्तर है । हां सिंहल के राजा की रामचन्द्र में ऐसी प्रगाढ़ भक्ति का होना अवश्य ही एक आश्चर्य की बात है ।

कुमारदास की कविता यही ही सरस और स्वाभाविक होती थी, इन्होंने अपना काव्य रघुवंश को आदर्श मान कर बनाया है, दुःख की बात है कि आज इसका प्रचार नहीं । इनके कुछ श्लोक सुनियें ।

शिशिरशीकरवाहिनि माह्वते

परति शीतलमपादिव सन्वरः ।

मनसिजः प्रविवेश वियोगिनी—
हृदयमाहितशोकहुताशनम् ।

शिशिर ऋतु में ठंडे जलकण लेकर जब हवा घबही थी तब शीत के भय से कामदेव शीघ्रही वियोगिनियों के हृदय में घुस गया, क्योंकि वियोगिनियों के हृदय में शोकान्ति रक्ती हुई है ।

मान्वा विचरवानथ दक्षिणाशा,
मालम्ब्य सर्वत्र करप्रसारी,
पत्न्यक्ततो निःस्थ ह्य प्रस्थे
वसुपलभ्यै धनदस्य वाराम् ।

वर्द्धि पुरोहित जिस प्रकार दक्षिणा की भाशा से चारों तरफ हाथ फैलाता फिरता है और धन के लिए दाता के पास जाता है । उसी प्रकार सूर्य दक्षिणाशा दक्षिण दिशा में घूम कर उसने सब जगह पर—हाथ फैलाये और प्रकाश प्राप्त करने के लिए कुयेर की दिशा—उत्तर दिशा में घट गया ।

अपि त्रिजहीहि दूरीणगुद्वयं
स्थत्र नयगंगमभीद पादुभे,
भरणोद्गम एव धर्मते
वाननु सम्यग्दन्ति कुक्कुटाः,

इह भालिङ्गन अथ छोहं, नयगंगम से बल पादुभे, छोहो यह भरणोदय होगहा है, कुक्कुट बोल रहे हैं ।

परमत्र हतो मग्मगृह्णितैः
गन्धो विधानुं न विनीत्य यत्तुः
रक्त विधाया दि कृती कथं ना—
विजगत्त मय्यो मुमनेर्विन्दतैः ।

यदि देवता हुआ बनाता तो कामदेव के दृष्टिपात से अवश्य मारा जाता और बाँचे चन्द कर बनाने की उसमें शक्ति ही नहीं है, फिर प्रजा ने जँघा कैसे बनाये, यह युद्धिमानों का उसके विषय में चिन्तक है ।

ययः प्रवर्षादुपचीयमान-

स्तनदूषस्रोद्हनधमेय

भन्यन्तकार्ष्यं वनजापताश्या

मध्वो जगामेति ममैष तरुः ।

उमर के साथ साथ यद्ने धाळे स्तनों के दोने के परि-
धम से उस कमलाक्षी की कमर पतली होगयी है, यह मेरा
तर्क है ।

कृष्णमिश्र यति

इन्होंने प्रबोधचन्द्रोदय नाम का एक नाटक बनाया है ।
कीर्तिवर्मा नाम के चालुक्य राजा के आश्रय में ये रहते थे ।
कीर्तिवर्मा "चन्द्रान्वय" कहे जाते थे, चालुक्य वंशवाले अपने
को चन्द्रवंशी समझते हैं इसी कारण कीर्तिवर्मा का विशेषण
"चन्द्रान्वय" था, फल सूरी वंश का राजा कर्ण कीर्तिवर्मा का
शत्रु था । उसने कीर्तिवर्मा को पराधीन बना दिया था, पुनः
उसके सेनापति ने इन्हें स्वाधीन बनाया, ये ग्यारहवीं ई० सदी
में उत्पन्न हुए थे ।

कृष्णमिश्र का प्रबोध चन्द्रोदय धार्मिक नाटक है, उसमें
कामक्रोध आदि कुवृत्तियों के आस्फालन का वर्णन है, क्षमा
सन्तोष आदि से होनेवाले लाभ भी बतलाये गये हैं, अन्त में
ब्रह्मत्व का भी निरूपण अच्छे ढंग से किया गया है । यह
नाटक भक्तिप्रधान है ।

दृशामिप्रथमेन महोदगागाम्

शुश्रूषणे जगति वैरमिनि प्रविष्टम्,

दृष्टीनिनिगननाम्पुष्टाग्न्यशाम्,

तीक्ष्णतण्डि मुनश्चपट्टिरंघः ।

एक पशु को चाह में महोदर भाइयों में भी घेर होजा
दियह प्रसिद्ध है । शृङ्गवी के ही कारण कौरव पाण्डवों

फटिन पिरोध हुआ था और उसमें संसार का नाश हुआ

सदजमश्चिन्वस्त्रमावभात

भवति भवः प्रमथामनाशस्तुः

जलपापद्वीमयाय ध्रुमा

ज्वलनयिनाशमनुप्रयानि नाशम् ।

स्वभाय में मोच और बुझिल प्रकृतिवाले मनुष्यों
जन्म अपने और अपने कुल के नाश के लिए होता है ।

मेघ घन कर पहने धग्नि का नाश करता है पुनः स्वयम्
नष्ट होजाता है ।

अन्धीकरोमि भुवनं वधिसीकरोमि,

धीरं सचेतनमचेतनतो नयामि ।

शृण्वं न पश्यति न ये नदि तं गृणोति,

धीमानधीतमपि न प्रतिसम्प्रधाति ।

क्रोध कहता है कि मैं लोगों को अन्धा बना देता हूँ
धीरों बना देता हूँ, मैं ऐसा कर देता हूँ जिससे मनुष्य अपने

कर्त्तव्य भूल जाता है, बुद्धिमान मनुष्य भी पढ़े हुए विद्वानों के
स्मरण नहीं कर सकता है ।

प्यायन्ति वां सुखिनि दुःखिनि चानुकम्पा

पुण्यक्रियासु मुदितं कुमतापुनेशाम् ।

पूर्वं प्रसादमुपयाति हि रागलोभ-

छेपादिदोषकलुषोऽप्ययमन्तरात्मा ।

जो सुखियों से मैत्री, दुःखियों से प्रेम, पुण्य से प्रसन्नता का अनुभव और कुबुद्धि की उपेक्षा करते हैं उनका अन्तरात्मा, राग लोभ द्वेष आदि दोषों में कलुषित होने पर भी शुद्ध हो जाता है ।

प्रायः सुकृतिनामर्थे देवायान्ति सहायताम्,
अपन्थानं तु गच्छन्तः सोऽदोऽपि विमुञ्चति ।

पुण्यात्माओं के कार्यों में प्रायः देवता लोग भी सहायता करते हैं और कुमार्ग जानेवाले का साथ सहोदर भाई भी छोड़ देता है ।

ममो न वाचा शिरसो न शूलं
न चित्तापो न तनो विमर्शः
न चापि हिंसादिरन्धयोगः
स्वाध्याय परं मोक्ष जयेऽहमेका ।

यद्यन को परिश्रम नहीं करना पड़ता । शिर में दर्द ही होता है, चित्त को भी दुःख नहीं होता, शरीर के टूटने फूटने का भी भय नहीं रहता, हिंसा आदि पापों के होने का भी भय नहीं रहता, केवल मैं ही (क्षमा) मोक्ष को जीतने के लिए उत्तम साधन हूँ ।

तं पापकारिणमकारणवाधितारं
स्वाध्यायदेवपितृयज्ञतपःक्रियाणाम्
मोक्षस्फुलिङ्गमिव दृष्टि भिन्नं मामस्मि
कान्तायनीवमहिर्षं विनिपातयामि ।

इस पापी को जो बिना कारण स्वाध्याय, देव यज्ञ पितृ-यज्ञ आदि क्रियाओं को नष्ट करता है, आशों से अग्नि स्फुलिंग उगलता है जिस प्रकार कान्तायनी ने महिषासुर को मार-या—मैं (क्षमा) पछाड़ूंगी ।

पुनरिति यथाभवेत् सदांस्तानाम्
 मुमुक्षुर्न जगति वैमिषि प्रविष्टम्
 वृषीनिनिगमभासकुटान्द्रवाभम्
 तीक्ष्णगादि भुवनत्रयद्विरंशः ।

एष यस्तु यो चाह मे महोदर भाश्यां मे
 दीयद् प्रसिद्ध है । वृषीणां के ही कारण यो
 कठिन विरोध हुआ था और उसमें संसार व
 सद्गुणमन्त्रिणवत् प्रभावभावात्
 भवन्ति मयः प्रभवामनाशहेतुः
 जन्मपापद्वयोमया य धर्मा
 उपलभ्यमानाश्चानुप्रवाणि नाशम् ।

इयमाय मे नीच और कुटिल प्रवृत्तियाँ
 जन्म भपने और अपने कुल के नाश के लिए
 मेघ धतूँ कर पहले अग्नि का नाश करता है पु
 नष्ट होजाता है ।

अन्धीकरोमि भुवनं बधिरीकरोमि,
 धीरं सचेतनमचेतनतां वषामि ।
 कृत्स्नं न पश्यति न ये नहि तं शृणोति,
 धीमानघोतमपि न प्रतिसम्प्रदाति ।

क्रोध कहता है कि मैं लोको को अन्धा व
 धरायना देता हूँ, मैं ऐसा कर देता हूँ जिससे म
 कर्त्तव्य भूल जाता है, बुद्धिमान मनुष्य भी पढ़े हुए
 स्मरण नहीं कर सकता है ।

प्यावन्ति यो मुखिनि दुःखिनि
 पुण्यक्रियासु मुदितान्
 एवं प्रसादमुपयाति हि
 छेपादिदोषकलुषोऽ

क्षेमेन्द्र

ये कश्मीर के रहनेवाले थे । काश्मीरराज अनन्तराज के समय में इन्होंने समय भातृका नामका एक ग्रन्थ बनाया था । ये दसवीं सदी के समझे जाते हैं । ये बहुत बड़े पंडित लोक-प्रवहार-चतुर सुकवि और परिश्रमी थे, इन्होंने बौद्ध-साहित्य की भी पुस्तकें लिखी हैं । इनके बनाये तीस ग्रन्थों का पता अभी तक मिला है ।

क्षेमेन्द्र के बनाये ग्रन्थ

- | | |
|----------------------|-------------------------|
| १ अमृततरंग काव्य, | १६ योधिसत्यायदानकल्पलता |
| २ अथसरसार, | १७ भारतमंजरी, |
| ३ औचित्यविचार चर्चा, | १८ मुकायली, |
| ४ फलफज्जानकी, | १९ राजावली, |
| ५ कलाविलास | २० रामायणमंजरी, |
| ६ कविकंठाभरण, | २१ लावण्यवती, |
| ७ चतुर्गंगसंग्रह, | २२ लोकप्रकाशकोश |
| ८ चारुचर्या, | २३ वात्स्यायनसूत्रसार, |
| ९ चित्रभारत, | २४ व्यासाष्टक, |
| १० दशावतार चरित, | २५ शशिवंशमहाकाव्य, |
| ११ देशोपदेश, | २६ समय भातृका, |
| १२ नीतिकल्पतरु, | २७ सुवच तिलक, |
| १३ पद्यकादंबरी, | २८ सेव्यसेवकोपदेश, |
| १४ पवनपंचाशिका, | २९ शिवसूत्रविमर्शिनी |
| १५ वृद्धकथा मंजरी, | ३० स्पन्दनिर्णय, |

शेष यौद्ध दर्शनों में इनका अनुराग था, इस कारण कुछ लोगों की समझ है कि ये पहले शेष में भीरु पुनः यौद्ध हो गये थे । इनके फलित्व्य ग्रन्थों में इनका शिष्यानुराग और फलित्व्य ग्रन्थों में बुद्धानुराग शीघ्र पढ़ना है । दोनों दर्शनों से सर्वप्रथम रगनेवाले ग्रन्थ भी इन्होंने बनाये हैं ।

एवाग्ने पेशलता गुणैर्यज्जिता ह्येनिरमंक्षता
मंत्रे मंत्रता धनौमुमन्त्रिता विनोदये स्थागिता ॥
साधौ सादरता शले विमुक्ता पापे परं धर्मात्
दुःखे हं शमद्विष्णुना च महता कल्याणमाकांक्षति ॥ १ ॥

प्रभुता में निपुणता, गुणों में प्रेम, हृदय में निरमिमन्त्रिता, मन्त्र में गुप्ति, शास्त्रों में सुबुद्धि, धन होने पर दान, साधुओं का आदर, शलों से पराङ्मना, पापों से डर, दुःख में हंश सहन करने की शक्तिये सब गुण महारमात्र को कल्याण देने वाले हैं ।

सामिमानमासमाप्यमौचित्यव्युत्तमप्रियम्
दुःखावमानदीर्घं वा न यदस्ति गुणोद्यताः ॥ २ ॥

गुणी मनुष्य ऐसी बातें नहीं कहते जिनसे अभिमान जाहिर हो, जो असम्भव हो, उचित न हो, प्रिय न हो, दुःख अपमान अथवा दीनतायुक्त हो ।

प्रते विवादं विमर्ति विवेके सन्धेतिशोकी विनये विकारम्
गुणैवमानं कुशले निषेधं धर्मो विरोधं न करोति साधुः ॥ ३ ॥

प्रति में विवाद, विवेक में मतभेद, सत्य में सन्देह, चित्त में दुर्भावना, गुण में अपमान, कुशल का निषेध और धर्म का विरोध सज्जन मनुष्य कभी नहीं करते ।

म्यायः खलैः परिहृतश्चलितश्च धर्मः कालः कलिः कलुष एव परं प्रवृत्तः ।
प्रायेण दुर्जनजनः प्रभविष्णुरेव निश्चक्रिकः परिमवास्पदमेव साधुः ॥ ४ ॥

खलोंने न्याय नष्ट कर दिया, धर्म विचलित हुआ, पाप-
रूपी कलियुग प्रवृत्त हुआ, प्रायः दुर्जन मनुष्य ही शक्तिमान
हूए और छलकपटहीन सज्जन पुरुषों का पराजय हुआ ।

पापी पवित्रपति नैव गुणान्विष्णोति स्नेहं न संहरति नापि मर्लं प्रसूते ।
दोगावसानहचिरश्चलता न धरो सत्संगमः सुकृतिसमन्नि कोपि दीपः ॥ ५ ॥

पाप को पवित्र करता है, गुणों को (गुण या दीपक की वसी)
नष्ट नहीं करता, स्नेह (तेल या प्रेम) का नाश नहीं करता,
कालिख (गुराई या कालिल) भी उत्पन्न नहीं करता, दोषों को
(दोषा रात्रि या दोष) समाप्त करना चाहता है और चञ्चल
नहीं होता । यह सत्समागम रूपी एक अद्भुत दीप सज्जनों के
घर में रहता है ।

जीवनग्रहणे मग्ना गृहीत्वा पुनस्तथिताः

॥ कतिपया उत ज्येष्ठा घटीवर्त्तस्य दुर्जनाः ॥ ६ ॥

जीवन (जल या प्राण) के ग्रहण करने में मग्न, और जीवन
ग्रहण कर पुनः उठ खड़े होने वाले दुर्जन, क्या भरहट से छोटे
हैं या बड़े ! जल लेना होता है तो भरहट नष्ट होजाती है
और जल लेकर यह ऊँची होजाती है, इसी प्रकार दुर्जन भी
काम के समय नष्ट होजाते हैं, और काम होजाने पर अलग
हो जाते हैं ।

सदा खण्डनयोग्याय सुपटुर्वाशयाय च

ममस्तु बहुवीज्याय खलायाहखलाय च ॥ ७ ॥

शैव यौद्ध दर्शनों में इनका अनुराग था, इस कारण कुछ लोगों की समझ है कि ये पहले शैव थे और पुनः यौद्ध हो गये थे । इनके कतिपय ग्रन्थों में इनका शिवानुराग और कतिपय ग्रन्थों में बुद्धानुराग दीप्त पड़ता है । दोनों दर्शनों से संबंध रखनेवाले ग्रन्थ भी इन्होंने बनाये हैं ।

६. स्वाग्ने पेशलता गुणेष्वपि ता हर्षं निरसंज्ज्ञा
मन्त्रे संवृतता धृतौमुमतिता विस्तोदये स्थागिता ॥
साधौ सादरता खले विमुलता पापे परं भीष्मा
दुःखे ह्येशमदिप्युता च महता कल्याणमाकांक्षति ॥ १ ॥

प्रभुता में निपुणता, गुणों में प्रेम, हर्ष में निरभिमानता, मन्त्र में गुति, शास्त्रों में सुबुद्धि, धन होने पर दान, साधुओं का आदर, खलों से पराङ्मुता, पापों से डर, दुःख में ह्येश सदन करने की शक्तिये सर्व गुण महारमात्र को कल्याण देने वाले हैं ।

साभिमानमासंभाष्यमीषित्पर्युतमश्रियम्
दुःखापमानदीनं वा न वदन्ति गुणैः प्रताः ॥ २ ॥

गुणी मनुष्य ऐसी बातें नहीं कहते जिनसे अभिमान जाहिर हो, जो असम्भव हो, उचित न हो, प्रिय न हो, दुःख अपमान अथवा दीनतायुक्त हो ।

मते विवाद विमर्ति विवेके सत्येतिर्शब्दां विनये विकारम्
गुणैः प्रमानं कुशले निषेध धर्मे विरोधं ॥ करोति साधुः ॥ ३ ॥

व्रत में विवाद, विवेक में मतभेद, सत्य में सन्देह, विनय में दुर्भावना, गुण में अपमान, कुशल का निषेध और धर्म का विरोध सज्जन मनुष्य कभी नहीं करते ।

न्यायः सलैः परिहृतप्रलितश्च धर्मः कालः कलिः कलुष एव परं प्रवृत्तः ।
मायेय दुर्जनवनः प्रमविष्णुरेव निश्चक्रिहः परिभवास्पदमेव साधुः ॥ ५ ॥

सलौने न्याय नष्ट कर दिया, धर्म विचलित हुआ, पाप-
रूपी कलियुग प्रवृत्त हुआ, प्रायः दुर्जन मनुष्य ही शक्तिमान
हूय और छलकपटहीन सज्जन पुरुषों का पराजय हुआ ।

पापों के विनाश नहीं है गुणान्धिलोति स्नेह न संहारति नापि मर्लं प्रवृत्ते ।
दोषावसानद्विराजलतां न धत्ते सत्संगमः सुहृदिसन्निधिं कोपि दीपः ॥ ५ ॥

पाप को पवित्र करता है, गुणों को (गुण या दीपक की बत्ती)
नष्ट नहीं करता, स्नेह (सेल या प्रेम) का नाश नहीं करता,
कालिख (दुराई या कालिख) भी उत्पन्न नहीं करता, दोषों को
(दोषा, रात्रि या दोष) समाप्त करना चाहता है और चञ्चल
नहीं होता । यह सत्समागम रूपी एक अद्भुत दीप सज्जनों के
घर में रहता है ।

जीवनग्रहणे मत्ता गृहीत्वा पुनरुत्थिताः
किं कनिष्ठा इव ज्येष्ठा घटीकर्णस्य दुर्जनाः ॥ ६ ॥

जीवन (जल या प्राण) के ग्रहण करने में मत्त, और जीवन
ग्रहण कर पुनः उठ खड़े होने वाले दुर्जन, क्या अरुहट से छोटे
हैं या बड़े ? जल लेना होता है तो अरुहट मत्त होजाती है
और जल लेकर वह ऊँची होजाती है, इसी प्रकार दुर्जन भी
काम के समय मत्त होजाते हैं, और काम होजाने पर अलग
हो जाते हैं ।

सदा सज्जनयोग्याय सुषूण्याशयाय च
नमस्तु बहुबीजाय सलायाहूतलाय च ॥ ७ ॥

शैव बौद्ध दर्शनों में इनका अनुराग था, इस कारण कुछ लोगों की समझ है कि ये पहले शैव थे और पुनः बौद्ध हो गये थे । इनके कतिपय ग्रन्थों में इनका शिवानुराग और कतिपय ग्रन्थों में बुद्धानुराग दोख पड़ता है । दोनों दर्शनों से संबन्ध रखनेवाले ग्रन्थ भी इन्होंने बनाये हैं ।

७. स्वाग्ने पेशलता गुणेप्रख्यिता हवे'निरुसंकता
मन्त्रे संवृतता भुतौमुमतिता वित्तोदये त्यागिता ॥
साधो सादस्ता खले विमुक्तता पापे परं भीर्ता
दुःखे ह्येशसहिष्णुता च महता कल्याणमाकीर्ति ॥ १ ॥

प्रभुता में निपुणता, गुणों में प्रेम, हर्ष में निरभिमानता, माय में शुद्धि, शार्यों में सुयुद्धि, धन होने पर दान, साधुओं का आदर, खलों से पराङ्मुता, पापों से डर, दुःख में ह्येश सहन करने की शक्ति ये सब गुण महारमाभ को कल्याण देने वाले हैं ।

नाभिमानमासंभाष्यमीधित्परयुतमप्रियम्
दुःखावमानदीनं वा न वदन्ति गुणोद्यताः ॥ २ ॥

गुणी मनुष्य ऐसी बातें नहीं कहते जिनसे अभिमान जाहिर हो, जो असम्भव हो, उचित न हो, प्रिय न हो, दुःख अपमान अपवा दीनतायुक्त हो ।

मने विवाद विमर्श विवेके कायेतिशयो विमये शिकारम्
गुणवमानं कुशलं निवेद्य धमे'विरोधं न करोति साधुः ॥ ३ ॥

मन में विवाद, विवेक में मतभेद, राग्य में राग्नेह, दुर्मायता, गुण में अपमान, कुशल का निवेद्य विरोध सधन मनुष्य कभी नहीं करने ।

न्यायः खलैः परिहृतश्चलितश्च धर्मः कालः कलिः कलुष एव परं प्रवृत्तः ।
प्रायेण दुर्जनवनः प्रमविष्णुरेव निष्प्रक्रिकः परिभवास्पदमेव साधुः ॥ ४ ॥

खलोंने न्याय नष्ट कर दिया, धर्म विचलित हुआ, पाप-
रूपी फलियुग प्रवृत्त हुआ, प्रायः दुर्जन मनुष्य ही शक्तिमान
हूँ और छलकपटहीन सख्तन पुरुषों का पराजय हुआ ।

सा। पवित्रयति नैव गुणान्मिश्रणोति स्नेहं न संहारति नापि मलं प्रवृत्ते ।
दोगवसानरविरश्चलतां न धरो सत्संगमः मुहुरितिसमिन् कोपि दीपः ॥५॥

पात्र को पवित्र करता है, गुणों को (गुण या दीपक की पत्ती)
नष्ट नहीं करता, स्नेह (तेल या प्रेम) का नाश नहीं करता,
कालिख (बुराई या फालिख) भी उत्पन्न नहीं करता, दोषों को
(दोषा रात्रि या दोष) समाप्त करना चाहता है और चञ्चल
नहीं होता । यह सत्समागम रूपी एक अद्भुत दीप सख्तनों के
घर में रहता है ।

जीवनग्रहणे नद्या गृहीत्या पुनरुत्थिताः

नि कनिष्ठा इत ज्येष्ठा घटीवर्म्मेस्य दुर्जनाः ॥ ६ ॥

जीवन (जल या प्राण) के ग्रहण करने में नद्य, और जीवन
ग्रहण कर पुनः उठ खड़े होने वाले दुर्जन, क्या भरहट से छोड़े
हैं या पड़े ? जल लेना होता है तो भरहट नद्य होजाती है
और जल लेकर वह ऊँची होजाती है, इसी प्रकार दुर्जन भी
काम के समय नद्य होजाते हैं, और काम होजाने पर भलम
हो जाते हैं ।

सदा खण्डनयोग्याय तुषटुर्लोक्याय च

नमस्तु बहुबीजाय खलायोल्लसलाय च ॥ ७ ॥

खल और उत्खल दोनों को नमस्कार, दोनों ही सण्डन (फाँड़ना या सण्डन) के योग्य हैं, दोनों के हृदय में तुष (भूसा या दुर्विचार) भरा हुआ है और दोनों ही अनेक योज घाते हैं ।

त्रिहृद्दुषितसन्पासः विन्दायी कलहोत्कटः ॥

तुष्यतामशुचिर्निन्धं विमर्ति पिशुनः शुनः ॥ ८ ॥

शुगल कुत्ते के समान है, क्योंकि दोनों ही अपनी जान से सत्पात्र (शुद्धपात्र या सञ्जन मनुष्य) को दुषित करते हैं, दोनों दुफड़े के अभिलाषी होते हैं, कलह करने में पक्के होते हैं और दोनों ही सदा अशुद्ध रहते हैं ।

बड़ी बान खलः पुष्पैर्लोत्पद्युत्पण्डितः ।

स्वपुणोदीरणे शोषः परनिन्दामु चास्पतिः ॥ ९ ॥

खल, माय्यपरा मूर्ख होने पर भी अशुभ पण्डित है पर आधर्य है । यह अपने गुणों के कहने में शोष और दूसरों की निन्दा करने में गृहस्पति है ।

कटः सुदुर्गुण्ये सर्वतोऽक्षिणोमुलः

मर्दनः शुनिमोहोके सर्वमागृय तिष्ठति ॥ १० ॥

मछनों की शुगलगोरी करने में खल के सभी ओर भाल, तिर और मुँद होने हैं, सब ओर उतरके जान है और सब को घेर कर यह रहता है ।

मन्थापुसादे मुनंभ्य माम्पर्यगडसंगिणः

त्रिहृद्दुषितेनापि कृश नैव प्रवर्तते ॥ ११ ॥

जिसके गले में मन्थरता नामक रोग हुआ है, उस मूर्ख की त्रिहृद्दुषित नामक रोग के द्वारा लीची ज्ञान पर भी प्रवर्तनी ।

मायामयः प्रकृत्यैव रागद्वेषमदाकुलः ॥

महतामपि मोहाय संसार इव दुर्जनः ॥ १२ ॥

संसार और दुर्जन दोनों ही समान हैं, दोनों मायामय हैं, स्वभाव से ही राग, द्वेष और मद से वे दोनों व्याकुल रहते हैं, इनसे बड़ों को भी मोह उत्पन्न हो जाता है ।

लघुमपि मायायी रघवत्येव लीलया ॥

लघुञ्च मदतां मध्ये तस्मात्सखल इति स्मृतः ॥ १३ ॥

माया के द्वारा अनायास ही (ल) आकाश का भी धिन्न वह बना लेता है, बड़ों के मध्य में वह लघु है, इसलिये खल कहा जाता है ।

खलेन धनमप्येन नीचेन प्रमविष्णुना ॥

विष्णुनेन पदस्थेन वा प्रजे क गमिष्यसि ॥ १४ ॥

खल यदि धनी हो, नीच यदि शक्तिशाली ही, खुगल यदि अधिकारी हो तो इस प्रजा की क्या दशा होगी ।

न खलते सज्जनपुत्रनीयया भुजगवक्रक्रिययापि दुर्जनः ॥

पिप इमाया समयाभिचारिणीं विदग्धतामेव हि मन्यते खलः ॥ १५ ॥

सज्जनों के द्वारा गहिर्त, खुगलखोरी के काम से भी दुर्जन मनुष्य लज्जित नहीं होते । खल मनुष्य छल फण्ट करनेवाली बुद्धि को विद्वत्ता ही समझते हैं ।

साधर्वं युधि शौर्यमप्रतिदत्तं तत्सखितासखलं,

पाशोत्तानकरः कृतः स भगवान्दानेन लक्ष्मीपतिः ॥

दैधर्यं स्वहाराससमुत्तनं लब्ध्वाभिचारं यराः

सर्वदुर्जनसंगमेन सहसा स्पष्टं विनष्टं बलेः ॥ १६ ॥

युद्ध में जिसका अप्रतिहन शौर्य था, जिससे इन्द्र भी परास्त होगये थे, जिसने दान के लिए, विष्णु से भी यात्रा करने के लिए हाथ फैलवाया, अपने हाथों से जिसने सातों भुवनों का ऐश्वर्य पाया था, जिसका यश समुद्र पार तक गया हुआ था, उस बलि का भी शीघ्र ही दुर्जनों के साथ से नाश हो गया ।

शमयति यशः क्लेशं सूते दिशस्यशिवं गतिं
जनयति जलोद्रेगायासं नयत्युपहास्यताम्
भ्रमयति मतिं मानं हन्ति क्षिणोति च जीवितं
क्षिपति सकलं कल्याणानां कुलं सलर्मगमः ॥ १३ ॥

दुर्जनों का साथ यश नाश करता है, फलेश उत्पन्न करता है, घुरी दशा घनाता है, मनुष्यों का उद्वेग और परेशानी बढ़ाता है, हँसी कराता है, युद्ध को घुमाता है, मान नष्ट करता है, प्राणों को भी हर लेता है । इस प्रकार यह समस्त कल्याणों के समूह का नाश करता है ।

न शान्तान्तस्तृष्णा धनलब्धवारिष्यतिकरैः

क्षतव्याधः कायभिरविरसकक्षाशनतया ॥

भनिद्रामन्दाग्निर्नृपसलिलचौरानलमया—

एकद्वारं कष्टं स्फुटमथमकष्टादपि परम् ॥ १४ ॥

धनरूपी त्वारे जल से मन की तृष्णा शान्त नहीं हुई, बहुत दिनों तक नीरस और सूखे भोजन से शरीर की कान्ति भी जाती रही, राजा जल चोर और जल के भय से अनिद्रा का रोग और मन्दाग्नि का रोग होगया है, इस प्रकार दुष्टों को जो कष्ट होता है, वह दुष्टों के कष्ट से भी बढ़ कर है ।

सदृक्काम्प्रतिनिः प्रसन्न भवते क्षैण्य क्षपावल्लभः—

स्तदुभ् विभ्रमतर्जितं च विनर्ति धत्ते धनुर्मन्मथम् ॥

तरयाः वेलवपल्लवघृतिमुष्ण शोषाघरेणादितं

मूर्ध्न प्राप्य विरक्ततां वनमहो विम्व समालम्बते ॥ १९ ॥

उसके मुख में हार कर चन्द्रमा लाचारी से क्षीण हो रहा है, उसके मौहों के विलास से तिरस्कृत होकर कामदेव का घनुष नष्ट हो गया है, उसके कोमल पहलुओं के समान सुन्दर लाल ओठों से पीड़ित होकर विम्बफल विरक्त होगया और उसने वन में आश्रय लिया, यह विलकुल सत्य बात है।

जानेअप्यासदितं विक्षोभ्य कुटिलं तंकृद्वेषं त्वया

प्रत्यक्षगमि निह्वासहनया क्षीरेन दशोऽधरा ॥

धासापासविसंक्षुला न च कुचोत्कर्षं विमुञ्चत्यहो,

मोहाद्गदुःसहविष्टवे चरलतं किं प्रेषिता त्वं मया ॥ २० ॥

मालूम होता है कि तुमने कपट वेश धारण करने वाले उस (कुटिल हमारे प्रिय) को किसी दूसरी स्त्री के साथ देखा, इस प्रत्यक्ष अपराध को तुम छिपा न सकी और क्रोध से तुमने अपने होंठ काट डाले, स्वास की अधिकता से तुम व्याकुल होगयी हो और इस समय भी तुम्हारे स्तन कांप रहे हैं, हे चञ्चले मैंने मूर्खता यश तुमको भेजा। यह नयिका की उत्ति अपराधिनी दूति के प्रति है।

नयदशननिपातवर्जराक्षी रतिकलहे परिपीडिता प्रहारीः ॥

यदिह मरणमेव किं न याषासदि न पिवेदधरामृतं प्रियस्य ॥ २१ ॥

नख और दातों के लगने से अङ्ग अर्जर हो जाते हैं, रति कलह में प्रहारी से पीड़ित हो जाना पड़ता है, ऐसी दशा में मृत्यु ही हो जाती, यदि प्रिय का अधरामृत पान न किया जाता।

जाने कोपतरङ्गिताङ्गुलिहिका सेनाइमालिङ्गिना

मंसृष्टा कुपयानिर्गन्धया हारोपि पारवे' कृतः ।

पूतायत्, सन्नि स्मरामि पदतो वृत्त' पर' सत्पर'

धैर्यस्पोद्दलन शरीरसमनं ग्यात्वापि नो चेन्नि किम् ॥ २२ ॥

मैं यह जानती हूँ कि कोप से काँपते हुए मेरे अङ्गों को उन्होंने मालिङ्गन किया था, मेरे स्तनों को छुआ था और गले के हार को भी एक यमल कर दिया था, हे सखि, इतना तेरे मुझे स्मरण है, इसके बाद जो हुआ उससे धीरता छूट जाती है, शरीर शिथिल हो जाता है और ध्यान करने पर भी उसे मैं समझ नहीं सकती ।

मूर्च्छांष्ठादितमोक्षते न नयनं तापे तनुः पश्यते,

कल्पः सूचयतीष जीवगमनं मोहे मनो ममति

श्रावज्ज्वालिष्ठ कर्मणा बलवता कालेन कामेन वा

को जानाति स केन मे प्रतिहरः कण्ठे मुद्रगोऽपिष्ठः ॥ २३ ॥

मूर्छा से आँखें बन्द हैं वे देख नहीं सकतीं, शरीर अग्नि में एक रहा है, शरीर के काँपने से मालूम होता है कि भय प्राण ही चला जायगा, कुछ सुझायी नहीं पड़ता । पहले जन्मों के बलवान् कर्मों से, काल से या काम से मालूम नहीं किससे, वह मेरी धीरता को हरण करने वाला साँप मेरे गले में पड़ा । अर्थात् प्रिय का हाथ गले में पड़ा ।

श्यामः श्यामा विरहिणस्तारकाधु कणावली ।

बालमित्रकरोन्मृष्टा जगामादर्शनं शनैः ॥ २४ ॥

श्याम (रात्रि या स्त्री) के विरही आकाश के अध्रुरूप में वे तारा फैली हैं । बालमित्र (बालसूर्य या बाल्यकाल का मित्र) के कर (हाथ या किरण) से पीछे जाने पर वह लुप्त हो जाता है ।

यथात्संगममिच्छतोः प्रतिदिनं दूतीकृताप्राप्तयो—

रन्योन्यं परिशुष्यतोर्न परतिप्राप्तिरदृशं तन्वतोः ॥

संकेतोन्मुखयोः कथं कथमपि प्राप्तौ धिरात्संगमे,

यत्सौख्यं नवरक्तयोस्तत्तृणयोस्तत्त्वेन साम्यं वनेत् ॥ २५ ॥

“यत्न पूर्वक संगम चाहने वाले को, प्रति दिन दूति से दादसँ रँधाए हुआँ को, सूखते हुआँ को, नयीन सुरत प्राप्ति की आशा रखते हुआँ को, और संकेत स्थान की ओर उन्मुखों को, यदि बहुत दिनों पर भी संगम प्राप्त होजाय, तो उन तदण नयीन अनुरागी स्त्री पुरुषों को जो सुख होता है उसकी तुलना किससे की जाय ।

विशेन वेषि वेश्या स्मरसदृशं कुष्ठिनं जराजीर्णम्

विना विनापि वेषि स्मरसदृशं कुष्ठिनं जराजीर्णम् ॥ २६ ॥

वेश्या धन के कारण फोड़ी और बूढ़े को भी कामदेव के समान समझती है और धन के बिना कामदेव के समान मनुष्य को भी वह फोड़ी और बूढ़ा समझती है ।

निष्कं जन्म प्रमोहरियतरतमसं यन्मनुष्यत्वहीनं

कुण्डपा हीनो मनुष्यः शुभफलविकलस्तुल्यचेष्टः पशूनाम् ॥

बुद्धिः पाण्डित्यहीना भ्रमति सदसतोस्तत्त्वचर्चाविचारे

पाण्डित्यं धर्महीनं शुकसदृशगिरा निष्फलफलेषामेव ॥ २७ ॥

जिनका मोह के कारण अज्ञान इद होगया है उनका मनुष्यत्वहीन जन्म निन्दित है, निषुद्धि मनुष्य को कोई शुभ फल नहीं मिलते और वह पशु के समान है, विद्याहीन बुद्धि भी सत् और असत् के विचार में धूमा करती है वह कुछ निश्चय नहीं कर सकती । धर्महीन पाण्डित्य भी शुक की घांसी के समान केवल निष्फल फलेश ही है ।

धर्मः शर्म परम चेद् व नृणां धर्मोऽवधारै रविः
 सर्वापत्तिरामधर्मः सुगन्मां धर्माभिधानो निधिः ।
 धर्मो बभ्रुरवाग्धव इमपये धर्मः सुहृदिश्रुतः
 संसारोऽस्मदस्यलं सुरस्यनां स्येव धर्मास्परः ॥२४॥

इस लोक में और परलोक में धर्म
 अज्ञान अन्धकार के लिए धर्म सूर्य है, यन्धुहीन
 धर्म हो यन्धु है, धर्म इन्द्र मित्र है, संसार कृपी
 भूमि में धर्म से बढ़ कर कल्पवृक्ष दूसरा नहीं है ।

प्राणानां परिरक्षणाय सततं सर्वाः क्रियाः प्राणिनां,
 प्राणेष्वप्यपि सप्तमस्तत्रगतां नास्त्येव किञ्चित्ति
 पुण्यं तस्यैव शब्दगते शब्दयितुं यः पूर्णकारण्यवा
 ग्राणानामभयं ददाति मुकृतिस्ते वामहिंसा यतः

‘प्राणियों के सभी प्रयत्न अपने प्राणों की रक्षा
 लिए ही सदा होते हैं । समस्त संसार को प्राणे
 प्रिय कोई दूसरी वस्तु नहीं है, उसके पुण्यों की
 हो सकती, जो पूर्ण दयालु प्राणों को आप
 पुण्यात्मा हैं और उनका अहिंसामूल है ।

शीलं शील्यतां कुलं कलयतां सद्भावमप्यस्यतां,
 न्याजं वज्रयतां गुणं गणयतां धमे’ धियं वज्रताम
 ‘छान्तिं चिन्तयतां समः शमयतां तत्त्वधृतिं गृण्यताम
 संसारे न परोपकारसदृशं पश्यामि पुण्यं सताम

‘शील रखने वाले, कुल के अनुसार चलने वाले
 अभ्यास करने वाले, छल कपट का त्याग करने
 की गणना करने वाले धर्म में शक्ति रखने वाले

सुनने वाले सज्जनों के लिए इस संसार में परोपकार से बढ़-
कर दूसरा पुण्य नहीं है ।

किं जीवावधिवन्धनैर्गुणगौराधारिर्नृभिः—

ये पान्थ्यन्तदिने क्षणाधुपतनप्रत्यावनापात्रताम् ।

सद्धर्माधिगमः क्रियाद्युपरमः सत्संगमः संयमः

पर्यन्तोप्यच्छा विरक्तमनसामेते सतां बान्धवाः ॥ ३१ ॥

मरण पर्यन्त बन्धनरूप इन गुणों से क्या लाभ, बन्धुओं
को आराधना से भी क्या फल, जो अन्त समय में केवल
भाँख बहाकर विश्वास उपजा देते हैं । सद्धर्म की प्राप्ति,
कार्यों से निवृत्ति, सज्जनों का सङ्गम और संयम, ये विरक्त
मनुष्यों के अन्त तक भी अच्छल रहते हैं, ये ही सज्जनों के
बन्धु हैं ।

विदेशेषु धनं विद्या म्यसनेषु धनं मतिः

परलोके धनं धर्मः शीलं सर्वत्र च धनम् ॥ ३२ ॥

विदेश में धन विद्या है, आपत्ति में धन बुद्धि है, परलोक
में धन धर्म है, और शील सब स्थानों में भूषण है ।

दाता बलिव्याचनको मुरारिर्दानं महो वासिमलस्य मध्ये ।

दातुः फलं बन्धनमेव ज्ञातं नमोस्तु देवाय यथेष्टकत्रे ॥ ३३ ॥

अभ्यमेध यज्ञ में दान देनेवाला बलि है दान लेने—
वाले द्रव्य विष्णु हैं, और दान दी जानेवाली वस्तु पृथिवी
है । पर दाता को फल बन्धन मिला, अर्थात् इस दान का
फल स्वरूप बलि को बन्धन मिला । उस भाग्य को नमस्कार,
जो जैसा चाहता है वैसा करता है ।

मवति भिन्नगुणैः पण्यभुद्दिनत्यसौ

धनहरणविनिवृद्धिद्वगोष्ठा दरिद्रः ।

अनयपयविषाधी निरघलीरपयंयेयः
स्ववशनिशितशक्तेः शामनेनैव धातुः ॥ ३४ ॥

धैर्य के बतलाये उपायों के अनुसार पय्यपूर्वक करने वाला सदा रोगी ही रहा करता है, जो सदा श्घर उ धन कमाने में लगा रहता है और स्वयं होने के मार्गों के देता है, यह दृष्टि होता है, अनेक प्रकार की मनीति करने सदा धनी और धीर बने रहते हैं । यह सब उसी ब्रह्मदेव इच्छा से होता है ।

अमनोधिःस्थलतां स्थलं जलधितां मूलीलवः शैलतां
मेरुमूर्धकणतां तृणं कुलिरातां यज्ञं तृणप्रापताम् ॥
बन्धिः शीतलतां हिमं दहनतामापाति यस्तेच्छया
स्वेच्छाबुलंलिताद्रुतम्यसनिने देवाय तस्मै नमः ॥ ३५ ॥

जिसकी इच्छा से समुद्र स्थल हो जाते हैं, स्थल समुद्र जाते हैं, धूलि के कण पर्यंत हो जाते हैं, और मेरु पर्यंत के कण के समान हो जाता है, तृण यज्ञ के समान है और यज्ञ के समान हो जाता है, आग शीतल अपनी इच्छा से सोख होकर अनेक प्रकार की लं करता है ।

अमसि किं मुधा कचन चित्त विघ्नम्यतां
स्वयं भवति यद्यथा भवति तत्तथा नान्यथा ॥
तमननुस्मरन्प्रपि च भाव्यसंख्यय—

प्रतर्कितगमागमाननुभवामि भोगानहम् ॥ ३६ ॥

अर्थ क्यों घम रहे हो, कहीं विधाम करो, स्वयं जो है यह वैसाही होता है उसमें कुछ परिवर्तन ।

नहीं होता, अतीत को भूल जाता हूँ, भावी की कल्पना भी नहीं कर पाता हूँ, आकस्मिक आने जाने वाले लोगों का मैं अनुभव करता हूँ ।

पुत्राण्यधिर्द्धं च विन्दति विमुह्यत्य हि माण्योदये
पश्चात्तोपि समेव विन्दति यथा शत्रुं विरुद्धे विधौ ।
किं कष्टेन दिवानिशं विहितया भक्त्या मृतं सेवया
वैवाधित्वमेव तिष्ठति फलं जन्तोः शुभं वाशुभम् ॥ ३७ ॥

माण्योदय होने पर स्वामी को पुत्र से भी अच्छा भृत्य मिलता है और माण्य के विरुद्ध होने पर उसी स्वामी को पक्षी भृत्य शत्रु के समान देखता है, भक्ति पूर्वक दिन रात सेवा करने से क्या लाभ, जब कि मनुष्य को अच्छा या बुरा फल माण्य के अनुसार ही होता है !

जीवन्मर्यश्चये नीचा धात्रोपद्रववञ्चनैः ।
कुलाभिमानमुक्कानां साधूनां नास्ति जीवनम् ॥ ३८ ॥

घन के नाश होने पर नीचा मनुष्य भिक्षा उँका और ढगी के द्वारा जीते हैं, पर कुलाभिमान के कारण शुप रहने वाले साधुओं का जीना कठिन है ।

मनुमेहे मशकीव मूषकवधूमूर्धीव मातार्त्तिका
मातार्त्तरीव शुनी शुनीव गृहणी वाप्यः किमन्यो जनः ॥
हृत्पापश्चशिशूनसूम्बिज्जदतः संश्लेष्य विह्वीरवै-
हृत्वात्तनुविवानसंप्रवमुषी शुही चिरं रोदिति ॥ ३९ ॥

मेरे घर में चूही मशकी के समान हो गयी है, बिही चूही के समान होगयी है, कुत्ती बिही के समान और गृहणी कुत्तों के समान हो गयी है, और के लिए क्या कहा जाय, दुःखी

आप्रासङ्गिक स्तुति के द्वारा कानों में शूल उत्पन्न करता है, अपनी दरिद्रता कहता है, फटा वस्त्र दिखाता है, छाया के समान चलता है, न आगे चलता है न पीछे और न बगल में, इस प्रकार दरिद्र मनुष्य धनियों को दुःखिकित्स्य व्याधि के समान दुःख देता है ।

सत्ये भोष्ठाचकित्तमनसो बंधकग्रामलीनाः

शैलरुपलोपकृतविफलः स्वल्पदेयेऽतिकोपाः ।

मातोद्विष्टाः पिशुनवक्षसा धर्मममोक्तिकुशः

साधुद्विष्टाः प्रणलपुरुषाः सर्वथा भूमिपालाः ॥ ४३ ॥

राजा लोग ठगों के समूह में रहते हैं इस कारण सत्य को शत्रु की दृष्टि से देखते हैं, पत्थर के साथ किया उपकार जिस प्रकार विफल होता है उसी प्रकार राजा के प्रति किया उपकार भी विफल होता है, छोटे अपराध से भी वे बहुत क्रोध करते हैं, घुगली करनेवालों के दचन से सन्तुष्ट रहते हैं; धर्म की दिहमी करनेवाले, साधुओं के हँपी और पलों के साथी राजा लोग होते हैं ।

द्वारे व्यमुपेक्षते कथमपि प्राक्तं पुरो नेक्षते

विश्वो गजमीलमानि कुरते गृह्णाति पावकच्छलम् ।

निर्घोतरप करोति दोषगणनां स्वप्नापराधे वमः

सत्सामी यदि सेव्यते मरुते हि नः पिशाचैः कृतम् ॥ ४४ ॥

द्वार पर दके हुए भी उपेक्षा करते हैं, यदि किसी प्रकार सामने धला जाय तो उसकी ओर देखते नहीं, उसके निवेदनो पर आँखें बन्द करते हैं और इधर उधर की धाते' करते हैं, घले जाने पर उसके दोषों की गणना करते हैं, थोड़े अपराध पर भी यगराज वम जाते हैं, यह हमामी यदि सेवनीय है तो मद्यस्थ के पिशाचों ने हमारा क्या बिगाड़ा है ।

गोवर्धनाचार्य

ये गीतगोविन्द फर्ना जयदेव कवि से प्राचीन हैं । जयदेव ने गीतगोविन्द में इनके विषय में लिखा है “शृङ्गारोत्तरसन्धेय रचनेराचार्यगोवर्धनस्पदी कोऽपि न विभ्रतः” जयदेव कहते हैं कि शृङ्गार रचना में आचार्य गोवर्धन की समानता करनेवाला कोई प्रसिद्ध न हुआ । इससे गोवर्धनाचार्य की जयदेव से प्राचीनता सिद्ध होती है । चङ्गाळ के राजा लक्ष्मण-सेन की सभा में गोवर्धनाचार्य भी थे, यह बात नीचे लिखे श्लोक से विदित होती है ।

गोवर्धनश्च शरयो जयदेव उमापतिः

कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य च ।

लक्ष्मणसेन ई० सन् की ग्यारहवीं सदी में हुए थे यह इति-हासज्ञों का कहना है ।

आर्यासप्तसती नाम का एक ग्रन्थ इनका बनाया है । इसमें सात सौ आर्याछन्द के वृत्तों का संग्रह है । यह स्फुट श्लोकों का संग्रह है, इसमें किसी एक विषय को लेकर वर्णन नहीं किया गया है । वर्णन मनोहारी है, सरस है और काव्य के उत्तम गुणों से युक्त है । शृङ्गार के वर्णन में ये सिद्धहस्त हैं, इनका वर्णन मनोरम और आस्वाद्य होता है ।

मा वम संवृथु विपमिदमिति सातङ्गं पितामहेनोक्तः

प्रातर्जपति सलमः कञ्जलमलिना धरःशंभुः ॥ १ ॥

प्रातःकाल (पार्वती के) अक्षिबुम्बन करने के कारण शिवजी के श्रोष्ठ पर कञ्जल लगा था, प्रह्ला ने समझा कि ये काला ताला विप उगल रहे हैं, इसलिपांडर कर उन्होंने कहा मत गलो, निगल जाओ, यह सुनकर शिव लज्जित हो गये ।

संप्यासलिलासुलिमपि कङ्कशफणिवीर्यमानमविजानन् ।

गौरीमुत्तारिप्तमना विजयाहसितः शिखो जयति ॥ २ ॥

शिव ने सन्ध्या के लिए अञ्जलि में जल लिया था, और पार्वती के मुख की ओर उनका चित्त था, वे उधाती देख रहे थे, कङ्कण का सर्प वह जल पीने लगा, पर शिव को यह मालूम नहीं हुआ, यह देख विजया पार्वती की सखी हँसने लगी ।

ब्रह्माण्डकुम्भकारं भुजगाकारं जनार्दनं नमामि ।

स्फारे परफणवक्त्रे धरा शरायमिव बहति ॥ ३ ॥

ब्रह्माण्ड के कुम्भकार सर्पस्वरूप जनार्दन को नमस्कार, जिनके विशाल फण पर रखी हुई पृथिवी, शराय (मिट्टी परत) के समान मालूम पड़ती है ।

विहितवमालकारं विचित्रवर्णावलीसुरयम् ।

शक्रायुधमिव वक्त्रं पद्मीकमुप कथं नमामि ॥ ४ ॥

जिन्होंने अनेक अलंकार बनाये हैं और अनेक प्रकार के वर्ण जिसमें हैं और जो इन्द्रधनुष के समान टेढ़े हैं, उन पद्मीक कवि को नमस्कार, इन्द्रधनुष भी पद्मीक से ही निकलता है, उसके भी अनेक प्रकार के रंग होते हैं, और वह मेघों का अलङ्कार बनता है ।

व्यासगिरि त्रिपांसं सारं विश्वस्य भारतं वन्दे ।

भूपणतपैव संज्ञा.वदङ्गितां भारती बहति ॥ ५ ॥

व्यासदेव की वाणी के सार और विश्व के सार भारत नामक ग्रन्थ को नमस्कार, जिससे भूषित होने के कारण सरस्वती को भारती कहते हैं ।

अतिदीर्घजीवि दोषाद् व्यासेन यशोऽवहारिर्न हन्त
कैर्नोप्येत गुणायाः स एव जन्मान्ततापत्रः ॥ ६ ॥

दुःख को यात है कि चिरजीवी होने के कारण व्यासदेव ने अपना यश छो दिया, यदि वे चिरजीवी न होते तो कौन नहीं कहता कि व्यासदेव ही दूसरे जन्म में गुणाध्य हुए हैं।

भीरामायणभारतवृहत्कथानां कवीश्वरमुमुक्षुः
सिद्योता इव सरसां सरस्वती स्फुरति र्बर्हिष्वाः ॥ ७ ॥

रामायण महाभारत और वृहत्कथा के कवियों को नमस्कार, जिनके कारण भिन्न भिन्न स्वरूप धारण करने वाली सरस्वती सरस्वती गङ्गा के समान हो गयी है।

अकलितशब्दालङ्कारानुक्ता स्वलितपदनिवेशाणि ।
अभिसारिकेव सम्यति सूक्तिः सौन्दर्यशृङ्गारा ॥ ८ ॥

जिसमें शब्द नहीं, अलङ्कार नहीं, पदों का निवेश भी ठीक नहीं, वह उक्ति भी यदि सरस हो, यदि उसमें उत्कट शृङ्गार हो, तो वह अभिसारिका के समान प्रसन्न करती है। क्योंकि पदों का न माननाही अभिसारिका के लिए अलङ्कार है, उसके पैर नीचे ऊँचे पड़ते हैं, तथापि वह अनुकूल और उपोषिका है इस कारण मन को प्रसन्न करती है।

अथ विविधयचनरचने ददासि चन्द्रं करे समानीय ।
अपसन्दिवत्तेषु ह्रुति क पुनस्तर्ध दर्शनीयामि ॥ ९ ॥

ह्रुति, तुम अनेक प्रकार की यातें बनाना जानती हो चन्द्र को लाकर हाथ में दे रही हो, पर दुःख के दिनों में तुम्हारे दर्शन मिलेंगे, जब अपकीर्ति फैलेगी, या दि तब तो तुम कोई उपाय न कर सकेगी।

अन्धत्वमन्धसमये बधिरत्वं बधिरकाल आलम्ब्य ।

श्री केशयोः प्रणयो प्रजापतिर्नाभिवास्तस्य ॥१०॥

ग्रह्या, विष्णु के नामिकमल में रहते हैं और वहाँ लक्ष्मी और विष्णु भी रहते हैं । उनमें तरह तरह की पाते होती हो होंगी पर ग्रह्या पर विष्णु का द्वेष नहीं है किन्तु प्रेम ही है, इसका कारण यह है कि जब अन्धा बनने का समय आता है, तब ये अन्धे हो जाते हैं और जब बधिर बनने का समय आता है तब बधिर बन जाते हैं, अर्थात् वे न तो कुछ देखते हैं और न सुनते हैं ।

अपराधादधिकं मां व्यथयति तव कपटवचनरचनेषुम् ।

शस्त्रापाते न तथा सूचीम्वधवेदना पादुक ॥११॥

इति, तुमने जो अपराध किया है, उससे जितना कष्ट होता है उससे कहीं अधिक कष्ट तुम्हारी इन बनावटी बातों से होता है । शस्त्र प्रहार से जितना कष्ट होता है, उससे कहीं अधिक कष्ट सूई की नोक से छेदने से होता है ।

ते धंष्टिनः क संप्रति शक्रध्वज धैः कृतस्तपोऽपाम्

ईषां वा मेदिं वाधुनातनास्त्वा विधिन्सेति ॥१२॥

हे इन्द्रध्वज, ये सेठ आज कहाँ हैं जिन्होंने तुमको खड़ा किया था, इस समय के लोग तो तुमको हल बनायेंगे या लूटा बनायेंगे ।

दक्षिते पलालपुष्पे कृपमं परिभवति गृहपती कुपिते ।

निवृत्तनिभालितयदनौ हलिकं वधू देवरी इत्यतः ॥१३॥

पुमाल इधर उधर बिखरा हुआ था, गृहस्वामी ने समझा कि इसी धूलने पुमाल बिखेरा है, इसलिए वह उसे मार

सगा, यह देखकर गृहस्थामो की स्त्री और उसने
ने छिप कर आपस में देखा और वे हँसने लगे ।

निष्कारणपराधं निष्कारणकलहोपपतितोपम् ।
सामान्यमरणजीवनसुखदुःखं अपति दांगयम् ॥ १४ ॥

जहाँ बिना कारण का हो अपराध, बिना कारण
कलह प्रोच, और प्रसन्नता साधारणतः मरना जीव
दुःख भादि स्त्री पुरुषों में होने रहने हैं वह सामान्य सुख
पूजा बिना प्रतिष्ठा नास्ति न मन्त्र बिना प्रतिष्ठा च ।
तदुभयविप्रतिपक्षः परस्परु लीलांशगणम् ॥ १५ ॥

बिना प्रतिष्ठा के पूजा नहीं भीर मंत्र के बिना प्र
नहीं, जो इन दोनों बातों को न मानता हो वह वाधर
मूर्ति को देखें ।

भूतिमयं कुरुतेऽनिलुपमपि सत्तममनेनपि मन्त्राः ।
सैव सुखं दत्ता ते शत्रुं गरिमोपरोधेन ॥ १६ ॥

संयोग होने ही भूमि गुण को प्रथम कर देता है, सुख,
यद्यपि तुम इसकी सेवा कर रहे हो, तथापि तुम्हारी भी ऐसी
ही सेवा होने की सम्भावना है, अभी तक तुम्हारे के कारण
ही तुम्हारी सेवा हुई है ।

योगाधमस्य रक्षां दृष्ट्वात्रैवैव कुर्वन्तोभ्यभिमुखम् ।
द्वयस्य प्रमादपि भीतिं मृगस्य योगात् ॥ १७ ॥

जो स्वयं भोग करने में समर्थ है जो कंस में से ही
रक्षा करता है और भगवत् होने के कारण उसकी ओर देख
भी सज्जा, उस वृद्ध की स्त्री भीर घन भी भृत्य के भोग के
लिए होता है ।

मलयद्रुमसाराणामिव धीराणां गुणप्रकर्षोऽपि ।

जडसमवशिपतितानामनादरायैव न गुणाय ॥ १८ ॥

चन्दन के समान धीरों के गुण भी उस समय में । मूर्खों के बीच या जाड़े के समय में) आकर, अनादर ही पाते हैं आदर नहीं ।

यन्मूलमादं सुरैः कुसुमं प्रतिपद्यं कलभरः परितः ।

हुम तन्मासति योचोपरिचयपरिणाममविचिन्त्यः ॥ १९ ॥

शुभ तुम्हारी जड़ जल से गीली है, प्रत्येक पक्ष में पुष्प हैं, चारों ओर फल से लदे हुए हों इससे उम्मत मत धनों, तरङ्गों के परिचय का परिणाम सांचो ।

रोगो राजापत इति जनवादे सत्यमदय कलयामि ।

आरोग्यपूर्वकं स्वयि तत्त्वप्रान्तागते सुभगम् ॥ २० ॥

हे सुभग, तुम्हारे पलंग के समीप "रोगी राजा के समान रहता है" इस जन-प्रवाद को आरोग्य रहने पर भी मैं सत्य समझती हूँ ।

वीक्ष्य सतीनां गच्छने रोरामेको तथा स्वनामाद्वाय ।

सन्तु पुणानो हस्तिः स्वयमेवापारि नापरितुष्टः ॥ २१ ॥

उसने सतियों की गणना में अपने नाम की भी एक रेखा देखी, इससे युवक चाहे इसे चाहे न इसे पर स्वयं यही अपनी हंसी न रोक सकी ।

सुगुहोतमभिमपक्षा स्यचः परभेदिनः परं तोक्ष्याः ।

पुरुषा भवि विक्षिप्ता भवि गुणच्युताः कस्य न मयाय ॥ २२ ॥

दूसरी (अन्य पुरुष या शत्रु) को भेदन करनेवाले मलिन पक्षा शयीनीच और तीक्ष्ण मनुष्य तथा चाण, गुण (चतुष की ज्या या गुण) से च्युत होने पर किसके लिए भयकारक नहीं हैं ।

चन्द्रक ।

ये कश्मीर के रहनेवाले थे, इनके नाम के विषय में मतभेद है, कोई इन्हें चन्द्रक कहने हैं और कोई चन्द्रक । महाकवि कल्हण ने इनके विषय में लिखा है:—

नाथ सर्वजनसेदं यथा स महाकविः ।
द्विपायनमुनेरशक्तकाले चन्द्रकोऽभवत् ।

जिस महाकवि ने सब लोगों के दंतानें योग्य नाटक की रचना की, उस समय थे द्विपायन मुनि के मरामृत चन्द्रक हुए । इस शोक से इस बात का पता मिलता है, महाकवि चन्द्रक ने कोई नाटक बनाया था, जिसमें सब प्रकार के मनुष्यों के उपयोग योग्य सामग्री थी और इनकी कविता व्यास-देव के समकक्ष होती थी । इनके समय के विषय में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता । पर लक्षण से मान्य पड़ता है कि ये बहुत प्राचीन कवि थे । सुभाषित ग्रन्थों में इनमें शोक उद्धृत किये गये हैं ।

शगोदसिर्गन्धैस्तद्विरसि दोलेन रचितः ।
शिवा मृगादास स्वपिति रतित्विन्देव वनिता,

मृषातो गोमायुः सरुधिरमसि सेदि बहुशो
विलास्येपी सर्पो हतगत्रकामे प्रविराति ।

पक्षि मतङ्गियों को वृक्ष पर ले गये हैं, उनसे वृक्षां पर दोला के समान बन गया है, शृगाली वृक्ष होकर रतित्विन्न स्त्रियों के समान सो रही है, शृगाल व्यासा है इस कारण वह रुधिर से नी तलवार को धारधार चाट रहा है । साँप बिल डूँढ़ता मा हांथी के सूँड़ में घुस जाता है । यह युद्ध समाप्त होने युद्धक्षेत्र का वर्णन है ।

कृष्णेनाम्ब गतेन रन्तुमधुना मृद्वक्षिता स्वेच्छया,
सन्त्य कृष्ण क एवमाह सुसली, मिथ्याम्ब पश्याननम्,
व्यादेहीति विकासितेऽथ वदने माता समस्त जगत्,
दृष्ट्वा यस्य जगाम विस्मयवशी पायान्त्य वः केशवः ।

भाऊ खेलने के लिए जाने पर कृष्ण ने खुश मिठी खायी है, कृष्ण, क्या यह बात सच है । कृष्ण ने पूछा ऐसा किसने कहा, माता ने कहा घलदेव ने, कृष्ण ने कहा, झूठा बात है, तुम हमारा मुँह देख लो, माता ने कहा, मुँह खोलो, कृष्ण ने मुँह खोल दिया, माता जिसके मुँह में समस्त जगत् देखकर विस्मित हो गयी, यह कृष्ण आप लोगों की रक्षा करें ।

॥ पातु वो यस्य इता वशेषास्तत्तुल्य वार्षाङ्गनरञ्जिते ॥
मावण्यमुक्तोऽपि विप्रसन्ति दैत्याः स्वकान्तानपनोत्पले ॥१॥

ये देव आप लोगों की रक्षा करें जिनके वर्ण के समान भञ्जन से रञ्जित थीर सुन्दर अपनी स्त्रियों की आँखों से भी ये दैत्य जो रण में मारे जाने से बचे हैं डरते हैं ।

‘पुतामिन्दोले’ का रतिकलहभग्नप्र बलय
शनैरेकीकृत्य प्रहसितमुखी शैलतनया ।
भवोचय पश्येत्पवन स शिवः सा च गिरजा
स च कीड़ाचन्द्रो दशमकिरणपूरितनुः ॥२॥

गिरी हुई चन्द्रमा की कला थीर रतिकलह में गिरा हुआ घलय इन दोनों को धीरे से एकत्रित करके हँसती हुई पार्वती ने जिसको कहा था कि यह देखो, यह शिव, यह पार्वती और दाँतों की प्रभा से जगमगाता हुआ यह कीड़ाचन्द्र आप लोगों की रक्षा करें ।

मातर्जीव किमेवदञ्जलिपुटे तातेन गोपाप्यते

यत्स स्वादु फलं प्रयच्छति न मे गत्वा गृहाय स्वयम् ॥

मात्रैव प्रहिते गुहे विषटयत्पा—कृष्य संप्या झलि

शम्भोर्भिषसमाधिच्छद असौ हासोद्गम पातुः ॥१॥

काति'केय और पार्यतो का संवाद, काति'केय ने पूछा, माता, पार्यतो ने कहा बेटा, का०—पिता ने यह हाथों में क्या छिपा रखा है, पा०—बेटा भीठा फल है, का०—मुझको तो नहीं देते, पा०—जाकर स्वयं लेलो, माता, के भेड़ने पर काति'केय महादेय की सन्ध्याञ्जलि छोलने लगा जिससे उनकी समाधि टूट गयी और वे हंसने लगे । महादेय की यह हंसी मापकी रक्षा करे ।

प्रसादे वच'स्य प्रकटय मुदं संस्पर्ज रुचं

प्रिये शुच्यन्तर्ब्रह्मन्मृत्तमिव ते मिश्रतु वचः

निधानं सौम्यानां क्षणमभिमुखं स्थापय मुखं

न मुग्धे प्राप्तेन प्रमथति गतः कर्कशहरिणः ॥२॥

प्रसन्न होओ, दर्य प्रकाशित करो, क्रोध दूर करो, प्रिये मेरे भूह सुख रहे हैं, भस्म के समान अज्ञे वस्तुओं का लियन करो, सुखों का निधान अपना मुख चौड़ी देर के लिए अभि-मुख स्थापित करो । मुग्धे, यह गया हुआ फालगुपी हरना छीटता नहीं ।

वृद्धेनाश्नन्नरिचनस्या पादमेवाश्ननस्य

परपापकं कुमुदविशदेनागणेन स्वहान्तम् ।

अश्वरुदं दपितविरहाशङ्कितो यज्ज्याकुडी

द्वौ वहीनो रचयति रसौ वनकोद प्रमथता ॥३॥

दिन छल रहा है इस कारण अपने पति के विरह की भावना करनेवाली यज्ज्याकुडी, क्रोध से छाल एक भाँख से

धस्त जाते हुए सूर्य को देख रही है और कुमुद के समान श्वेत दूसरी आंख से अपने पति की ओर देख रही है, इस प्रकार यह नर्तकी के समान एक ही समय दो विरुद्ध रसों को रचना करती है ।

गुणादि मे रथगतस्य दृष्टा प्रतिष्ठा
द्रश्यन्ति यच्चरिषो जघर्न ह्यगामाम् ।
सुन्दरुमाय चपलेषु न मे प्रतिष्ठा
देवं कीरतिप्रयत्न पराजयम् ॥१०॥

रण में जाने पर मेरी यह दृढ़ प्रतिष्ठा है कि मेरे शत्रु मेरे घोड़ों की पिछली टांग नहीं देखेंगे, सुन्दर भाग्याधीन है, उसके विषय में मेरी कोई प्रतिष्ठा नहीं है, भाग्य जैसा चाहता है वैसा होता है, जय या पराजय ।

जगद्गुर ।

ये संस्कृत नाटकों के प्रसिद्ध टीकाकार हैं, न्यायवैशेषिक और व्याकरण का इनका ज्ञान अगाध था । वेणीसंहार वासवइसा मालतीमाधव, आदि कई नाटकों की टीका इन्होंने लिखी है, इनकी लिखी टीकाएँ आश्चर्यनीय समझी जाती हैं । इन्होंने अपना परिचय इस प्रकार दिया है,

ब्राह्मणभ्रेष्ठ चण्डेश्वर एक प्रसिद्ध पण्डित थे, मीमांसा में उनका अगाध ज्ञान था, इनके पुत्र का नाम रामेश्वर था और वे भी मीमांसक थे, रामेश्वर के पुत्र गदाधर हुए और उनके पुत्र विद्याधर हुए । विद्याधर के पुत्र का नाम रत्नधर था । जगद्गुर के पिता येही रत्नधर थे, पण्डित रामकृष्ण भाण्डार कर कहते हैं कि जगद्गुर का समय १४ वीं सदी से पहले नहीं हो सकता ।

धन्याः शुचीनि सुरभीणि गुणोष्मिनानि
 वाग्मीरुधः स्वयन्मोदयनोद्गतायाः ।
 इदित्य गुणिकुगुमानि यना विविध—
 वणांनि कमपुलिनेऽवनमयन्ति ॥

अपने मुगरूपों वाग में उन्पन्न होनेवाले घनरूपी, पौ
 से चुनकर सुन्दर सुरभिन् गुण और उत्तमवर्ण युक्त सूक्ति
 फूलों से सज्जनों के कानों को भूषित करने हैं ये धन्य है।

तैश्चान्तवारमयमहाणबहूद्वाराः
 साधामिका इव महाकषयो जयन्ति ।
 यन्सूक्तिपेलवलबहुलवैरपैमि
 मस्तःसदःसु बदनीयधिवामयन्ति ॥

ये अनन्त घाट्मयरूपी महासमुद्र के पार जानेवाले मह
 फवि जहाज के व्यापारी के समान हैं और धन्य हैं, मैं सा
 भक्ता हूँ कि उनकी सूक्तिरूपी उत्तम लवङ्ग के दुकड़े
 सज्जनगण समामों में मुख को सुगन्धित करते हैं।

॥ प्रैलोक्यभूषणमणिगुणिबर्गबन्धु-
 रेकमकाक्षि सविता कविता द्वितीया ।
 शंसन्ति यस्य महिमातिशयं शिरोभिः
 पादप्रदं विदधतः पृथिवीभूतोपि ॥

त्रिलोक के भूषणमणि, गुणियों के बन्धु एक सूर्य प्रक
 शित होता है और दूसरी कविता। पृथिवीधर (राजा या पर्य
 भी जिसकी महिमा की अधिकता, उसके चरणों को मस्त
 से ग्रहण करके घतलाते हैं। अर्थात् पृथिवीधर राजा
 कवियों की चरण चन्दना करते हैं और पृथिवीध
 पर्वत सूर्य की किरणों को मस्तक पर धारण करते हैं।

शब्दार्थमात्रमपि ये न विदन्ति तेऽपि
यां मूर्खानामिव शृगाः अवर्णैः पिबन्तः ।
संरुद्धसर्वकरणप्रसरा भवन्ति
विगस्थिता इव कवीन्द्रगिरं नुमस्ताम् ॥

जिनको शब्दार्थ का ज्ञान नहीं है वे शृगा भी जिस
कविता को केवल कानों से गान के समान सुनकर लम्पट
हो जाते हैं, वाक्प्य और इन्द्रिय ज्ञान से शून्य चित्र लिखित
के समान हो जाते हैं, उस कवीन्द्रयाणी को नमस्कार ।

भक्ष्याने गमितालब्ध इतधिषा वाग्देवता कल्पते
धिकाराय पराभवाय महते तापाय पापाय वा ।
स्थाने तु व्यथिता सतां प्रभवति प्रण्यासये भूतये ✓
चेतोनिवृत्तये परोपहतये प्राप्ते शिवावाप्तये ॥

वाग्देवता का अनुचित स्थान में यदि संनिवेश किया जाय
तो यह मूर्खों के धिक्कार तथा पराजय के कारण होता है । बड़ा
भारी ताप होता है या पाप होता है, पर उसीका यदि
उचित स्थान पर विनियोग किया जाय तो यह सज्जनों की
प्रसिद्धि के लिए, समृद्धि के लिए, चित्त की प्रसन्नता के लिए,
परोपकार के लिए और अन्त में कल्याणप्राप्ति के लिए
होता है ।

स्फारोष्ठ सौममरेण क्रिमेयनाभे-
स्तद्दानसारमपि सारमसारमेव ।
यत्सौमनस्यपि न शुष्यति सौमनस्यं
प्रस्पन्दते यदि मधुद्रवप्रति देवी ॥

कस्तूरी के बड़ी गन्ध से क्या ? वह कपूर भी निरर्थक
हो है, माला की सुगन्धि भी मन को प्रसन्न नहीं कर सकती,
यदि चाणीदेवी मधु का स्रोत बहावे ।

स हेमालंकारः क्षितिपतनलग्नेन रजसा
 तथा दैन्यं नीतो नरपतिशिरःश्चाप्यविमशः ।
 यथा लोष्ठभ्रान्तिन्यवहितविवेकम्यतिक्रो
 विलोचयैर्न लोकः परिहरति पादक्षतिमयात् ॥

राजाओं के मस्तक पर शोभा पाने वाला यह सुर्य का
 आभूषण पृथिवी पर गिर पड़ा और यह घूल लगने से इस
 समय इतना विरूप हो गया कि उसमें लोगों को लोढ़े की
 भ्रान्ति होने लगी। उस भ्रान्ति से उनका विवेक नष्ट हो गया
 और वे उस सुर्यालंकार को देखकर पैर कटने के भय से
 दूर हो जाते हैं ।

आहूतेषु विदग्धेषु नशको नायाम्पुरो वार्यते
 मध्ये वा पुरि वा यस्मैऽनृणमपि यंते मणियो हवन् ।
 न घोतोपि न कथ्यते प्रचलितुं मध्येपि तेजस्विना
 धिक्कृतामान्यमचेतनं प्रभुमिषानागृह्यताम्यान्तरात् ॥

परियों के निमन्त्रण में आगे आगे मशक (क्योंकि
 उसके भी पंख होने हैं) आता है और यह सोचता नहीं
 जाता, आगे या मध्य में यदि नृणमणि आता है तो उसे
 भी मणियों की शोभा प्राप्त होती है, कोई उसे हटाता नहीं,
 तेजस्वियों के मध्य में मयोंन भी उनके सामने घेरा
 घला आता है उसे कुछ भय नहीं होता, उस भयंजन उपा
 भयहृत् का भेद न समझने वाले व्यामी को धिक्कार ।

एवं वेभारगम्यमावयाना आद्यं द्विमेकानुशं
 दयत्सर्वेन निमग्नतः मरणा हि प्रथिममनूहरी ।
 मृतं चेत्पुनरि पटुत्र धुनित्वं कस्मादगुणा यद्यमी
 हि हिद्वानि मये मृन्नाज भवनकर्म न मन्वागृहे ॥

हे मृणाल, (कमल की डंठी) तुम्हारा स्वभाव इतना सरस है तो यह जड़ता, अज्ञान या सर्दी, कैसी, यदि तुम स्वभाव से ही सरल हो तो ये गाँठें कैसी, यदि तुम्हारा मूल शुद्ध है तो तुम्हारे कीचड़ से उत्पन्न होने की बात क्यों कही जाती है, यदि तुममें गुण (सद्गुण) हैं तो ये छिद्र क्यों ? मृणाल तुम्हारा क्या तत्व है सो कुछ मालूम नहीं पड़ता ।

... स्व भोगी यदि कुण्डली यदि भग्नस्व चेद्वज्रगः सखे
घासे चेन्मुकुटं सत्तन्मुरग स्वस्वसु ते हि ततः ।
भयाने यदि कश्चुर्हं त्यजति तन्नास्माकमग्रस्था
किंतु कूरविषोःकया दहति बहुभ्रातः क एव यदाः ।

तुम यदि भोगी हो, कुण्डली हो या भुजंग हो, (ये सब सर्प के नाम हैं) तो रहो, हे उरंग, यदि तुम रत्नजडित मुकुट धारण करते हो तो यह भी तुम्हें सुचारक रहे, जहाँ तहाँ तुम कंचुक छोड़ते हो तो छोड़ो, इस विषय में भी हमें कुछ नहीं कहना है, पर तुम भयानक विष के द्वारा लोगों को जलाते हो यह तुम्हारा फौन सा हठ है ।

विधत्ते ह्यः पदैः सितकरमभोक्तं सङ्गं सुमै-
र्निरर्लक्ष्मीर्दीपार्थिः शमयति च हृत्तापरवशा ।
प्रियेय मन्मथं प्रणिहितदृशा वासमि दृढे
कथंकारं तारं परिहरति हारं नववधूः ॥

प्रिय जय नववधू के प्रत्यङ्ग पर दृष्टि डालता है और उसके कपड़े खींच लेता है तब यह हार चन्द करके चन्द्रमा को छिपाती है, लज्जित होकर वह अपने कमल से दीपक बुझा देती है, यह सब तो करती है पर नववधू अपना बड़ा गले का हार कैसे छोड़ती है ।

कदा संसारजालान्तर्वन्दे त्रिगुण रज्ज्वाभः ।

आत्मानं मोक्षयिष्यामि शिव भक्ति शलाकया ॥

त्रिगुण की रस्सी द्वारा संसारजाल में बंधे हुए अपने
को शिवभक्ति शलाका के द्वारा कब मुक्त करूँगा ।

बाह्मनःकायकर्माणि विनिवेश्य त्वयि प्रभो ।

न्वन्मयीभूय निर्द्वन्द्वः कश्चित्स्यामपि कर्हि विन ॥

हे प्रभो, यत्न मन शरीर और कर्म तुममें लगाकर
निर्द्वन्द्व और त्वद्गुणतप्राण क्या कभी मैं हो सकूँगा ।

मलत्सैलाकयं सारवासनावर्तिदाहिना ।

ज्ञानदोषेन देव न्यां कदापु स्वामुपस्थितः ॥

मलरूपी तैल में भिगोयी हुई संसारवासना रूपी घटी
को जलाने वाले ज्ञानदोष के सहारे मैं आपके पास कब
उपस्थित होऊँगा ।

एकाकी निस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः ।

कदा शैभो भविष्यामि संसारोग्मूलनशमः ॥

हे शैभो, एकाकी निस्पृह शान्त, पाणिपात्र और दिगम्बर
में कब होऊँगा, और कब मैं संसार का नाश कर सकूँगा ।

सुशान्तशास्त्रार्थविचारचापलं

निवृत्तनानारसकाव्यकौतुकम् ।

निरमन्त्रिशेषविकल्पविवर्जं

प्रवक्तुमन्विष्यति चक्रिणं मनः ॥

मेरे मन से शास्त्रार्थ के विचार की चपलता दूर होगयी,
अनेक प्रकार के सरसकाव्य कौतुक से भी मन निवृत्त हो गया,
समस्त तर्क वितर्क भी दूर होगये, इस समय मेरा मन मण
धान की शरण जाना चाहता है ।

श्रीमज्ज्ञानेन्द्रमिशोरधिगतसकलब्रह्मविद्याप्रपञ्चः
 काष्ठादीरक्षपादीरपि गहनगिरौ यो महेन्द्राद्वेदीन् ।
 देवा देवाभ्यगोष्ठ स्मरहरनगरे शाश्वतं जैमिनीयः
 शेषांकप्राप्तशेषामल मपित्तिर भूतसर्वं विद्याधरोयः ॥

पेरुमट्ट ॥ ज्ञानेन्द्र मिश्र से समस्त ब्रह्मविद्या सीखी,
 महेन्द्र पण्डित से जिन्होंने न्यायदर्शन और वैशेषिक दर्शन
 का ज्ञान प्राप्त किया । काशी में महादेव से पूर्व मीमांसा पढ़ी
 और अन्य समस्त विद्या नागोजी मह्द से पढ़ी ।

ये दिल्ली के बादशाह के यहाँ रहते थे, दिल्ली जाने के
 पहले चोलराज के दरबार में भी कुछ दिनों थे, पर वहाँ उनका
 मन न लगा और वे जयपुर आये, जयपुर के पण्डितों से उन्होंने
 शास्त्रार्थ किया वहाँ एक पाठशाला स्थापित की और अनेक
 विद्यार्थियों को अनेक शास्त्र पढ़ाये ।

उन्होंने फारसी पढ़ी थी, मुसलमानी धर्मग्रन्थ का भी उन्हें
 प्रौढ़ज्ञान था, उन्होंने दिल्ली के काजी से शास्त्रार्थ किया और
 उसे परास्त किया, बादशाह ने उन्हें दिल्ली का काजी बनाया,
 दिल्ली के बादशाह शाहजहाँ के ये आश्रित हुए । शाहजहाँ ने
 ही उन्हें पण्डितराज की पदवी दी । इन्होंने समय में अप्यय
 दीक्षित थे और अप्यय दीक्षित से इनका विरोध था, उन्होंने
 अप्ययदीक्षित की चित्रमोमांसा नामक ग्रन्थ का लण्डन
 किया है ।

दिल्ली जाने के पहले ये नेपाल भी गये थे, पर वहाँ उनका
 मन नहीं रमा और वहाँ से चले आये, इस लक्षण में एक
 श्लोक प्रसिद्ध है ।

दिहोदधरो वा जगदीशधरो वा मनोरथो दूषिणुः समर्थः
नेराळभूयैः परिदीपयन्तं शाखापदास्याह वनाय कारयान्

दिहोदधर वा जगदीशधर मनोरथों को पूरा कर सकते हैं,
नेपाल के राजा ने आ दिया है यह शाक या निमक के लिए
हो सकता है ।

लखनू नाम की किसी मुसलमान बन्धा से इन्होंने व्याह
किया था । यह बात प्रसिद्ध हो गई । इस संकल्प में इन्होंने
कहा है ।

यवनीनयनीन कोमलाङ्गी यवनीयरो यदि पाषणी करोषु”

यवनीनलमेव साधु मध्ये न करो वाषणी विधीदहेतुः ।

मकल के समान कोमलाङ्गी यवनी यदि पलंग को पवित्र
करे तो पूष्णी तलहो उत्तम है, इन्द्र का नन्दनयन अच्छा नहीं ।
पर यवनी परिणय के कारण इनकी आतिथालों ने इन्हें आति-
थ्युत कर दिया था और इन्होंने पूजाधरुषा काशी में
बिनायी थी ।

इनके बनाये ग्रन्थों के नाम ये हैं:—

अमृत लहरी,

भासक विलास,

कल्याण लहरी,

चित्र मीमांसा घण्टन,

जगदामरण काव्य,

पीयूष लहरी,

प्राणामरण काव्य,
 मामिमीपिलाग,
 मनोरमाकुचमर्दन,
 यमुनावर्णन घम्पू,
 सरसी लहरी,
 सुषालहरी,
 रसगङ्गाधर,

कामरूप के राजा के वर्णन में इन्होंने प्राणामरण नाम एक काव्य लिखा है, इससे सम्मय है कुछ दिनों तक यहाँ भी रहे हों।

इनकी युक्ति सरस और चुमनेवाली होती है, इन्होंने कं महाकाव्य नहीं लिखा है, काव्य के उत्तम गुण इनकी कविता में कम पाये जाते हैं, शब्दसौष्टव्य और उक्ति-चातुर्य इन कविता में काफी है और इसीसे इनकी कविता का भाव है। ये बड़े ही अभिमानी थे। अपनी कविता के विषय। इनकी समझ थी कि मेरे समान कविता करनेवाला दूसरा नहीं, केवल समझ ही नहीं थी यह बात इन्होंने लिखी भी है

भासुलाद्वलसानोर्मलपवलवितादा च कूलान्तपोधे
 भावन्तः सन्ति काव्य प्रणेन पृथक्सो विशङ्क वदन्तु
 मृद्वीकामध्य निर्वन्मसृष्टपुष्पसु माधुरी काव्य-सौम्यो
 बाधामाधार्मठाषा पदमनु भविन् कोऽस्ति घन्यो मदन्यः ।

मेघ पर्वत से लेकर मलयाचल वेष्टित समुद्रतीर पर्यन्त जो काव्यरचना में चतुर हैं वे निःशङ्क होकर कहें, दास से निकले कोमल मधुरता पूर्ण वचन का धाचार्य होने की योग्यता मेरे अतिरिक्त और किस घन्य मनुष्य में है।

इन्होंने अपने विषय में कहा है—

शाखाग्याकालितावि नित्यविषयः सर्वेऽपि सम्मविताः

दिहीबहुभ्रमणिपल्लवतले नीतं नवीनं नयः

सम्पत्सुम्नितमासनं मधुरीमभ्ये हरिः सेव्यते

सर्वं पण्डितराजिराजतिङ्कै चाकारि लोकोत्तरम् ।

शास्त्रों का अध्ययन किया, सभी नित्य विधियों का अनुष्ठान किया, दिही पति के हाथों के नीचे नयी उमर बितायी इस समय पद छोड़ कर मथुरा में हरि की सेवा होती है, पण्डितराज ने सभी अनुष्ठान हो किया । सोलहवीं सदी के प्रारम्भ में ये थे ।

विद्वान्ते वसुधातले परवचःश्लाघासु बाधयमाः

भूपालाः कमलाविलासमदिरोन्मीलन्महापूजिताः

भास्ये धात्वति कस्य लास्यमधुना धम्यस्य कामालस-

स्वर्वाभाधरमाधुरीमभयन् वाचो विलासोमम ॥१॥

पृथिवी के विद्वान् दूसरों की कविता की प्रशंसा करने के विषय में इस समय मौन हैं, राजा लोग धन मद से उन्मत्त हो रहे हैं, ऐसी दशा में काम से अलसार्थी देवाङ्गनाओं की भयर माधुरी को तिरस्कार करने वाला मेरा यद्यनविलास किस धन्य मनुष्य के मुख में नृत्य करेगा ।

विद्वानैव गुणशता समुदितो भूवानवुयाभरः

कालोऽयं कलिरात्रगाम जगतीलापण्यकुक्षिम्भरिः

इत्थं भावगया मदीयकविते मौर्वे किमालससे

अगु' क्षितिमण्डले चिरमिह श्रीकामरूपेश्वरः ॥२॥

गुणशता तो चलो ही गयी, दूसरों के गुणों में दोष देखने की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई है, यह कलियुग है जिसने जगत् का

सौन्दर्य नष्ट किया है, यह सोचकर हे मर्यादा
क्यों हो रही हो, इस भूगण्डल पर
दिनों तक घर्तमान रहें ! अर्थात् ये ही तुम

क्षोभि शासनि मरुपदवल्लभः कस्यचि
प्रौढ व्याहरतो वचस्तव कथं देवप्रतीमे
प्रत्यक्ष भवतो विपदानिषद्वैर्वास्तुतन्नि
मरुपुष्पानुकुलकोटिमूनपुरुषो निर्भिद्यते :

मेरे शासन के समय किसी को भी धोखा
हो आपकी इस बात का हम लोग कैसे सत्य
यह प्रत्यक्ष है कि आपका शासनमूह मोघ
जाता है और यह आपके कुल के मूलपुरुष
करता है ।

पुरा ताति मानसे विद्वन्मार्गमातिगलम्
परागतुरभीष्टं पयसि वन्द्य पातं वयः
स वन्द्यलक्षणेऽपुना मिलद्वेन्द्वभेदागुले
मत्तारुगुलतावदः कथयते कथं वान्तान् ।

पहले मानसरोवर के चिह्नित कमलों के गिरे
सुगन्धित जल में जिसने अपना उमर बितायी, यह
क्षेत्र छोटे तालाब में—जिसमें बनेको मंडक है किता
कहो तो ।

आर्देदोऽम्बरायं वसितः पद्मा मुद्रा तमापमुद्राणि समा
सद्गोचमश्चि मारुतवि दीनदोने मीनो नु ह्यन वनशी गतिमधु
हैं सरोवर, मुद्राएं दीन होने पर ध्वनि
गगन उड़कर भाग्य

का आश्रय लिया पर विचारी मछलियों को क्या दशा होगी,
ये कहौ आश्रय पावेंगी ।

पुरुषं गदनेऽस्मिन् कोकिल न हन् कदाचिदपि कुर्याः
साजान्यश्चर्यामी न त्वां प्रति निर्दयाः काकाः ।

हे कोकिल, तुम इस वन में अकेली हो, इसलिए कभी
बोलना मत, नहीं तो कौओं को मालूम होजायगा कि यह
कौआ नहीं है और वे निर्दय तुम्हें मार डालेंगे । अभी तो
न बोलने से तुम्हें अपनी जाति का समझते हैं और इसीसे वे
तुम्हें नहीं मारते ।

प्रीप्ते भीष्मजरीः करैर्दिनहृन्ने दग्धोऽपि यथातथः ।
त्वां ध्यायन् घन, वासरान् कथमपि प्रापीयसो नीतवान् ।
दैवाहोचनगोदरेण भयना तस्मिन्निदानीं यदि
स्थोचके कलकान्निपातनकृपा तद् कम्पति धूमहे ।

हे मेघ, गर्मों के सूर्य की फड़ी किरणों से जला हुआ भी
जिस घातक ने केवल तुम्हारा ही ध्यान करके उन षडे दिनों
को बिताया, अब तुम भाग्य से दिखायी पड़े तो उस विचारे
घातक पर तुमने पत्थर धरसाने की कृपा की, यह बात
किससे हम लोग कहे ।

स्थितिं नोरे दग्धाः क्षणमपि मदान्धेक्षण सखे,
गजभ्रंशिताय त्वमिदं अटिकायां वनमुषि,
असौ कुम्भिभ्रान्त्या खर नखर विद्रावितमहा-
गुरमावग्रामः स्वपिति विरिणभे' हरिपतिः ।

हे मतवाली आंखों वाले गजराज, इस चौहद् घन में एक
क्षण भी न रदो, यह देखो, हाथी के भ्रम से तोखे नखों द्वारा

बड़े बड़े पत्थरों को चीर कर यहाँ पर्वत की गु-
तिह सो रहा है ।

अन्धा जगद्धिगमयो मनसः प्रवृत्तिर्गैव काशिरचना वर-
सोकोत्तरा च कृति साधुनितानं हृष्टा विद्यापत्रांमहत्त्वमेव ति-
पिठानों को सर्व यानें विलक्षण होती हैं, उनकी
सिफ प्रवृत्ति संसार का कल्याण करनेवालों होती है
बोलने का ढंग कुछ विलक्षण हो होता है । उनके
लोकोत्तर होने हैं और उनकी आर्जुति पीढ़ियों को
मालूम होती है ।

गुल्मप्यगता मया नताङ्गी निदिता नीरजकोट्येण मन्दन,
दरकुण्डलताण्डव नतधू निरुक्त मामवलोक्य धुनितासीत् ।
यह कोमलाङ्गी अपने बड़ों के बीच में घड़ी थी, मैंने उ-
कमल की कली से धीरे से मारा, उसने अपने कुण्डलों के
धोड़ा नचाकर भीहों को टेंदी कर मुझे क्रोधपूर्णक देखा ।
धीरे तलप्या यदनं सदायं नीरे सरोजवमिलद्विदामम्
आलोक्य धायत्सुभयस मुग्धा मन्मदुन्धानि किशोरमाला ।

तीर पर युवती का हँसता हुआ मुख है और :
खिला कमल है, दोनों को देख कर पुष्प-रस की लो-
भ्रमरपंक्ति कभी इधर और कभी उधर दौड़ती हैं, उ-
लिफ इस बात का निश्चय करना कठिन हो रहा है कि क-
कौन है ।

उपनिषदः परिपीता गीतावि च हन्त धुतिपथं नोता,
तदपि न हा विभुवदना मानससदनादद्विष्यति ।
उपनिषदों का पान किया, गीता को भी न-
वह चन्द्रमुखी मन्त्र से

लोभाद्वराटिकानां विक्रेतुं तत्कमविरतमाटन्या

लब्धो गोपकिशोर्या मध्येरध्वं महेन्द्रनीलमणिः

कोई गोपकन्या कौटूरियों के लोभ से तब बेचने के लिए गलियों में घूम रही थी, गलों के बीच में उसे इन्द्रनीलमणि मिल गया ।

गुणमये हरिणाक्षीमातिं कशकलीर्निहन्तुकामं माम्

रदयन्मत्त रसनायं तरलितनयनं निवारयाञ्चके

अपने बड़े के बीच में यह बैठी थी, उस मृगनयनी ने मिट्टी के टुकड़ों से मारने की इच्छा रखने वाले मुझको, अपनी जीभ के अग्रभाग को दांतों से दबा कर और आँखें घुमाकर रोका ।

दैवे परागवदनशालिनि हन्त जाते,

पाते च सम्मति दिवं प्रतिक्युरत्ने,

कस्मै मनः कयवितासि निजामवस्थां

कः शीतलैः शमयिता वचनैस्मयाधिम् ।

भाग्य के प्रतिकूल होने पर और मित्र के स्वर्गगामी होने पर हे मन, तुम अपनी अवस्था का वर्णन किससे करोगे और कौन शीतल पत्रनों द्वारा तुम्हारा दुःख दूर करेगा ।

• सवे'रि विस्तृतिपथं विषयाः प्रयाता

• विद्यापि श्लेदगलिता विमुक्तीवभूव,

सा केवलं हरिणशावकलोचना मे

नैवापयाति हृदयादधिदेवतेय ।

सभी पातें भूलगयी, विद्या भी दुःख के मारे कूट गयी, पर केवल वही हरिणशावक लोचना अधिष्ठात्री देवता के समान मेरे हृदय से नहीं निकल रही है ।

आज आगे नम्र कारिणि वन्दुमान
 दा दूरवर्तनि न कथन कारिणाम्
 सा ममर्षि कारिणामि, दुर्दैवद्विज
 मागुं कथं कथयामा वं द्रुमोपम् ।

हे मामिनि, भविष्यत् पूर्वक आज में जी कर्मा गुमने दूम
 पुनः को नहीं वेना है, परी नम, आज किगुंन परदुम
 (परम पुनः, परमेश्वर) को जाने के निर करो बली हो
 कहो ।

सुगानि महानाथ कथयता दारणी नृपम्,
 अमरपुनःपुनः वन्दिता अर्पिणि वन्दुमान्,
 कारिणिमिनिमिनिमिनीतःपुनःपुनःपुनः,
 मरी वमनिपुनःपुनः मरु कारि कारिनिमो,

स्मरण करने में भी जो मनुष्यों के कठोर दुःख को हटाने
 करती है, व्याप्य प्रभाव वाली विज्ञानियों से जिसका शरीर
 शोभित हो रहा है, यमुना के तीर के देवदूत पर लटकने
 वाली कोई मेषमाला (रुप्य) मेरी बुद्धि का चुम्बन करे,
 अर्थात् मेरी बुद्धि उसका चिन्तन करे ।

वाचा निर्मलया सुधामपुत्राया वा वाप शिक्षामदा-
 स्ता स्वप्नेऽपि सत्समाम्पहमहम्माकाटतो निष्प-
 इत्यामःशतशालिष पुनरपि स्त्रीवेषु मां विभज-
 स्वप्ने मास्ति दधानिधिर्दुपते मत्तो न मत्तोऽपरः -

हे नाथ, अमृत के समान मधुर निर्मल वचनों द्वारा ज
 शिक्षा आपने दी है, उसको स्वप्न में भी मैं स्मरण नहीं करता
 क्योंकि मैं अहंकारी हूँ, निर्लज्ज हूँ, इस प्रकार के अनेक
 मेरे अपराध हैं, फिर भी आप मुझे अपनाये हुए हैं, हे पदु

पते, आपके समान दूसरा दयालु नहीं है और न मेरे समान मतवाला ही कोई दूसरा है ।

पातालं यत्र, याहि वा सुखुरीमारोह मेरोः शिरः
पारावापरम्परां तर तथाप्याशा न शान्ता तव,
आधिःवाधिजरापराहत, यदि क्षेम निजं वाञ्छसि,
ओहृण्येति रसयनं रसय रेशून्यैः किमन्यैः धर्मैः ।

पाताल में जाओ, देवताओं की पुरी में जाओ, मेरु पर्वत
सिर पर चढ़ो अथवा समस्त समुद्रों को पार करो, फिर भी
तुम्हारी आशा शान्त न होगी. हे मानसिक और शरीरिक
दुःखों से पीड़ित, यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो
(ओहृण्य) इस रसायन का आस्वादन करो, निरर्थक अन्य प्रयत्नों
से लाभ क्या ।

मृदुवीका रसिता सिता समशिता रक्तीकं विपीतं पयः
स्वपांतेन मुधाप्यधायि कतिधा रम्भाधरः स्रविष्ठः
सत्यं मूढि मदीय जीय भवता भूयो भवे आम्बता,
हृण्येत्पक्षरपोर्य मधुरिमोद्गताः कषितक्षिताः ।

दास तुमने लाया, मिश्री छापी, दूध पिया, स्वर्ग जाने
पर अमृत पिया, रामा के अधर का भी आस्वादन किया
है मेरे जीय, सब कहो पारदार संसार में घूमने से तुम्हें
(हृण्य) इन अक्षरों की मिटाई के समान मिटाई कहाँ मिली है ।

सपदि विलयमेतु राजलक्ष्मी स्परि पतन्वधवा कृपाणधारा
अपरानुनरी शिरः कृताम्बोमम तु मनो न मनागपैति धर्मात् ।

इसी समय राजलक्ष्मी का नाश हो जाय, अथवा मेरे
ऊपर ललचारे पड़ें यमराज मस्तक ले जाय पर मेरा मन धर्म
से नहीं हटता ।

जयदेव ।

इनकी कविता यड़ी ही सरस और म
गीतगोविन्द नाम का एक ग्रन्थ बनाया
की स्तुति है, राधामाधव की केलि वर्णन
सोमापार कर गया है, शृङ्गार की धारा
है। यदि उस वर्णन से राधामाधव का संय
देव की घाणी इतनी मधुर न होती, तो ले
कहते।

बंगाल के किन्दुबिन्दव नामक गांव में ये
गांव धीरभूमि जिला में है। इनके पिता का
और माता का नाम यामादेवी था। इनकी
पद्मावती था। ये वैष्णव थे। ये बंगाल के राज
की सभा में रहते थे, यह बात नीचे लिखे श्लोक
पढ़ती है।

गोवर्धनश्च शरणा जयदेव उमापतिः
कविराजश्च रयानि समितौ लक्ष्मणस्य हि ।

इस श्लोक की पुष्टि जयदेव ने अपने गीतगोविन्द
निम्न एक श्लोक द्वारा की है।

वाचः पल्लवपत्नुमापतिधरः सन्दर्भशुद्धि गिराम्,
जानोते जयदेव एव शरणाः क्षणो दुरुद्धुतेः
शृङ्गारोपरसत्यमेपरचनैराचार्यगोवर्धन-
स्पर्षी कोऽपि न विधुतः धृन्धरो धोषी कविपतिः

इनके अतिरिक्त पद्य...

पूर्वं यत्र सर्वं न्यया रतिपतेरासादिताः सिद्धय-
स्तस्मिन्नेव निकुञ्जमन्मयमहातीर्थं पुनर्माधवः ।
ध्यायेत्स्वामिनिशं जपयपि तवैवालापमन्त्राक्षरं
भूयस्वत्कुचकुम्भनिर्भरपरीरम्भामृतं चाभ्युति ॥

पहले तुम्हारे साथ जहाँ कामदेव की सिद्धि पायी थी
उसी कामदेव के महानीर्थ कुञ्ज में माधव पुनः तुम्हारा ध्यान
करता है और तुम्हारी ही बातों को मन्त्र बना कर जप रहा
है, और पुनः यह तुम्हारे आलिकुन का अमृत चाहता है ।

रतिमुल्लसारे गतामभिनारे मदनमनोहरवेशम् ।
न हृद नितम्बिनि यमनविलम्बनमनुपर तं हृदयेशम् ।
धीरसमीरे यमुनातीरे वसति बने बनमाली ।
पीनपयोधरपरिसरमहर्दनचञ्चलकरपुगशाखी ॥ भूवम्

अभिसार के लिए मदन का मनोहर वेश प्राप्त हुआ है,
चलने में विलम्ब मत करो हृदयेश का स्मरण करो । इस
समय वनमाली यमुनातीर पर हैं जहाँ मन्द मन्द हवा चल
रही है, और तुम्हारे स्तनस्पर्श के लिए उनके हाथ चञ्चल हो
रहे हैं ।

नामसमेतं कृतसङ्केतं वादयते मृदुवेषुम् ।
बहुमनुते ननु ते तनुमद्भूषणचलितमपि रेषुम् ॥

ये तुम्हारा नाम लेकर सङ्केत कर रहे हैं वेषु यज्ञा रहे
हैं, तुम्हारे शरीर की धूलि जो वायु के द्वारा लायी जाती है
उसे भी ये बहुत समझते हैं ।

पतति पत्रे विचलति पत्रे शङ्खितभवदुपयानम् ।
रचयति शयनं सचकितनयनं परयति तव पन्थानम् ॥

जय पक्षी उड़ने हैं या पत्ता गटकरा है तो उन
माने का सम्बन्ध हो जाता है, वे धिछोना यना
चकित होकर तुम्हारा मार्ग देखने हैं ।

सुप्रसन्नधीरं त्यज मञ्जोरं त्रिभुवि केलिषु लोभम् ॥
चल मन्त्रि बुद्धं मन्त्रिमित्रेषु शोभय मोलनिषोढम् ॥

फोडा में शशुरूप इस यज्ञने वाले नृपुत्र को छोड़
सखि, अन्धेरे कुञ्ज का ओर चलो और फाला कुर्ता पहन

जयि मुरारेल्लपदितहारं यन इव तालवलाङ्गे ।
तद्भिदिव पीते रतिविपरीते रात्रिनि सुकृतविषाङ्गे ॥

हे पुण्यवति, माघय के उरस्थल पर माला पड़ी है, इस
यह चञ्चल धक्कपक्ति युक्त मेघ के समान मालूम होता है, ज
पर विपरीत रति में विद्युत् के समान तुम शोभित होमोगी

हरिभिमानी रत्रिनिदानीमिषमपि वाति विरामम् ।
कुरु मम वचनं सत्पदरचनं पूरय मधुरिपुष्कामम् ॥

कृष्ण अभिमानी है, रात भी बीत रही है, मेरी बात मा
कृष्ण का मनोरथ पूरा करो ।

धीमपदेवे कृतहरिसेवे भणति परभरमणीयम् ।
प्रमुदितहृदयं हरिमतिसदयं नमत सुकृतकमनीयम् ॥

हरिसेवक जयदेव ने यह परम रमणीय उक्ति कही है ।
प्रसन्नचित्त दयालु और पुण्य के द्वारा सुन्दर हरि
नमस्कार करो ।

विकिरति मुहः श्यामानाशाः पुरो मुदरीक्षते
प्रविशति मुहः उज्जं गुञ्जं मुदुर्बुद्धं साश्रुतिः ।

रघपति मुदः शय्यां व्याकुलं मुदरीकते
मदनकदनहान्तः कान्ते प्रियस्तत्र वर्तते ॥

बार बार चारों तरफ श्वास फेंक रहा है, बार बार आगे
ती ओर देखता है, कुछ चोखता हुआ बार बार कुञ्ज में जाता
। बहुत व्याकुल होता है, बार बार शय्या बनाता है, व्या-
कुल होकर बारबार देखता है, कान्ते, तुम्हारा प्रिय इस समय
रदन के दुःख से व्याकुल है ।

एवमाप्येन सर्वं समग्रमनुना तिग्मांशुर्वागतो
गोविन्दस्य मनोरथेन च सर्वं प्राप्तं तमः साग्नताम् ।
कोकानीं करणस्थनेन सकृशी दीपां मदम्पर्यना
तन्मुग्धे विकलं विलम्बनमसौ रम्योऽभिसारक्षयः ॥

तुम्हारी धामता के साथ साथ यह सूर्य अस्त हो गया,
गोविन्द के मनोरथ के साथ साथ धन्धकार गाढ़ हो गया ।
चकवा की करणप्रार्थना के समान मेरी यह प्रार्थना है,
मुग्धे, अब विलम्ब ध्यर्थ है, यह अभिसार का उत्तम अव-
सर है ।

भाङ्गपादु सुम्भनादनु नलोहेरादनु रयान्तम-
मोक्षबोधादनु सम्भ्रमादनु रतारम्भादनु प्रीतयोः
अम्पार्ये गतपोभ्रमांमिलितयोः सम्भाषणैर्गान्तो-
र्दम्पत्योरपि को न को न तमसि प्रीङ्गाविमिश्रो रतः

प्रेमी दम्पतियों को धन्धकार में लजायुक्त अनेक प्रकार
के रस प्राप्त होते हैं । आलिङ्गन सुम्भन, नलोहैख, मानसिक
उत्थास, घबड़ाहट मित्र मित्र मार्ग में जाने वालों का मृग से
मिलना और घोली से पुनः पहचानना आदि अनेक प्रकार के
सुख प्राप्त होते हैं ।

समयचकित विन्यस्यन्तो दूरी तिमिरे पथि
प्रतिवह मुहः स्थित्वा मन्दं पदानि वितन्वतीम्
कथमपि रहः प्राप्तामङ्गैरनङ्गतरङ्गिभिः
सुमुखि सुभगाः परयन् स त्वामुपेतुं हताथंताम्

अंधेरे मार्ग में चकित होकर देखती हुई प्रत्ये
पास उदर कर धीरे धीरे पीर रखती हुई इस प्रकार
क्यों से आई हुई तुमको देखकर तुम्हारा प्रिय र
अहो से हताथं हो ।

राधासुगन्धमुत्तारकिन्दमधुपरत्रैलोग्यमीलित्पली-
नेपथ्योचितनीलरघमवनीभारापवाराभक्तः
स्वच्छन्दं प्रजसुन्दरीजनमन राजापमदोषधिरं
कंसार्थसन्धूमकेतुरवतु त्वां देवकीनन्दनः ॥

राधा के सुन्दर मुख कमल के समर, त्रिलोक के शि
मलि, माभूषण योग्य नीला रत्न, पृथिवी का भार उठा
वाले, प्रजनारियों के मन को सन्तुष्ट करने वाले, कंस के म
के चिह्न, देवकीनन्दन तुम्हारी रक्षा करें ।

जयदेव (२)

इन्होंने प्रसन्नराषण नामक नाटक बनाया है । यह वि
के रचनेवाले थे । इनकी माता का नाम सुमित्रा मा
पिता का नाम महादेव था । यह कौण्डिन्य गाँव के थे । रा
विलक्षण कवि होने के अतिरिक्त नैयायिक भी थे । इनका
दूसरा नाम पराधर भी था और पराधरी नाम की एक पुस्तक

न्याय की इन्होंने बनायी है और भी न्याय की पुस्तकें इन्होंने लिखी है । चन्द्रालोक नामक अलङ्कार ग्रन्थ भी इन्होंने बनाया है । इस ग्रन्थ में इन्होंने अपना नाम पीयूषवर्ष लिखा है । इनके निश्चित समय का अभी तक ठीक पता नहीं लगता, पर १५ वीं शताब्दी में इनका होना अनुमान किया जाता है ।

ये नैयायिक और कवि दोनों थे और इसका इन्हे अभिमान था, यह बात इन्होंने अपने ग्रंथ में साफ लिखी भी है । इनका कहना है कि चिलासो भी धीर हो सकता और कवि नैयायिक भी हो सकता है ।

येषां कोमलकाम्यकौशलकलालीलावती भारती,
तेषां कर्कशतर्कवक्रवचनोद्गारेऽपि किं हीयते,
वैः कान्ताकुचमण्डले करुणा, सानन्दमारोपिता—
सैः किं मत्तकरीन्द्रकुम्भशिखरे नारोपणीयाः शराः ।

इनकी न्यायशास्त्र में यड़ी, प्रखरगति थी, ये शास्त्रार्थ में बड़े बड़े पण्डितों को परास्त कर देते थे । इनके विषय में यह जाता है कि पक्षधर का प्रतिपक्षी कोई दीख न पड़ा ।

“ पक्षधर प्रतिपक्षी रुक्षीभूतो न च क्वपि ”

येषां कोमलकाम्यकौशलकलालीलावती भारती ।
तेषां कर्कशतर्कवक्रवचनोद्गारेऽपि किं हीयते ।
वैः कान्ताकुचमण्डले करुणाः सानन्दमारोपिता—
सैः किं मत्तकरीन्द्रकुम्भशिखरे नारोपणीयाः शराः ५

जिनकी घाणी काव्यकला कोमल है, वे क्या कठोर तर्क शास्त्र के बचन नहीं कह सकते ! जिन लोगों ने आनन्द पूर्णक प्रान्त के कुचमण्डल पर हाथ रखे हैं, वे क्या मत्तघाले हाथी के मस्तक पर घाण नहीं छोड़ते ।

अपि मुदमुग्धान्तो वाग्विचारीः स्वकीयैः

परमणितु सोऽयं यान्ति तान्तः क्लिप्ताः ।

निजधनमकरन्दस्वन्दपुष्पाटकाः

कलशासलिलयेऽहं नेहते किं स्यात्तः ॥

अपनी याणो से प्रसन्न होनेवाले मी कर्द सज्जन दूसरे
की याणी सुनकर प्रसन्न होते हैं । जिस रसाल वृक्ष का माल
घाल उसके अपने पुष्परस से पूर्ण होता है वह क्या छोड़े के
जल से सींचा जाना पसन्द नहीं करता ।

धातां च कौतुकयतो विमला च विद्या

लोकोत्तरः परिमलश्च कुरङ्गनाभः ।

तैलस्य विन्दुरिव वारिधि दुर्निवार-

मेतमयं प्रसरति स्वयमेव भूमौ ॥

आश्चर्यमयी याणी, निर्मल विद्या और और लोकोत्तर
कहूरी की गन्ध ये तीन जल में तैलविन्दु के समान आपसी
भाव फैलते हैं, इनको रोकना असम्भव है ।

पुस्तकैश्च चक्रवाकहृदयारवासाय तारागण-

भासाय स्फुरदिन्द्रमण्डलपरीदासाय भासां निधिः ।

दिक्कान्ताकुचकुम्भकुटुम्बरसन्धासाय पट्टेन्दो-

क्लासाय स्पृष्टचैरिक्कैरपवनभासाय विधोतते ॥

यह देखो, चक्रवाक दम्पती के हृदयों को आग्रासित
करने के लिए, ताराओं का आस करने के लिए, प्रकाशित
होनेवाले चन्द्रमण्डल की हंसी करने के लिए, दिग्गुणा के
स्तनों पर कुङ्कुम का रस लगाने के लिए कमलों को विकसित
करने के लिए, और खुल्लम् खुल्ला शत्रुता करनेवाले कैरव
धन को भय देने के लिए यह सूर्य प्रकाशित हो रहा है ।

कपूरदादपि कैरवादपि दलकुन्दादपि स्वर्णदी-

कल्लेलादपि केतकादपि चलत्काम्ताद्रुगन्तादपि ।

दूरोन्मुक्तकलद्रुशंकरशिरःशोतांगुलण्डादपि

श्वेताभिस्तव कीर्तिभिर्घबलिषा सप्तार्णवा मेदिनी ॥

कपूर, कैरव चिकसित होने वाले कुन्द, गङ्गा की तरफ़
केतक, खरी के चञ्चल आंखों के कोण, कलङ्क रहित महारेश
के सिर पर रहने वाले चन्द्रखण्ड से भी अधिक तुम्हारी
कीर्ति श्वेत है और उसने सात समुद्रों से घिरी पृथिवी को
श्वेत बना दिया ।

जल्हण ।

ये कवि काश्मीर देश के निवासी थे । मरतकवि ने इनके
विषय में भपने श्रीकण्ठचरित में जो लिखा है, वह नीचे उद्धृत
किया जाता है ।

यथा करति वक्रं य वाग् मस्य यतुरैः पदैः

सप्तकम्पै विनिर्माणमुपनेव प्रदक्षिणम्,

प्रक्रमैर्दृक्क्षिप्त्वा मुरारिमनुषावनः

श्रीरात्रोत्तरागिरा मंत्री यन्प्रापि नवदाम्

भीमप्राञ्जुरीमन्त्रिचक्षिप्रावृण विप्रागिरम्,

अपारधं यन्प्रापि नवदाम् यन्प्रापि विप्रागिरम्

इन श्लोकों में मान्यता होता है कि ये चक्रोक्ति कहने
वाले निपुण थे । चक्र रचना में मुरारि कवि की ये बराबरी कर
थे । रात्रोत्तर कवि की कविता इनकी भादरी थी, काश्मी
के मन्त्रांग रात्रुती के राजा के ये मंत्री थे, इन्होंने रात्र

विलास नाम का एक काव्य बनाया था, इस काव्य की टीका राजानक रुप्यक ने बनायी थी, जिसका नाम अलंकारानुसारिणी है। इस काव्य में राजपुरी के राजा सोमपालका वर्णन है।

स्वप्रशया कुञ्चिकयेव केचित्सारस्वतं वक्त्रिमभङ्गिमात्रम् ।

कवीश्वरः कोऽपि पदार्थकोशमुदाह्य विद्यामरणं करोति ॥ १ ॥

यकता धारण करनेवाले सरस्वती के पदार्थकोश को कवीश्वर कुंजीरूपी अपनी बुद्धि से खोलते हैं और उसके द्वारा संसार को भूयित करते हैं। कवीश्वर कठिन तथ्यों को अपनी बुद्धि से सुलभाते हैं और उससे संसार का उपकार होता है।

देवीर्गिरः कोऽपि कृतापेक्षितं ताः कुम्भयम्बेव पुनर्विन्दुः ॥

वा विष्णुः कृत्स्नितेषु दीप्यस्ता एव मुक्ता ननु चातकेषु ॥ २ ॥

कुछ लोग देवी घाणी को हतार्थ करते हैं और मूर्ख उसी को कुण्ठित करते हैं, जो दिव्य जलपिन्दु सीप के मुख में पड़ते हैं उन्हींसे मोती तय्यार होजाता है, चातकों के मुख में पड़े पिन्दु से नहीं।

परिममज्ञं जनमन्तरेण मौनवतं विभ्रति वाग्मिनोपि ॥

वार्धपमाः सन्ति बिना वसन्तं पुंरक्षोक्लिता पञ्चमषष्ठयोपि ॥ ३ ॥

परिमम जाननेवाला मनुष्य यदि न मिले तो घका भी चुप रहते हैं। पञ्चम राग गाने में धनुर कोकिल भी वसन्त के बिना चुपही रहता है।

ग्याह्य राहुमनुष्याप्रसादमिष्टाशितोनिषदमुग्रमाधुः ॥

हनीव भीताः पिशुना भयन्ति परादमुन्माः कालरमाष्टेभु ॥ ४ ॥

हाथी और राहु को अमृत के कारण जिहा और मंस्त्र
का कटिन दण्ड भोगना पड़ा है । इससे भीत होकर पिपुन
मनुष्य काव्यरसामृत से अलग ही रहते हैं ।

माधन्मातङ्गकुम्भस्थश्चदलवसावासनाविषगन्ध-

व्यासङ्गन्यक्तमुक्ताफलशकलसन्धेसराली कराळः ॥

व्याधीवैषम्यवेधाः स्वमुग्धलमतप्रस्ततैजस्विधामा

विग्नसारङ्गसाधेः सततमसदनः केसरी केन दूष्टः ॥ ५ ॥

मतवाले हाथी के कुम्भ-स्थल की गाढ़ी चर्बी से घा-
होने के कारण कच्चे गांस के समान जो महफता है, हाथ
कुम्भ-स्थल को अधिक सरोचने से निकले हुए मुक्ता के दूध
से जिसका केसर भयानक होगया है, व्याघ छियों को विष
धनानेवाला अपने भुजबल से अन्य तेजस्वियों के तेज
नीचा दिखाने वाला, यह सिंह किसके दृष्टिपथ में भाण है
जिससे हिरनी का समूह डरा करता है ।

कः कः कुत्र न धुधुरायितपुरीषोरो धुरेन्सूकरः

कः कः कं कमलाकरं विक्रमलं कर्तुं करी मोघतः ॥

के के कानि वनाम्परण्यमहिषा मोन्सूलयेधुर्वतः

सिंहोस्नेहविलासवद्धपतिः पद्माननो वर्तते ॥ ६ ॥

किस किस सूकर ने धुधुराराव से मयदूर धनकर लोग
मयमीत नहीं किया है, कौन कौन हाथी किस किस
मल धन को कमल हीन करने के लिए उद्यत नहीं होते ।
ले भैसे किस किस धन को तोड़ फोड़ नहीं रहे हैं क्योंकि
समय सिंह सिंहिनी के प्रेम के कारण विलासी बना
है ।

भावाङ्गादपि यो विदारितमदोन्मत्तेन कुम्भस्थली
स्वालीमध्यक बोधरत्नसयन्मुक्तापुलाकप्रियः ॥
इत्तस्तस्य कर्म प्रपद्यतु गुरु कृष्णव्यस्यन्तरे
गतावित्तं विवर्तमानशयनप्राणापहारे हरेः ॥ ७ ॥

जिसने बाल्यावस्था से ही मतवाले हाथियों के कुम्भस्थल को सोड़ा है, और जिसे गर्म रक्त से सना हुआ मुक्ताफल प्रिय है, उस सिंह की चाहे किसी ही घुरी अवस्था हो पर गढ़े में गिरे भयव्याकुल हरिण को मारने के लिए उसका हाथ कैसे आगे बढ़ेगा ।

रक्ताक्षयश्चरकोटिनिभाः दधानां वृषा पलाशवनतोपि पलाय्य जामुः ॥
सिंहस्य तस्य जरतो विपत्ता दशा यद्गोमायुर्वैरव्यवैरपि माम्नि वृत्तिः ॥८॥

पलाश के फूल भी रक्तयुक्त सिंह के नखों के समान हैं, इसलिए हाथी पलाश वन को भी छोड़ कर भाग गये, उस घड़े सिंह की आज घुरी दशा है, जो कि आज उसे शृगाल के मांस के टुकड़े भी जीवन के लिए नहीं मिलते ।

परमं प्रतिगर्जतः प्रतिनिधिग्न्यस्य वातोद्धता-
नम्भोधीनिष घावतः सरभस इत्वा रणे वारयन् ॥
इष्टादृष्टमुपेयुषीत्यवपुषा शाखा गृगस्थोपरि
क्रुदः सोपि भवानहो वत् गतः पञ्चास्य दार्षा दशाम् ॥९॥

हे सिंह तुम, मेघ को देखकर गर्जते हो, वातक्षमित मुर्दों के समान दीड़ते हुए विन्ध्याचल के समान हाथियों तरण में शीघ्रता पूर्वक मारते हो, आप एक वृक्ष से सरे वृक्ष पर कूदने वाले अल्पकाय धानरों पर क्रोध करते, सिंह, दुःख की बात है कि आपने अपने इस आचरण से अपनी हंसी करायी ।

यद्विष्णुः शिखरी नन्दनार्ति वन्तीमुत्तिष्ठः निम्नः
 मोक्षद्वाराभिमानागमादभिमानर्जुः कमेगुप्त वन ॥
 तन्मिदं भवतया इमान्यनि करी ईव दि मर्नद्व
 तन्मृषांरति दुःमर्द नु नद्व मर्दो पुदि व्यापिनः ॥१०॥

यह विन्ध्य पर्वत, उस पर का रान्द्रु भी पीतल तप
 उत्कण्ठा पूर्वक शीघ्रता में आयी दूर यह हथिनी क्या भां
 इन मयकों यह हाथी स्मरण करता है, भाग्य सय वानों से
 भुला देता है, यह नो।मयमें अधिक दुःख की घात है कि
 "मन्द" भागे किया गया प्रथान् यह प्रधान बनाया गया।
 हाथी के एक निरुपे जानि को मन्द कहने हैं ।

मये विष्णुमुद्रुमिनामन्दनदीवातुलवातावही-
 देकोद्वलितमन्त्रिकाकितलपैषां वृद्धिमम्यागत ॥
 सोय दैववशाद्विराविरहितः शून्यकारको करी
 निर्मलदगजरमुपाशविशः कष्ट किमाचेष्टताम् ॥११॥

विन्ध्य पर्वत में उतुल्लेखलहरी नर्मदा नदी के वायु के द्वार
 बनायास कमिपत मल्लिका की फोदियों से जो वदा है, वह
 आज भाग्य के फेर से हथिनी विहीन होकर शून्यकार का
 रहा है, विषयमाय से रस्तियों में बंधा है वह अब शून्य
 कर सकता है ।

हे गन्धकुञ्जर महागिरिकुञ्जरजि मयापि मा स्मर तल्लीलनिमीलिताः ॥
 सुखमिमानमधुना भव्य वर्तमानं वक्ते विचेरपरि शामनमद्रुशं व ॥१२॥

हे गन्धगज, अब आंखें बन्द करके पर्वत कुंजों का स्म-
 रण न करो, अब अभिमान छोड़ दो, इस समय की अवस्था
 को भोगो, अब मय्य का शासन और अङ्गुश सहो ।

पयोपितोवि चिरकालमकिंचनः सघर्षः प्रतिग्रहघनमहयाधर्मणः ॥

निलंज गर्जसि समुद्रतटेपि तत्र घृष्टोऽधमोभव समो घन नैव दृष्टः ॥१३॥

हे मेघ, तुमने बहुत दिनों तक जहाँ दृष्टि रह कर वास किया है, उससे जल ग्रहण करके तुम उसके प्रणो भी घने हो, हे निलंज, तुम उसी समुद्र तट पर गर्जते हो, तुम्हारे समान घृष्ट और अधम दूसरा नहीं देखा गया ।

गात्रं निरस्य रसितैः सुचिरं विदस्य गात्रान्तरेषु घन वर्षसि घातकस्य ॥

अधुकोटि कुविलापतकन्धरस्य प्राणान्त्ययोस्य भयतः परिहासमात्रम् ॥१४॥

हे मेघ, मुंह खोलकर गर्जकर और लूच हंसकर घातक के शरीर पर तुम, पानी बरसाते हो, लम्बी और टेंदी गर्दन वाले उस घातक की मृत्यु तुम्हारे लिए केवल एक हंसी की बात है ।

भट्ट त्रिविक्रम

इन्होंने नलचम्पू नाम का एक ग्रन्थ बनाया है, इस ग्रन्थ का दूसरा नाम वमयन्तीकथा भी है । भट्टत्रिविक्रम के पिता का नाम वेष्वादित्य था । ये नेमादित्य भी कहे जाते थे । इनके पितामह का नाम धीधर था और ये शाण्डिल्य गोत्र के थे । भोजराज रचित सरस्वतीकण्ठाभरण में भीरु ब्रह्मालंकार की टीका में नलचम्पू के श्लोक उद्धृत किये गये हैं ।

कहा जाता है कि त्रिविक्रम कुछ पढ़े लिखे न थे, ये योहीं अपना समय इधर उधर खेल कूद में बिताया करते थे । इनके पिता किसी राजा के यहाँ राजपण्डित थे । एक बार किसी कार्यवश इनके पिता कहीं बाहर गये हुए थे, उस समय राजा

पदव्यास (पैरों का रखना, अथवा पद्य में शब्दों का रखना) में निपुण नहीं है और जननीराग के (जनो के नीराग—विराग अथवा जननी के राग के) हेतु, बहुत घोलने वाले कुछ कवि बालकों के समान हैं ।

ते चन्द्रास्ते महाग्मानस्तोषा लोके स्थिरं यशः

दैर्निगदानि काव्यानि ये वा काव्येषु कीर्तिताः ॥ ३ ॥

वे चन्द्रनीय हैं, वे महात्मा हैं और उन्हींका यश इस संसार में स्थिर है, जिन लोगों ने काव्य बनाये हैं या जिनका काव्यों में वर्णन हुआ है ।

प्रसन्नाः कामिताद्विष्यो वानाश्लेशविचक्रणाः ।

भवन्ति कस्य किंपुण्यैसु से वाचो गुरे स्त्रियः ॥ ४ ॥

प्रसन्न मनोहारी और अनेक प्रकार श्लेष (अलङ्कार विशेष और आलङ्कार) से युक्त यड़े भाग्य से किसी पुण्यधान के मुंह में ऐसी बात भीर घर में रखी होती है ।

रक्षाग्रमूनि मंकरालय भावमैस्याः कन्टोलवेष्टितद्रूपत्यरुप्रहारैः ॥

किं कौस्तुभेन विहितो भवतो न नाम यात्रामसारितकनः पुरुषोत्तमोपि ॥

हे समुद्र, अपनी लहरियों के आघात से इधर उधर लुढ़कनेवाले पथरों के कठोर प्रहार से इन रक्षों का तिरस्कार मत करो, क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि कौस्तुभ के कारण पुरुषोत्तम को भी तुम्हारे सामने हाथ फैलाना पड़ा था !

अन्योन्मत्तस्य लेख भयादिव महाभूतेषु मातेष्वलं

कस्यान्ते परमेक एव स ततः स्वन्धोषयैर्जम्भूते ॥

विम्वर्य सितगन्ति बुद्धिबुद्धे देवेन यस्यास्यते

शास्त्राणि शिशुनेव सेवितव्रलकीडाविलासालसम् ॥ ५ ॥

जिस समय भय से सब भूत आपस में मिल कर होजाते हैं, उस प्रलय के समय केवल एक उस वृक्ष की प्रशंसा करनी चाहिये जो अपनी शाखाओं के साथ खड़ा रहता है, जिसकी शाखा पर धातुक के समान विष्णु तीनों लोक अपने में स्थापित करके आश्रय लेते हैं ।

सौधस्कन्धतलानि दीपपटलैः कम्पेन पाण्डुध्वजा

हंताः पक्षविघ्ननेन मृदुना निवान्तगादेन च ॥

लहयन्ते कुमुदानिपदपदस्तैस्सर्पिर्गन्धेन च

सुगन्धभीरपयोधिपूरसदृशे जाते शशाङ्कोदये ॥ ७ ॥

चन्द्रमा का उदय हुआ, चन्द्रमा की किरणें क्षीर की लहरियों के समान फैल गयीं । उस समय किसी पहचानना कठिन हो गया, कुछ का परिचय इस प्रकार प्रकाश के द्वारा अटारी की छतों का काँपने के कारण, पक्ष का, पंख पटपटाने से और कोमल निद्रात्याग के पश्चात् शब्द से हंस्तों का और भँरि के शब्द तथा फैलनेवाली गन्ध से कुमदों का परिचय उस समय होता था ।

कैलासामितमद्रिभिर्विन्दपभिः श्वेतातपासापितं

मृत्पङ्कजं दधीयितं जलनिधेदुग्धापितं वारिभिः

मुक्ता हारलतापितं प्रतातिभिः शङ्खापितं श्रीकसैः

श्वेतद्रोपतनापितं जनपदैर्जाते शशाङ्कोदये ॥ ८ ॥

सब पहाड़ कैलाश के समान होगये, पृक्ष श्वेतछा समान हो गये, कीचड़ वहाँ के समान मालूम पड़ने लगे, समुद्र जल दूध के समान हो गया, छताएँ मुक्ता के समान हो गयी, धीफल शङ्ख के समान हो गये और मनुष्य श्वेत रंग के मनुष्यों के समान हो गये, जब कि चन्द्रमा का उदय हुआ तब चन्द्रोदय से सब परन्तु श्वेत हो गयीं ।

दामोदर गुप्त ।

कश्मीर के राजा जयापीड़ के ये मन्त्री थे, इन्होंने कुट्टनी-मत नाम की एक पुस्तक लिखी है। कुट्टनीमत को कोई कोई शम्भलीमत भी कहते हैं। दोनों का अर्थ एक ही है। इस ग्रन्थ में कुट्टनियों के हृयकण्डों का वर्णन है। यद्यपि इस पुस्तक में थोड़ीलता अधिक है तथापि, यह शिक्षा-जनक है, इससे लाभ हो सकता है।

जयापीड़ यड़ेही पण्डित और पिछा प्रेमी राजा थे। इन्होंने उस समय के अच्छे-बुरे पण्डितों को अपने दरबार में खान दिया था। दामोदर गुप्त को अपना मन्त्री बनाया था। राजतरङ्गिणी में लिखा है

"तं दामोदरगुप्ताख्यं कुट्टनीमतकारिणम्,
कविं कविं कतिरिक्तं पुर्वं भीतविर्यं व्यथान् ।

दामोदर गुप्त ने इस ग्रन्थ को अतिरिक्त और कोई ग्रन्थ बनाया है कि नहीं इसका पता नहीं, यह ग्रन्थ भी काव्यमाला में अपूर्वाही छपा है। सुना जाता है कि काशी के किसी सन्धन के उद्योग से यह ग्रन्थ पूरा भी प्रकाशित हुआ है।

काव्य-प्रकाशकार मम्मटभट्ट ने कुट्टनीमत के श्लोक अपने काव्य प्रकाश में उद्धृत किया है, शेषेन्द्र ने भी कवि-कण्ठाभरण में दामोदर गुप्त के श्लोक उद्धृत किये हैं। महा-राज जयापीड़ का समय आठवीं सदी में माना जाता है। इन्होंने ७५१ से ७८६ तक कश्मीर का राज्य किया है, दामोदर गुप्त का भी यही समय मानना चाहिए।

भारोग्य विद्वत्ता समनमैती महानुले जन्म ।
स्वाधीनता च पुंसां महदैरवर्ण्य विनामर्थः ॥१॥

भारोग्य विद्वत्ता सञ्जन मंत्रो उत्तम गुल में उ-
स्थाधीनता ये मनुष्यों के लिए घन के बिना भी प-
देश्यर्प्य है ।

एकीभावं गतपांजलपयसोमिंशयेतमोषैव ।
व्यतिरेककृतौ शक्तिर्दसानां दुर्जनानां च ॥२॥

एक में मिले हुए दूध और जल को तथा मिश्रों के वि-
को मलग मलग कर देने में हंस और दुर्जन ये ही दोनों साम-
हैं । अर्थात् जिस प्रकार मिले हुए दूध और जल को ही
पृथक् पृथक् कर देते हैं उसी प्रकार मिले हुए मिश्रों के वि-
को दुर्जन मलग मलग कर देते हैं ।

अग्रापारव वनगां कुरुवारं दूर एव हिं कमली ॥
अममममालि गृणार्थमिति वदति दिवानिभां वाक्ता ॥३॥

कपूर दटा लां, नार भी दूर करो, कमलों से क्या होगा,
सलि, वमल की टटियां भी व्यर्थ हैं, इसी प्रकार वह दिनग-
बहनी है । पिरहिणी का अग्रस्था की तुगीरन वर्णन ।
निबिंन्ने निबिंन्ना मुदिने मुदिता गमाकुन्नामुलिते ॥
वनिविम्बगमा वाक्ता गीरुं के वनमीना ॥४॥

दुर्जा होने पर दुर्जा, प्रगत्र होने पर प्रगत्र, व्यापुष्ट
होने पर व्यापुष्ट, इस प्रकार प्रविशित के गगान रहो । हां
बोध करने पर बंधन भयमोति होना आदिके ।

वाक्तागिष्टागुक्तप्राप्तप्रगदाविरहमयोगा ॥
विनामुष्टि दूर का मुक्तद्वंद्व देव गारके वाक्ता ॥५॥

अमीष्ट सुरत के परिधम को सहनेवाली विपरीत संयोग करने वाली और चित्त का अनुवर्त्तन करनेवाली, भार्या पुण्यवान को ही प्राप्त होती है ।

कुमुदामोदो पवनः पिकवृत्तभृद्भसार्यंसितानि ।

इपमिति सामग्री पठिता दैवेन तद्विनाशाय ॥६॥

कुमुद की गन्धवाली हवा, पिक का गुंजार और भ्रमर का झंकार ये सब सामग्रियाँ भाग्य ने उसके नाश के लिए बनायी हैं ।

सं कथं न स्पृहणीयो विपयस्तैलक्षितम्वकिम्पासः ।

शान्तात्मनापि विहितं विश्वसृजा गौरवं यत्र ॥७॥

उसके नितम्ब की रचना विपयी मनुष्यों के लिए स्पृहणीय क्यों न होगी । जिसकी सुरता शान्तचित्त स्वयं प्राप्ता ने ही पदायी है ।

जीवन्नेव मृतोसौ यस्य जनो वीक्ष्य यदनमम्बोम्बम् ।

दृष्टुलभङ्गो दूरात्करोति निदेशमदृष्ट्या ॥८॥

यह मनुष्य जीता ही मृतक के समान है जिसको देख-कर लोग आपस में मुँह पिकका कर दूर से ही अंगुली बताते हैं ।

अपुनक्तदिरवीटकजनिताधररागभङ्गभवात् ।

कुक्कुट वाटक निकटे तुष्यन्त्यपि नारि मो विवति ॥९॥

उत्तम खीर के पीड़े से बनी हुई ओट की ललाई नष्ट हो जायगी, इस भय से पेशा प्याऊ के पास प्यासे खूने पर भी जल नहीं पीती है ।

अविश्वःश्रमकटितो दुर्लभयोपिषु वा विवः ।

अपस्तुरपकान्तः कामिवात्रेव मे राती ॥१०॥

वह ब्राह्मण युवा—जिसके लिए स्त्री दुर्लभ है, जो मूर्ख कठिन कामी है—वह कामी के रूप में मेरी अपमृत्यु ही भाग्य थी, जो टल गयी, एक वेदया रात की बात अपनी साधिन से कहती है ।

वयं द्वेः स्वास्तरणः पतिरनुकूलो मनोहरं सदनम् ।

नाहं वि लक्ष्मिंशमपि स्वरितप्रणचौरं सुरतरुम् ॥११॥

पलंग, उत्तम विछौना, अनुकूल पति, मनोहर घर ये सब यदि सुरत के लाखों हिस्से के भी बराबर नहीं है ।

एष विशेषः स्पष्टी यद्दं भ त्वत्प्रतापयद्दं भ ।

भङ्गुरति तेन दग्धं दग्धस्यानेन स्तेजो भूयः ॥१२॥

अग्नि और तुम्हारी प्रतापग्नि इनमें यही साफ साफ भेद है उस अग्नि से जलाया हुआ पुनः भङ्गुरित होता है, पर अग्नि के द्वारा जलाया हुआ कभी भङ्गुरित नहीं होता ।

इतो जाजिह्वितमर्पं सदनुक्तं तव गृहं स्वल्पा ।

तीक्ष्णपलेन कीर्तिर्भद्रासक्त्य गता कुक्षुभः ॥१३॥

ताप चाजिह्वित अर्ध देने हैं और उसमें अनुरक्त भी हैं वे आपका घर छोड़कर आगकी कीर्ति खोचापत्य पर देशाभी में चली गयी ।

ता घृष्वीमग्निलामिदमाश्रयं मया कृतम् ।

दीपि नयननन्दन परिहरति यदुग्रं यदंशुम् ॥१४॥

आपनन्दन, समृद्धों घृष्वी घूमते हुए मैंने यही आश्रय आप धन देने हैं पर उग्रता का दूर से ही स्वागत ।

‘इदमपरमदुत्तम’ युवतिसदस्त्रैर्विलुप्यमानस्य ।

‘वृद्धिर्भवति न हानिर्यत्तव सौभाग्यकोपस्य ॥१५॥

यह और भी आश्चर्य है कि आपके सौभाग्य खजाने को हजारों स्त्रियां लूटती हैं, तथापि उसकी वृद्धि ही होती है हानि नहीं ।

प्रकृतिलपोदेन कृता जघन्यवर्णस्य गौरवापत्तिः ।

‘जघनचपला पदायां स पिंगलस्ते कथं मुख्यः ॥१६॥

स्यमाय से लघु नीच वर्ण को आपने गौरव दिया, बड़ा पनाया, धारा को जघन चपला बनाने वाला पिंगल आपकी बराबरी कैसे कर सकता है ।

दिवाकर ।

इन्का पूरा नाम मातङ्ग दिवाकर है । मातङ्ग चाण्डाल जाति को कहते हैं । दिवाकर भी चाण्डाल जाति में उत्पन्न हुए थे । इस कारण लोग इन्हें मातङ्ग दिवाकर कहते हैं । राज-शेखर ने इनके विषय में लिखा है—

भद्रो प्रभाषो धान्देभ्या यन्मातङ्गदिवाकरः

भी हर्षस्याभवत्सम्पन्नः समो वाद्यमयूरयोः ।

सरस्वती का प्रभाव आश्चर्य है, उन्हीके प्रभाव के कारण मातङ्गदिवाकर भीहर्ष की समा का पण्डित हुआ और वाद्य तथा मयूर के समान उसे सम्मान मिला ।

दिवाकर ने कोई ग्रन्थ बनाया है कि नहीं, इसका पता नहीं। सुभाषित ग्रन्थों में इनके बनाये श्लोक उद्धृत हैं, यही

कुछ श्लोक चुन कर पाठकों की सेवा में अर्पित किये जाते हैं । ये श्लोक ही दियाकर की योग्यता बतलायेंगे, दियाकर किस प्रकार की कविता करते थे इसके विषय में इन कों से बढ़कर दूसरा प्रमाण नहीं ।

पातु वो मेदिनीशोलावालेन्दुचु तितस्करी ।
ईशा महावराहस्य पातकगृहदोषिका ॥ १ ॥

वालेन्दु के समान शोभनेवाली महावराह की ईश्वर आपकी रक्षा करे, जो पृथ्वी के लिए शोला है और पाताळ-रूपी घर की दोषिका ।

याते शर्म रजसि जातजलामिषेका
धीताम्बरा. स्फुरितपाण्डुपयोधरान्ताः ।
पत्सुः प्रजार्यमधुना तव पुष्पवत्यो

वांछन्ति संगममिमाः ककुभब्रतस्मः ॥ २ ॥

रज (धूलि या खी का मासिक) शान्त होगया, जब का अभिषेक होगया, (अम्बर) आकाश या यत्न, स्वच्छ हो गया, पीला पयोधर (स्तन या मेघ) प्रकाशित हुआ, ऐसी दशा में ये चारों दिशाएँ प्रजा के लिए (पुत्रोत्पत्ति के लिए या प्रजा के कल्याण के लिए, आप का संगम चाहती हैं, क्यों कि आप इनके पति हैं ।

किं वृत्तान्तैरपरगृहगतैः किंतु नाहं समर्थं

स्त्रुष्यंस्थानुं प्रकृतिमुत्तरो दाक्षिणात्यस्वभावः ।
गौदे गौदे विपणितु तथा चत्वरं पानगोप्यथा

मुन्मत्तौव अमतिभवतो बलमा हन्त कीर्तिः ॥ ३ ॥

दूसरे के घर की बातों से कोई मतलब नहीं, पर मैं धुप नहीं रद सकता, दक्षिण दासियों का स्वभाव ही अधिक

गोलने का होता है, आप की प्यारी कीर्ति घर घर बाज़ार बाज़ार चौतरों पर और अट्टों पर उन्मत्त के समान घूम रही है ।

अतिःसरन्तीमपि गेहगर्भान्कीर्तिं परेषामसतीं वदन्ति ।

स्वैर चरन्तीमपि च त्रिलोक्यां स्वत्कीर्तिमाहुः कथयः सतीं तु ॥४॥

घर के बाहर न निकलनेवाली दूसरों की कीर्ति असती ही जाती है, पर आपकी कीर्ति इच्छा पूर्वक त्रिलोक में विचरण करती है और कवि लोग उसे सती कहते हैं ।

मासीघ्राय वितामही तथ मही माता ततोदन्तरं

संप्रत्येवहि साम्बुराशिरसना जाया जयोदुभूतये ।

इमे कर्षशास्ते भविष्यति पुनः सैवानकथा स्तुषा

मुक्तं नाम समस्तशास्त्रविदुषां लोकेधराणामिदम् ॥५॥

नाथ, यह पृथ्वी आप की वितामही थी पुनः माता हुई, इस समय यह जय के लिए समुद्र से घेरित आपकी स्त्री है, सौ कर्ष के बाद यही आप की पतोह होगी, सब शास्त्रों के जाननेवाले आप के समान लोकेधर के लिए क्या यह उचित है ।

धनञ्जय ।

ये जैन कवि हैं, इन्होंने द्विसन्धान नामक महाकाव्य लिखा है, द्विसन्धान को राघवपाण्डवीय भी कहते हैं । इसमें रामकथा और पाण्डवकथा दोनों एक साथ ही लिखी गयी हैं । इसके अतिरिक्त राघव पाण्डवीय नामक एक दूसरा भी काव्य है, जिसके कर्ता कविराज नाम के कवि हैं । धनञ्जय ने एक निघण्टु भी लिखा है । ये भुजराज के सभा-सद थे ।

सूक्तिमुक्तावली में राजशेखर का एक श्लोक लिखा जिसमें धनञ्जय की स्तुति की गयी है ।

द्विसन्धाने निपुणर्ना सतां चक्रं धनञ्जयः
यया जार्तं फलं तस्य सतां चक्रं धनञ्जयः

इनका समय नवीं सदी यतलाया जाता है, दशरूपक नाम के लक्षण ग्रन्थ के कर्ता भी धनञ्जय यतलाये जाते हैं, कुछ लोग कहते हैं कि ये धनञ्जय इस धनञ्जय से भिन्न हैं, पर जैन परम्परा से यह बात मालूम होती है कि दशरूपक के कर्ता भी ये ही, धनञ्जय हैं । इस प्रकार इन्होंने तीन ग्रन्थ बनाये हैं । १ द्विसन्धानमहाकाव्य, २ नियगुट्ट ३ इदशरूपक । इनके अतिरिक्त और कोई ग्रन्थ इन्होंने बनाये हैं कि नहीं इसका पता नहीं ।

इनकी माता का नाम श्रीदेवी, पिता का नाम धा और गुरु का नाम दशरथ था, यह बात इन्होंने अपने द्विसन्धानकाव्य के अन्त के एक श्लोक में इशारे यतलायी है ।

भय कदा नु वशा नु परामुता पुरमुपेत्य सदुर्जनकस्य वा ।
क्रियतः हृत्यपमाकुलमानसः प्रभुरवोक्त वीक्ष्य पयोनिधिम् ॥ १ ॥

राघव अपनी निवास नगरी में पहुँच कर सब स्त्रियों में श्रीष्ठ यह जनक की सुता कब हमारे वश में होगी इस प्रकार आकुल मन होकर और समुद्र को देखकर बोला (युधिष्ठिर पक्ष) युधिष्ठिर हस्तिनापुर पहुँचकर दुर्योधन की मृत्यु कब हमारे वश में होगी इस प्रकार आकुल मन होकर और समुद्र को देखकर बोले ।

अयमगाधगभीरगुरुशुभैरुपगतो नियतावधिरार्द्रताम्

यतिरिवासिष्ठसत्त्वहितमतो जलत्रिधिः सकलैरवलोक्यताम् ॥ २ ॥

यह समुद्र अगाध, गम्भीर और विशाल है। यह अपने गुणों के कारण आर्द्र है। इसकी सीमा निश्चित नहीं है। यह समस्त प्राणियों का हित करता है। यह यति के समान मादृम होता है। यति का गाम्भीर्य अगाध है, यह सबका गुरु है। यह ब्यालु है, गुणों के द्वारा उसकी मर्यादा निश्चित है। उसको सब लोग देखें।

असुरो मुक्तो स्थितिमुक्ताममुक्तो मुक्तो महतो बहव

वरचितै रचितैर्मणिराशिभिः स्वरुचिरचितैरवमान्यम् ॥ ३ ॥

हरन के अयोग्य उन्नत, सत्पुरुषों और प्राणियों की स्थिति को हयमाय से धारण करने वाला, यह समुद्र ऊँचे सजाये हुए दीप्तिमान और राजाओं के योग्य मणि समूहों से अपनी स्वाभाविक शोभा धारण करता है।

अनिघ्नेन रसातलवासिना विगलितो निविडं बड्धाम्नि ।

इह मुहुः शक्तीपरिलङ्घयति करा कथतीव सतिरतिः ॥ ४ ॥

रसातलवासी अविनश्वर बड्धाम्नि के द्वारा यह समुद्र पिघलाया गया है और यह खुराया जाता है, यह घात बीच बीच में मछलियों के कूदने से मादृम होती है।

बहोलाः सपदि समुद्रपृष्ठा मरुद्भिर्गन्धुषा इव करिषादसो विभान्ति

भौर्वाग्निग्वलनशिखाकलापशङ्का मेतस्मिन्विद्यति पद्म रागभासाः ॥ ५ ॥

घायु के द्वारा उठायी गयी तरंगों जल हस्तियों के कुल्हा के समान मादृम पड़ती हैं इसमें कमल की लालिमा बड्धानल अग्नि की ज्वालाओं की भ्रान्ति पैदा करती है।

भान्तेतस्मिन्मणिकुण्डलामोणस्तस्याख्याद्विहृततरङ्गामोणा ।
 श्रीदास्यानैरुधिरमही तामूचैरु द्रान्तावां मुधिरमहीनामुचैः ॥ १८ ॥

इस प्रदेश में रुधिर पृथ्वी के बहुत दिनों तक उगले हुए सपों की मणि के द्वारा रंजित दृष्टी हुई लहरियां बहू शोभती हैं ।

अपातुं जलमिदमिन्द्रनीलजालम्यात्रेन न्यवतरतीव मेघजालम् ।
 वक्षोभिः करीमकरैरिभिश्चमम्भो यात्युद्यन्मलिरुचिषाक्रवापभावाद ॥ १९ ॥

ये मेघों की पंक्तियां इन्द्रनीलमणि के व्याज से जल पीने के लिए उतरी हुईं सो मालूम पड़ती हैं । हाथी और मगर के वक्षस्थल से टूटा हुआ और मणि की शोभा को प्रकाशित करने वाला जल इन्द्रधनुष के समान मालूम पड़ता है ।

पूतान्मवालविटपान्स्वतटीभिरुद्वारुदाभिपिबति हतैरुदधिस्तङ्गैः ।
 रङ्गैरिहामुकरिणो निकटे यसन्तं सन्तं न सत्त्वसहिता इवधोरपन्ति ॥ २० ॥

समुद्र अपने तटों से लाये गये और अपने तटों पर (शृंखला) उत्पन्न हुए इन मृगों के घृक्षोंको जल हस्ती के गमन से आहत तरंगों के द्वारा मानों सींच रहा है । समर्थ बालू मनुष्य पास रहने वालों का निरादर नहीं करते ।

अध्यासीता निधला निस्तारङ्गानेतानेताभीलनीलान्प्रदेशान् ।
 भीलाभायां शङ्कया किं बलका न्ते शङ्कानां पट्टयस्ता विभान्ति ॥ २१ ॥

ये शङ्खों की पंक्तियां नहीं मालूम होती हैं, किन्तु ईतरंग रहित नीले प्रदेश में नील आकाश की शङ्का से ही हुई निधल घलाफा (घक पंक्ति) मालूम होती है ।

गोक्षुग्राहत इवायमेकतो वति'की भिरिव वति'तोऽन्यतः ।

मेघविभ्रम इवाभ्युधिः कचित्संकुलः स कुलपर्वतैरिव ॥ १० ॥

यह समुद्र एक ओर गौ के खुर से आहत के समान मालूम होता है दूसरी ओर चित्र लेखिकाओं के द्वारा चित्रित मालूम होता है, कहीं मेघों के उत्पन्न होने का सन्देह होता है और कहीं कुल पर्वतों से सदाचा हुआ मालूम पड़ता है ।

ह्युक्तानामुदधिमद्वस्वस्तुन्या नुक्तवैतरिमघनुगुणभारत्यागः ।

स्थाने स्थाने भवित कवीनां कुर्वन्पुनर्यै तस्मिन्ननुगुणभारत्यागः ॥११॥

समुद्र के महत्त्व की स्तुति में युक्ति पूर्वक उद्यत हुए कवियों की उक्ति में स्थान स्थान पर दोष हो जाते हैं । ये दोष शास्त्रीय ज्ञान के भार के त्याग से होते हैं ।

इ' मर्षादामेघ जलात्मा परिवारो लोलो भिन्नादिभ्युपपरयन्निव कूलम् ।

न्या गावावृत्ति मुद्वान्भजतेऽर्थ न प्रत्येति स्वाभ्यनुवर्मे प्रतिकूलम् ॥१२॥

यह जड़ा (ला) त्मा समुद्र घंचल है, कहीं मर्षादा को तोड़ म दे यह देखने के छिर बार बार तीर पर जाता है और लौट जाता है । प्रतिकूल चलने वाले अनुचर का विश्वास स्वामी नहीं करता ।

वेगोऽन्येति प्रतिदिशमापूर्णा-
ना-

मालोकान्त' दिमकर विध्वस्तानाम् ।

वैलौकिकान् प्रतिदिशमस्मिन्नेग

मालोकान्त' दिमकरविध्वस्तानाम् ॥ १३ ॥

प्रत्येक दिशा में फैली हुई, चन्द्रमा के लिए कँफ़ी गयी और मगरों के द्वारा तोड़ी गयी इन तरंगों का वेग प्रत्येक रात्रि में सूर्योदय तक आँखों से दिखायी नहीं पड़ता ।

पद्मगुप्त ।

महाकवि परिमल का दूसरा नाम पद्मगुप्त था। कौं
 इनको अभिनव कालिदास भी कहते हैं। इनके पिता का नाम
 मृगाङ्कुदस्त था, ये धारा नगरी के महाराज भोजराज के चाचा
 याकूपति राजदेव के सभापण्डित थे। याकूपति राजदेव की
 मृत्यु के पश्चात् जय भोजराज के पिता सिन्धुराज धारा नगरी
 के राजा हुए, तब ये उनके साथ रहने लगे। सिन्धुराज का
 दूसरा नाम कुमारनारायण था और "नयसाहसार्द्र" इनका
 उपाधि थी। महाकवि परिमल ने इन्हीं अपने भाष्यदाता
 महाराज के नाम से नयसाहसार्द्र चरित नाम का एक काव्य
 बनाया है, जिसमें उन्होंने का वर्णन है। नयसाहसार्द्र चरित
 पढ़ने वाले जानते हैं कि ये कितने सरस और स्वाभाविक
 कवि थे। ये ११ वीं सदी में उत्पन्न हुए थे। संभव है
 में इनके कई श्लोक ऐसे पाये जाते हैं जो नयसाहसार्द्र चरित
 में नहीं हैं। इससे अनुमान किया जाता है कि नयसाहसार्द्र
 चरित के अनिर्दिष्ट और भी कोई काव्य इन्होंने बनाया।
 पर आज केवल नयसाहसार्द्र चरित ही पाया जा
 नयसाहसार्द्र चरित के चौथे सर्ग से कतिपय श्लोक के
 उद्धृत किये जाते हैं।

वनः स खेतरपञ्चनीनतिदुंधे शशिप्रभाकोचमहोत्सावस्त्वान्,
 स्त्रीपुराणागुदधेनसोदरे नचोदुगता विनुमकन्दनीमिव ॥१॥

तदनन्तर राजा ने अपने बिल में शशिप्रभा को देखने
 इच्छा की, शशिप्रभा को देखना राजा के लिए एक महंगा
 था। जिस प्रकार समुद्र धारण तीर पर नहीं निकली हुई मूर्ति

ने कन्दली के लिए स्पृहा करता है। वह कन्दली अनुराग की अथवा लाल रङ्ग की होती है।

शशिप्रभाशा नलिनी मृणालतामुपागते मौक्तिकदासि सादरः
तदागते दूत इव न्यवेशयत्सदृशितप्रेमलये विलोचने ॥२॥

राजा की आशा शशिप्रभा पर लगी थी, उस आशारूपी मिलिनी का मृणाल बनकर वह मोतियों का हार राजा को मिला था, राजा उसको बड़े आदर से देखता था, राजा सफ़ी ओर प्रेमपूर्ण आँखों से देखता था, मानो वह अपनी गया के यहां से आये दूत को देख रहा हो।

पुनः पुनः पश्यद्दराजिमेवका तदिन्द्रनीलाक्षरपङ्क्तिर्मैक्षत ।

स तन्मृणान्मन्मथजातवेदस्तनीयसी भूमलतामिवोद्वगताम् ॥ ३ ॥

वह बार बार नीलम की अक्षरपङ्क्तिको—जो भ्रमर के मान फाली थी, देखने लगा, मानो वह कामदेयरूपी अग्नि पतली धूम की रेखा निकली हो।

मुग्धमिहाराधनुलेपनं करे समुन्मिषास्वेदन्ने विलुम्पति ।

भसंगताया भविर्दीर्घचक्षुषः पयोधरस्पर्शमिवासत्ताद सः ॥ ४ ॥

राजा वह हार अपने हाथ में लिये हुए था, उसके हाथ पसीना लगने से हार का अनुलेपन राजा के हाथ में गता था। यद्यपि बड़ी आँखवाली शशिप्रभा राजा के पास ही थी। तथापि राजा को उसके पयोधरस्पर्श के समान मन्द मिला।

तदीयनामाङ्गुलिर्षि शनैः शनैः सलीलमावर्तयितुं प्रचक्रमे ।

परिस्फुरत्पल्लवपाटलाघतो रहस्यविद्यामिव मन्मथस्य सः ॥ ५ ॥

उसके नाम के अक्षर बड़े प्रेम से राजा धीरे धीरे मन ही मन उच्चारण करने लगा । राजा के पलक के समान ठाठ भोग उस समय फरक रहे थे । मानो राजा कामदेव के रहस्य विद्या का जप कर रहा हो ।

अनेकस्मात्तिष्ठन्प्रगल्भया मुनीश्वर्या वर्तिक्येव चिन्तया ।
स तामनाहं हृदयमन्त्रां पुरा लिलेख वित्तं मुहुरन्यथान्यथा ॥ १ ॥

चिन्ता चित्र बनाने की एक कलम है, यह अनेक प्रकार के चित्र बनाने में यही चतुर है । उसी चिन्ताकरी कलम से भरने हृदय में बिना देखी और बिना परिचय पायी हुई उस स्त्री का राजा ने अनेक प्रकार के चित्र बनाये ।

अबहुषणानवतलकोत्पन्ना शशिप्रभाविभ्रमदर्शनमपि ।
हृदोर्भुजमुक्ता वगन्तरे विलासिनस्वरूप च कैवल्य च ॥ २ ॥

कामदेव के प्रचण्ड भातर से तपे हुए उस विलासी राजा को इन में शशिप्रभा को देखने की यही उत्कण्ठा हुई । जैसे कुमुदिषी को सूर्य के भातर से तपने पर अल में शशिप्रभा— यन्मया के प्रकारा— को देखने की उत्कण्ठा होती है ।

इन्द्रदिवारयः पद्मदरिद्रा सरशिदेव स्फुरता च बाहुना ।
स्त्रिभुवनं कलङ्गि दुर्लभमनुर्लभानिन्नुमुत्तीममन्वत ॥ ३ ॥

इसी समस्त राजा का दक्षिण्याहु करका, जो विशाल शिखा के समान सुन्दर था । इस बाहु के फरकने से राजा को आनन्द और भी बढ़ा हुआ । जो इन्दुमुत्ती मन से भी दुर्लभ है उसे राजा ने अनुलभ सम्भवा ।

॥ श्रीशिवकवये बहुचरा कृतस्वनाकदुमकावनोंदरे ।
विल्लित्ती पद्मदमप्ये शशिनाः कटाक्षित ॥ ४ ॥

राजा ने अपने सामने आगे की ओर तमाल वन में दृष्टि डाली, उसी वन में उन्होंने एक स्त्री को देखा, जो मेघ में चन्द्रमा की कला के समान शोभित होती थी ।

विमलपूष्पांलकभक्तिकुर्वन्तीविहीर्णभूङ्गामणिचन्द्रिकं शिरः ।

अथानुभावेन निदेशितेव सा नवाम मानिन्यवशा विशम्पदिम् ॥१०॥

उसने राजा के प्रभाव की आह्ला से परवश होकर राजा को प्रणाम किया । उसने अपने जिसरे हुए बालों को पहले ढीक किया, उसके मस्तक पर चूङ्गामणि की शोभा फैल रही थी, ऐसी उस स्त्री ने राजा को प्रणाम किया ।

भूषामेन्द्रेण निदेशिते स्वयं शिलातले नातिविदूरवर्तिनि ।

अथविशस्या रशनामणित्विषा निविध्यमानेऽमरचापशोभिनि ॥ ११ ॥

राजा ने आँखों से इशारे से अपने पासवाली एक शिला पतला दी, उसी पर वह बैठ गयी, उसकी करघनी की मणियाँ की छाया पड़ने से वह शिला इन्द्रधनु के समान हो गयी थी ।

तयानिदीर्घदशानुपातिभिर्विरुण्णमाशामिष भूषणाश्रुभिः ।

इति शित्तोर्दोद्धतवर्त्मदीपिकामुदीरयामास गिरं रमाङ्गदः ॥ १२ ॥

राजा के इङ्गित पाकर रमाङ्गद ने कहा, रमाङ्गद के घं पचन मानो उस स्त्री के भूषणों की प्रभा से रींचे गये हों, क्योंकि वह भूषणप्रभा रमाङ्गद के दाँतों की प्रभा से मिल गयी थी ।

अनेन विम्व्याश्रिपिहारजन्मना भ्रमेण काम भवती रुद्धिंता ।

मधूप्रह्लादिमुखानिलोष्मणा जटाविरङ्गेन्दुकलेव शृङ्गिन ॥ १३ ॥

इस विन्ध्य पर्यंत में भ्रमण करने के कारण आप बहुत एक गयी हैं, जिस प्रकार शिव के मस्तक पर सोये हुए सूर्य की गर्म धाप से चन्द्रमा की कला मुरझा जाती है ।

अमी सरोजप्रतिमे मुग्धे मुहुस्तवातशाताम्रकपोलमितिनि ।
समुन्मिषन्तिप्रम वातिविन्दो नताङ्घ्रि लाघवमुधालया इव

हे कामलाङ्घ्रि ! तुम्हारा यह कमल के समान मुख
लगाने से लाल हो गया है, इसपर पसीने के बूँद अमृत वि
के समान मालूम होने हैं ।

इतोऽवत'सोत्पललाटपदेशिके निरन्तरं गन्धयहे वहस्यपि ।
न पूर्णते स्विन्नललाटसङ्गिना तवालकथं पिरियं मनागपि ॥१५॥

इधर तुम्हारे कर्णफूलों को नाचना सिलाने वाला बापु
यह रहा है, पर पसीने के साथ तुम्हारे ललाट पर सड़े हुए
तुम्हारे घाल कुछ भी चञ्चल नहीं होते ।

अनेन पीनस्तनकम्पादापिना निराप तेनोद्भूता कदुष्णताम् ।
अथ प्रकालादपि पाटलञ्च विनन्दयते निश्चितेनतेऽधरः ॥१६॥

यह तुम्हारे पीनस्तन को कंपाने वाली और लम्बी गरम
गरम सांस निकल रही है, इस सांस से मूँह से भी लाल
तुम्हारा यह ओष्ठ क्या कष्ट नहीं पाता ?

अविन्यपंकया भ्रमचारि विप्रया निरन्तराभ्यासित रत्नपात्रया ।
तत्रैव कण्ठः कुटजावदातया विलासमुच्छालतयेव भूष्यते ॥१७॥

पसीने के बूँदों की पंक्तियाँ जो रत्ना के समान लगातार
उदित हुई हैं, मालूम होता है कि कुटज पुष्प के समान स्वच्छ
मोतियों की माला है और उस माला से तुम्हारा यह कण्ठ
भूषित हो रहा है ।

इदं महचित्रं ममानुर्थं न्वया विगाथते यद्वन मद्वितीयया ।
इमा कः न्धियस्वमुवाति दुर्गमाः क राजवेश्याभरणं भवाङ्गुली ॥१८॥

यह तो और आश्चर्य की बात है कि इस मनुष्यहीन यन में तुम अकेली यात्रा कर रही हो, कहां ये विन्ध्याचल के दुर्गम प्रदेश और राजमहलों के आभरण कहां तुम ।

नबोदुगताशोऽपलाशकान्तिना निकामनिर्यस्यचन्द्रिकेण च ।

विपार्षि कस्येदमनेन पाणिना वदावभूतेन्दुमतीचि चामरम् ॥१९॥

मये अगोफ पल्लव के समान और जिसके नखों से प्रकाश फैल रहा है उस हाथ से चन्द्रमा की किरणों को भी मोछा दिवाने वाला यह किसका चामर धारण करती हो कहो ।

• वृषस्य कक्ष्यापि परिष्कृताङ्गना वदित्वमुर्ध्वविभवो हि कोपि सा ।

मरुत्पतिमे'नकृषेयं तन्नि वसवयापि बालम्यजनेन वीर्यते ॥ २० ॥

यदि तुम किसी राजा की परिचारिका हो तो वह ससृद्धिमान कौन है, जो मेनका द्वारा इन्द्र के समान तुम्हारे द्वारा चमर से पोषित होता है ।

अपरिभ्रमत्वा परस्परसि प्रिया कयापि कासी जगदेकमुन्दरी ।

नवभ्रुपरताः स्मरत्वाप वयसो त्रिषेवतां यानि भवद्विषा अपि ॥२१॥

यदि तुम किसी स्त्री के अधीन हो तो बतलाओ सर्वधेष्ट सुन्दरी यह कौन है ? जिसको आभाकारिणी कामदेव के पनुपकृत तुम्हारी समान स्त्रियाँ हैं ।

परस्परस्पर्धिविलाससम्पदा भव्यं भवत्स्वामितया वि कल्पते ।

• मरुन्वतो वा समशी रमापवा कलत्रमर्द्धेन्दुविभूषणस्य वा ॥२२॥

इन्हीं तीनों की परस्पर में विलास संपत्ति की स्पर्धा हो सकती है और इन्हीं तीनों में एक तुम्हारी स्वामी भी हो सकता है, इन्द्र की स्त्री अथवा सरमो या महादेव की स्त्री ।

इदं स्त्रीकर्मणात्प्रकन्दरे मनीष ते शैशवि कार्यगौरवम् ।

अथ ह्युक्तः कर्तारुक्तिरप्यथा चरन्व्याख्ये द्विषधीर्नान्यतः ॥ ११

एन पण की कन्दराओं में तुम्हारा घमना कितां बड़े भारी
दुःख काटें को सूचित करता है, नहीं तो तुम्हारी समान नीति,
बुराही क्या हिंस्र जन्तुओं से पूर्ण घन में भ्रमण कर
सकते हैं ।

अनेन घेनम्मादन्तिना यद् स्वमागता यण्डि कुतो दुःखता ।

विशेष विधेयविवादमावयोः स्वकार्यनिष्ठं कथय क यात्यमि ॥ ११॥

इस मार्ग में मतपालें हाथी कीड़ा करते हैं, यहां इस
दुःख मार्ग से तुम कैसे आयी और हम लोग में वियोगरूपी
विषाद उत्पन्न कर के अपने कार्य के लिए कहां आओगी ।

... इति साभिहित्वा मृगापताक्षी समुद्रोदप्रणयं यशोभटेन ।

संज्ञा न जगाद सज्जया नु धनतः किन्तु मृगस्तु तामरोचद ॥ १२॥

यह प्रेमपूर्णक रमाङ्गद ने उस स्त्री से ये बातें कहीं पर
उसने सहसा कुछ उत्तर नहीं दिया, न मालूम लज्जा के कारण
या भ्रम के कारण । पर राजा उससे बोले ।

अन्तासि कौमुद्यतेन कश्चित्ता सि प्रनैरनेन विहितो न तयोपशाः ।

आतिथ्यमेव कुरुते परमहृल्लेखासंवादनैकचतुरो निचुलानिलम्बे ॥ १२

तुम थक गई हो, कौतुक से यही दूर आनेके कारण में
कुल होगई हो, इन प्रश्नों से तुम्हारा स्वागत नहीं हम
शरीर की थकावट दूर करनेवाला यह निचुल का धा

... है ।

मुधारसीकनिष्पन्दिना कथिवधूरय सा हसन्ती ।

दिनोपतहा धीवहमा नरपतेर्जयसा वधूव ॥

स्वभावमधुर सुधारसनिख्यन्दी राजा के बचनों से यह नागवधू हंसने लगी और उसकी धकायट दूर होगयी, जैसे सूर्य की किरणों से तपी हुई कुमुदिनी चन्द्रकिरणों से पिल जाती है ।

पण्डित पाजक ।

सुभाषित ग्रन्थों में इनके श्लोक पाये जाते हैं, ये सरस और सुन्दर हैं, उनसे इनके शिष्यमक्त होने का पता लगता है । इसके अतिरिक्त इनके विषय में कुछ मालूम नहीं ।

कथं स वन्तरहितः सूर्यः सूरिमिदम्बतः ।

यो मीनराशिं मुहूर्त्तैव मेघं भोग्नुं समुद्यतः ॥१॥

पण्डित लोग सूर्य को वन्तरहीन क्यों कहते हैं जो सूर्य मीनराशि को भोग कर मेघ का भोग करने के लिये उद्यत हुआ है ।

क कीदृति चरति क करोति वृत्तिं वारि क नाम विवतिस्वपिति क नाम ।
इत्थं मृगं निरपराधमवाधमानं व्याधीनु धावति वधाप धनुर्दधानः ॥२॥

कहाँ कीड़ा चरता है, कहाँ चरता है, कहाँ अपना जीव बिताता है कहाँ जल पीता है कहाँ सोता है । इस प्रकार निरपराध किसी को पीड़ा न देनेवाले मृग को मारने के लिये धनुष लेकर व्याध दीड़ता फिरता है ।

अग्निः सुधांशुरयमत्रिसुतो दिनेशः पुण्वैरवापि शरणाय भवेतिवोषम् ।
सुगन्धैरशाव भज मा त्यज पापमेनं मीनं प्रमुज्य सहसा वृत्तमेवभोगम् ॥३॥

यह चन्द्रमा है, यह सुधांशु है, यह द्विजराज है, यह महर्षि का पुत्र है, बड़े पुण्यों से मैंने इसे शरण के लिए है, हें मूर्ख हरिण बालक, यह प्रसन्नता छोड़ो यह पापी छोड़ दो, क्यों कि इसने मीन का भोग कर शीघ्र ही मेरी भी भोग किया है ।

हेमकर सुधिये नमोस्तुते तुस्तरेषु यद्वराः परीक्षितम् ।
काञ्चनामरयमरमना समं परायैतदधिरोष्यते तुलाम् ॥ ४ ॥

हे बुद्धिमान सुवर्णकार तुमको नमस्कार, तुम परी करने के लिए सोने के भूषणों का पत्थर के साथ तुला घटाते हो ।

वृत्त एव स परोन्मूल्य यस्त्वत्प्रसादेमपनेतुमक्षमः ।

सुश्रितं त्वधमचेहितं त्वया तन्मुलान्मुकुटशिकाः प्रतीक्षता ॥ ५ ॥

हे मन्थकूप ! यह घड़ा तो हो ही चुका जो तुम्हारे प्रसाद का बदला नहीं चुका सकता, पर तुमने तो अधम हाथों को समाप्त ही कर दिया, जो तुम उस घड़े के मुँह के किन्हीं की इच्छा रखते हो ।

शतपदी सति पादशते क्षमा यदि न गोप्यदमप्यतिवर्तिनम् ।

किमिष्या द्विपदस्य हनुमनो बलधिविश्रमणे विवशमहे ॥ ६ ॥

सौ पैरों के होने पर भी शतपदी इस (नाम का कीड़ा) यदि गोप्यद को भी नहीं टांक सकता, तो हम भी को दों पैर वाले हनुमान के समुद्र टांक जाने के विषय विषाद नहीं करना चाहिए ।

न तुस्तेरप्यतिप्रहशीयता न च महागुणैर्महत्पादाः ।

अवशिष्टानकपादि न मार्गानि किमिह तुस्तेरप्यतिप्रहशीयता ॥ ७ ॥

हे व्याधतनय, बड़े वंश (वांस या कुल) के ग्रहण करने की प्रयोजनता नहीं, बड़े गुणों (धनुष की रस्सी या गुण) के संग्रह करने का आदर भी नहीं है और बाण में फलर (बाण के अग्रभाग में लगी लोहे की फील या फल) लगाने की तो बात ही क्या, फिर इस गृह में क्या है ?

तृणमणेर्मनुजस्य च तद्वतः किमुमपेर्विपुलाशयतोऽप्यते ।

तनु तृणाग्रलवावयवैर्यथोरथसिते ग्रहणप्रतिपादने ॥८॥

तृणमणि और उसके समान मनुष्यों के विशाल हृदय होने की बात क्या बही जाय, जिन दोनों का दान और ग्रहण तृण के सूक्ष्म अणुवणु के द्वारा समाप्त होता है। अर्थात् ये मनुष्य तृण-मणि के समान हैं जिनमें दान देने और ग्रहण करने की शक्ति नहीं।

भातः सुवर्णमयकृतारविशालकारवद्वर्णनासु सुवर्णकार ।

दूरी कुरुधम मिहाप्रसुवर्णपात्रे दुर्बलं योजयितु रस्ति महार्घलाभः ॥९॥

भाई सुवर्णकार ! सुवर्ण के उत्तम धलङ्कारों के बनाने का तथा पर्वीकारी आदि का काम करना छोड़ दो इसमें परिश्रम न करो, क्योंकि यहां तो उसी को लाभ होता है जो सुवर्ण-पात्र में दुर्बल (चाँदी या घुरा रंग) जोड़ता है। अर्थात् यह स्थान गुणियों के आदर का नहीं, यहां तो उसी गुणी का आदर होता है जो खुशामद करे।

निर्नाशपाम्बरसीम्नि सूर्यशशमृत्ताराः पदप्राप्तये

मेघो घोररर्कः पदप्रतिगमने दानं प्रवृत्तस्ततः ॥

पक्षात्तापवशादिवाशु तनुते सूर्य तद्दिशोऽपि

अत्र बालपलाक्या करुणा ताराः समं सर्वतः ॥ १०

आकाश में सूर्य चन्द्रमा और तारा इनका पद ग्रहण करने के लिए घोर हुट्टार करनेवाले मेघ ने इनका नाथ किया, जब इनका पद ग्रहण हो गया तब वह दान करने लगा, अर्थात् वृष्टि करने लगा, पुनः क्रोधवश उसने शीघ्रही विष्टु के प्रकाश से सूर्य बनाया, बंगलों के समूह से चन्द्रमा और करका—आकाश से गिरनेवाले पन्धरों द्वारा उन्होंने तारा बनाकर चारों ओर फैलाया ।

इन्द्रं तण्डुलस्यन्दमण्डलरुचिं नित्योद्दिनं जानु चि-

हृदये मेघपरदृष्टनगल दृदेहं विपत्तं विधिः ॥

भूतं लोकहितेष्टया किरति यत्नतर्पणं सर्वतः

शुभाशुभविशिष्टविष्टरुचिं भूमी तुषारं दिवः ॥ ११ ॥

चन्द्रमा गोलाकार चावल की राशि के समान है, वह प्रतिदिन उदय होता है, किसी अमावास्या के दिन ग्रहाने मेघरूपी आता में पीस कर उसे चूर चूर कर दिया, मालूम होता है लोक कल्याण की इच्छा से सबको सुख करने वाले उसी चूर्ण को ग्रहाना आकाश से तुषार के रूप में गिरा रहा है, जो हयच्छ आटे के समान है ।

राजस्यदृष्टपि ते बाहु कान्तालिकुमलालसी

तथापि समरे भेषु शक्ती हस्तिकवाटयोः ॥ १२ ॥

हे राजन् यद्यपि तुम्हारे बाहु खियों को मालिहून करने के लिए उत्कण्ठित रहते हैं, तथापि युद्ध में ये हाथों और फाटकों को तोड़ने में समर्थ हैं । “शक्ती हस्तिक वाटयोः” यह एक पान्तिनि का सूत्र है ।

अगम्यागमनाश्रयाः प्रावशितयिते जनः ॥

अगम्यं शक्यतो याति सर्वत्रैव च पावनम् ॥ १३ ॥

न जाने योग्य स्थानों में जाने से प्रायः मनुष्य पापी हो जाते हैं, उनके लिए प्रायश्चित्त करना आवश्यक होजाता है, पर तुम्हारा यश अगम्य है (वह दूसरों को नहीं मिल सकता) फिर भी यह पवित्र समझा जाता है और यह सर्वत्र शोभित हो रहा है ।

यशमस्तव सौख्यमहो विश्वयकारकम् ॥

आत्मवन्दुर्हता नीलमपशो विद्रिषामपि ॥ १४ ॥

तुम्हारे यश की सुजनता देख कर आश्चर्य होता है, क्योंकि शत्रुओं के फलङ्ग को भी उसने अपने समान शूल बना दिया है ।

गुणवशे समानेपि भेदोऽयं युवयोर्महान् ॥

अनुपमि गुणभेदमभिष्टेदगुणो भवान् ॥ १५ ॥

धनुष और आप दोनों ही गुणी हैं, (गुणवान् या रस्सी-वाला) गुणी होना दोनों का परावर है, पर धनुष का गुण (रस्सी) टूट जाता है और आप का गुण कभी नहीं टूटता ।

किं कौतु गुणैरने शरावगुरदीपवत् ॥

अनुशास्तरपर्वम् विनिवारितगोचरः ॥ १६ ॥

परां के सम्पुट में रखे हुए शीप के समान तुम्हारे वं गुण समूह क्या करें, क्योंकि पृथ्वी और आकाश के बीच में उनकी गति रोक दी गयी है, अर्थात् तुम्हारे गुण समस्त पृथिवी में फैले हैं ।

सिद्धिदिग्दृष्टालङ्कारः कृतव्योपि वाच्यनिः ॥

वाच्यवचनीति भवता औपमोचते ॥ १७ ॥

पाणिनि सन्धि विग्रह और काठ (व्यास सन्धि, समास आदि का विग्रह, धर्मान आदि जानते हैं और आप भी इनको (सुलभ, और विरोधक जानते हैं । पाणिनि ने कृत्यप्रत्यय किया है और आप कृत्यहैं, पर पाणिनि प्रत्यय को प्रकृति से परे करते हैं । प्रत्ययकारी (दूसरे का विश्वास करनेवाले) नहीं हैं आपसे उनको तुलना नहीं हो सकती ।

उपसर्गाः क्रियायोगे पाणिनेरिति सम्मतम् ॥

निष्क्रियोपि तद्वारातिः सोपसर्गः सदा कथम् ॥ १८ ॥

पाणिनि कहते हैं कि क्रिया (व्याकरण की क्रिया प्रोग में उपसर्ग होते हैं (अव्यय विशेष) पर तुम्हारे निष्क्रिय हैं, राज्यच्युत होने से उन्हें कोई काम नहीं, भी उन्हें सदा उपसर्ग (उपद्रव) लगे रहते हैं ।

तव शत्रुर्नर्वाञ्छेत् द्वयं व्याकरणापत्ते ॥

स निपातोपसर्गाभ्यां त्वं गुणायामवृद्धिभिः ॥ १९ ॥

आपके शत्रु और आप दोनों ही व्याकरण के समान । आपके शत्रु तो निपात और उपसर्ग से (नाश और उपद्रव) और आप आगम और वृद्धि से (आय और उन्नति से) घेरे हैं । निपात उपसर्ग आगम और वृद्धि ये व्याकरण के परिष्कारिक शब्द हैं ।

असन्धविप्रणीतानां श्लोकानामिव ते द्विपाम् ॥

क्रियायसंघिवृत्तीनां निपाताः स्युः पदे पदे ॥ २० ॥

कुफ़ल के घनाये श्लोकों के समान तुम्हारे शत्रुओं का जनक के अर्थ (धन या शब्दार्थ) सन्धि (व्याकरण की सन्धि

या सुलह) और धृति में (जीविका या स्वयम्) कठिनता
 उत्पन्न हो गयी है उनका प्रत्येक पद में निपात हो (नाश
 ग च धि आदि निपात)

पदसिद्धिः सद्ददानीति नैतच्छिप्रमप्यम्बुदम् ॥

अथ स्वप्नोपि ते नास्ति दन्तद्विद्विषां कथम् ॥२१॥

जो तुम्हारे पास है उसका दान करते हों इसमें कोई
 माध्यम नहीं, पर अथ तो तुम्हारे पास स्वप्न में भी नहीं है,
 फिर तुमने शत्रुओं को अथ कैसे दिया ।

भक्तलङ्घो हृदः शुद्धः परिपारी गुणान्वितः ॥

सईशो हृदयमहो गङ्गाः सुगङ्गास्तप ॥२२॥

भक्तलङ्घ हृद शुद्ध परिपारी (स्वप्नर्नोवाला या ध्यान
 वाला) गुण युक्त शुद्ध घंश में उत्पन्न हृदय ग्रहण करनेवाले
 तरंग तुम्हारे समान हैं ।

प्रायेण सर्वे परपन्नि विपरीत विनयताः ।

अथ काष्ठागतीतेषु कालेषु विद्विषाम् ॥२३॥

प्रायः गष्ट होनेवाले, सभी परपन्नों को विपरीत ही देखा
 करते हैं, गुण सुवर्ण के समान गौरवपूर्ण हैं, पर शत्रु तुमको
 काला काल, या शत्रु ही समझते हैं ।

अथ सद्द दिदृक्षतां बुतः कुशलता बुते ॥

शस्तेति निपत्ता तेषां वने कुशलता बुते ॥२४॥

तुम्हारे साथ निगोष्ठ करनेवालों के बुल में कुशलता
 कैसे, कुशलता से बिरे वन में ही उनका निधित पास
 होता है ।

विशेषाण्य शब्दो जाय सौम्यदर्शनम् ॥

विशेषाण्यशब्दो सर्वाङ्गो यः शब्दो ॥२५॥

शत्रुओं में तुम्हारा विरोध होने पर भी दूरे
उपनि दूर, क्योंकि तुम्हारे शत्रु गुप्त में भाग नष्ट होने से
सर्वांग शून्य हो जाना है । सोल दंगन पराधीन को क्षम
मानता है और पाता पदार्थों की मत्ता स्वीकार नहीं कर

रुद्धमीपट्टकमट्टिनाः परिमिरमानमण्डपिण्डीमुखो
गर्भप्रन्थिविर्मगुलैरप्यर्चने पण्डित्यामृतः ।
पूते कीदृश ईश्वराः कुपतयः किं वनापाचयं
कत्रैलोग्य विलक्षणः कद्रुतः मत्त्व म प्येश्वरः ॥२१॥

जिनकी लक्ष्मी पट्ट (पाप) से कलङ्कित है, जो धाँसे
नियमित पृथिवी के टुकड़े का भाग करनेवाले हैं, गर्भ की
गाँठों से जिनके अंग ऊबड़खाबड़ हो गये हैं और जो गहने
आदि वेश धारण करनेवाले हैं वे कैसे ईश्वर हैं, वे कुपति
पृथिवीपति या कुस्वामी हैं । अथवा इस चर्चा से लाभ क
जो भिलोक से विलक्षण है, वह हम पर प्रसन्न रहे, यही ई
है, यह बात सत्य है ।

वाराणस्यामसीवाराणीवाराशनमुत्थितेः ।
नवाराशनिरुपणस्य वारा स्नानस्य बान्धु मे ॥२०॥

मेरे ये दिन वाराणसी में बीते, केवल तेनी के चावलों से
मैं सुख बना रहा । नये वाग में मेरा निवास हो और स्नान
के द्वारा मेरे दिन बीते ।

स्वन्ननवमतेर्निःमृत्याराष्ट्रेन बलेनवा
लघु विरचयान् गह भूमेस्तलेन दलेन वा ।
विदधदतुल प्रायत्रार्ण फलेन जलेन वा
यनमुवि कदास्यां भून्वीह मलेन खलेन वा ॥२८॥

उल या गल से अपने मङ्गलों के साथ से निकल कर पृथिवी के तल से दल (पर्वो) से एक छोटा घर बनाकर फल से या जल से प्राणरक्षा करना हुआ यन में मैं फल मल से या गल से शुभ्य होऊँगा ।

इत्यारम्भपर वरापुत्रद्विती पाण्योः परं देव्यौ

पुण्यौ पात्रविषादपाटनपट्टं गृध्रौ प्रपर्षा प्रधाम् ।

प्रायः पर्वतपुत्रिकागृध्रपदैः वसुधेपुरा धृतिरौ

पादौ पण्डित पात्रकः पशुपतोः प्रीत्या पुरः वसुधुः ॥१५॥

जो पूजा के लिए अर्पित कमलसमूह से पुलकित हुए हैं जिनके दोनों पाशु पदै ही कोमल हैं, जो पण्डित हैं पापियों के पाप दूर करने में समर्थ हैं, जिन्होंने पृथ्वी में प्रसिद्धि पायी है और जो पहले पार्यती के पश्य द्वारा पूजित हैं, पशु-पति के उन पादों का पात्रकपण्डित प्रीतिपूर्वक अपने आगे देखें । —

पाणिनि ।

ये प्रसिद्ध वैयाकरण हैं । आजकल पाणिनीय व्याकरण का ही यदां पटन पाटन होता है । पञ्जाब के पेशावर के पास शालातुर नामक एक गाँव के ये रहनेवाले थे । आज इस शालातुर गाँव का नाम लाहौर है । पञ्जाब की राजधानी लाहौर से यह सिध लाहौर है । इनके पिता का नाम दासी था ।

अथवा पाणिनि का जन्म पञ्जाब में हुआ था, परन्तु इनकी शिक्षा पाटलिपुत्र नगर में हुई । उन दिनों पाटलिपुत्र में

धर्म नामक एक बड़े विद्वान् रहते थे। पाणिनि ने उन्होंने अध्ययन किया है। आराधना से भगवान् शिव को प्रसन्न करके पाणिनि ने व्याकरण बनाने की योग्यता प्राप्त की थी। व्याकरण सूत्रों के अतिरिक्त इन्होंने एक काव्य भी बना है, जिसका पातालविजय अथवा जगन्मयवर्ताविजय न है। ये ईसवी सदी के पहले के हैं।

भयामसादास्तमनिष्पतेजा जनस्य दूरोन्मिक्तमृत्युमीतेः
वर्षात्तमद्वस्तु विनाश्यवश्यं यथाहमिष्येवमिषोपदेष्टुम् ॥१४

तेजस्वी सूर्य अस्त हो गये, इसलिए कि मृत्युमय भूले हुए मनुष्यों को यह उपदेश दे कि उत्पन्न होनेवाले वस्तुओं का विनाश अवश्यही होगा, है, जैसे मेरा विनाश हुआ है।

भस्मी गिरे, शीतलकन्दराग्धः पातापनी गन्धपषाद्वृक्षः
घर्मोलमाह्वी मधुराणि हृतान् संवीजने पशुपदेन काम्नाम् ॥१५

यह कबूतर पर्यंत की शीतल कन्दरा में धड़ा हुआ है, वह कामिजनोचित गुणामय करन में भी धड़ा रहा है। घाम से भलसायी हुई अपनी कपूनी का मधुर घोलकर पत्तों से हटा कर रहा है।

गनेऽर्धरात्रे परिमन्दमन्दं गर्भंति कत्यागुनि काहमेवाः
भवरपनी वस्तमिषेष्टुविम्बं तच्छर्वाणी गीरिव दूहुरीनि ॥१६

घर्ष का समय है, आधी रात बीत गयी, मेरा गर्भ छेड़ें मालूम होता है कि चन्द्रमा को न देख कर यह रात्रि दूहुर कर रही है, जेठ गाय धरने बछड़े को न देख दूहुर करती है।

सरोरहाशीलि विनीर्यनपारीगे गने साधु कृतं बलिम्बा,
भरणी दि दृष्ट्वावि जगन्ममार्गं पल्लं विषालोऽनमेऽमेव ॥४॥

सूर्य के चले जाने पर नलिन ने कमलम्पी अपनी भासों
जो चन्द कर लीं वह अच्छा ही किया, (सन्ध्या के समय
कमलों का चन्द होना कवि मानते हैं) क्योंकि भासों से
यद्यपि समस्त जगत् देखा जाता है तथापि उनका पाल तो
केवल अपने प्रिय को देगता ही है ।

मितीत्य विष्टुश्चरैः पयोदो मुदं नितायामभिपारिस्तायाः
पारानिपातैः सदं शिन्नु बान्धकन्दोऽभिमित्यार्तं त्वं शरत्स ॥५॥

रात की समिमारिका चली जा रही है, उसी समय
विह्वली चमकी और उसीके प्रकाश में मेघ में उस अभि-
सरिका का मुँह देखा । उसको संदेह हुआ कि घारा परसाने
के साथ साथ हमने चन्द्रमा को भी उगल दिया है क्या,
इसीसे वह पड़े हुआ से घिड़ाने लगा अर्थात् गरजने लगा ।

शुद्धस्वभावाप्यपि संहतानि निनाय मेदं कुमुदानि चन्द्रः ।
अवाप्य वृद्धिं मलिनाम्भरात्मा जडो भवेन्वग्न गुणाय वक्रः ॥६॥

शुद्ध स्वभाववाले और आपस में मिले हुए कुमुदों का
चन्द्रमा ने मेद किया । अर्थात् चन्द्रमा ने कुमुदों को विक-
सित किया । दुरात्मा कुटिल और मूर्ख अनुप्य वृद्धि पाकर
किसीके कल्याण के लिए नहीं होते ।

श्रोतुरोगेण विलोलतारकं तथा गृहीतं शशिता निशामुलम्
यथा समस्तं तिमिरांशुकं तथा श्रोतुरागादृ गलितं न लक्षितम् ॥७॥

चन्द्रमा का राग (अनुराग अथवा लाल रंग) बढ़ा
हुआ है, उसने विलोलतारक (चञ्चल आँखोवाला अथवा
तारोवाला) निशामुख (सन्ध्या समय अथवा निशानामक

(येस्ती स्त्री का मुँह) को इस प्रकार ग्रहण किया कि
 को अनुराग के कारण अपने बन्धकार रूपी कपड़ों के
 जाने का भी ध्यान न हुआ।

प्रकाश्य लोकां भगवान् स्वर्तन्त्रमा प्राण द्रिदः सवितापि न
 भदो चलाग्नीर्वलमानदाप्यहो स्पृशन्ति सर्वेहि दशा विषये।

भगवान् सूर्य अपने तेज से समस्त लोको को प्रका-
 करते हैं, पर अन्त में ये भी प्रभादरिद्र अर्थात् निस्तेज
 जाते हैं, दुःख है कि बल और सम्मान देनेवाली लक्ष्मी
 बञ्चल है। विपरीत अवस्था में सब को दुर्गति भोग
 पड़ती है।

क्षमाः क्षामीकृत्य प्रसममपहत्यांगु सरिताम्,
 प्रताप्योर्वी कृत्स्नां तलगहनमुच्छोष्य सकलम्,
 क सम्प्रत्युष्णांशुयंत इति समालोचनपरा—
 स्तब्धदीपालोकेदिशि दिशि चान्तीह जलदा ॥१५॥

जिसने रात छोटी बनायो, जिसने जबरदस्ती नदियाँ।
 जल खींचा, जिसने समस्त भूमि को तपाया, और घना।
 सुखाया, वह उष्णांशु इस समय कहाँ गया इसी बात।
 खिने के लिए हाथ में चिजुलीरूपी दीपक लेकर सम-
 देशामों में मेघ घूम रहे हैं।

पाण्यो शीघ्रतले तनूदरि दूरक्षामा कपोलम्वली,
 विम्वस्याङ्गनदिग्ध लोचनजलैः किं म्लानिमावीयते।
 मुग्धे धुम्वतु नाम चञ्चलतया मृद्वः कचिद् कन्दली-
 मुन्मीलवमालतीपरिमलः किम्मेन विस्मर्यते ॥१६॥

हे तनूदरि, अंजन लगी आँखों के जल से थोड़ा दुर्ब-
 कपोल और लाल हथेली क्यों म्लान बना रही हो।

भोली भ्रमर चञ्चलता के वशवर्ती होकर यदि कन्दली का चुम्बन करता है, तो करने दो, इससे वह नयी मालती के फैलनेवाले सौरभ को नहीं भूल सकता ।

कलहारस्पर्शगर्भैः शिशिरपरिचयाद् कान्तिमद्भिः करगैः

अन्द्रेणालिङ्गितायास्तिमिरनिवसने स्त्रंसमाने रज्ज्याः

अन्योन्यालोकनिभिः परिचयजनित प्रमनिस्पन्दिनीभिः

दूराकृदे प्रसोदे हसितमिव वरिस्पृष्टमाशासखीभिः ॥११॥

चन्द्रमा का कर (हाथ या किरण) कमलपराग से भरा है और टण्डक के साथ से सुन्दर भी हो गया है, चन्द्रमा ने उसी कर से रात्रि का आलिङ्गन उस समय किया जब कि उसके भान्धकार रूपी कपड़े गिर रहे थे, यह बात दिशाओं ने भी देखी, इनमें परिचय से प्रेम उत्पन्न हो गया है और ये परस्पर एक दूसरी को देख भी सकती हैं, चन्द्रमा और रात्रि का प्रेम जब बहुत ऊँचे चढ़ गया सब साफ़ साफ़ दिशाओं ने हँस दिया ।

विशेष सङ्गमे राग पश्चिमाया विचरवतः ।

कृतं कृष्णमुखं प्राप्या गहि नायै विनेर्षया ॥१२॥

सूर्य का पश्चिम दिशा में धमुराग देखकर (सन्ध्या के समय सूर्य का वर्ण लाल हो जाता है) पूर्व दिशा ने अपना मुँह फाला कर लिया । बिना दर्पावाली स्त्री नहीं होती ।

प्रकाशवर्ण ।

ये संस्कृत के प्रसिद्ध कवियों में नहीं हैं। इनका बनाया कोई काव्य है कि नहीं इसका भी पता नहीं मिलता। हाँ सुभाषित ग्रन्थों में इनके नाम में जो टीका संवर्द्धित हुए पड़े ही मधुर और मारपूर्ण हैं।

शिशुपालवध के टीकाकार जहमदेवा ने चाँधे सगं अन्त में अपनी टीका में लिखा है -

श्रुत्वा प्रकाशवर्णं स्वाक्यान् नावरीदृशम्,
विशेषतश्च नौवास्ति बोधोऽशानुवाहते ।

प्रकाशवर्ण से सुनकर मैंने ऐसी टीका लिखी है। ऐसे काव्यों की टीका लिखने के लिए केवल बोध की आवश्यकता नहीं है। यहाँ तो केवल अनुभव से ही काम चल सकता है। इससे यह मालूम पड़ता है कि प्रकाशवर्ण एक अनुभवी पण्डित थे। इससे अधिक इनके विषय में कुछ मालूम नहीं

जगत्सिद्धिप्रलम्बक्रिया विधौ प्रयत्न मुग्धेऽनिमेगविभ्रमम् ।
वदन्ति यस्त्वैक्षणलोलपद्मणां पराय तस्मै परमेष्ठिने नमः ॥१॥

जगत् की सृष्टि और इन्द्र का कारण जिसकी भाँसों की चंचल पपनियों का खुलना और बन्द होना ही है, ऐसा विद्वान् कहते हैं, उस परमेशी (प्रह्ला) को नमस्कार ।

पाशापदं मरणदुःखमिवानुभाष्य दत्तेन त्रिं शतं भवन्वतिभूयसापि ।
कल्पदुःखमापरिहसन्त इवेह सन्तः संकल्पितैरतिदुःखकदार्थितं यत् ॥२॥

मरण दुःख क समान माँगने का दुःख सहवाकर यदि अधिक भी दिया जाय तो उससे लाभ क्या ? सज्जन मनुष्य कल्पद्रुमों का हँसने हुए प्रार्थी के मतोरथ से अधिक देते हैं ।

एवमेव नदि जीम्यते खलात्तत्र का नृपतिवत्तुमे कथा ।

पूर्वमेव हि मुदुःसहोऽनलः किं पुनः प्रवळवायुनेरितः ॥३॥

खल यों ही प्राप्तिनाशक होते हैं, उस पर यदि उन्हें राजा-
भय मिल जाय तो क्या कहना ? एक तो योंही आग का
ताप दुःसह होता है, उसपर यदि उसे वायु की सहायता
मिल जाय तो कहना ही क्या ।

घनदाक्षिण्यं दुःखितानुपहसन्मावाधते बान्धवा-

गुरान्द्वेष्टि घनपुताम्परिमवस्थाशापयस्याधिताम् ।

गुणानि प्रकटी करोति घटयन् घन्नेन वैराग्यं

प्रभूते शीघ्रमवाच्य मुष्कति गुणान्गुह्यतिदोषान्खलः ॥४॥

मामनीयों की निन्दा करता है, दुःखितों की हंसी उड़ाता
है, बान्धवों को पीड़ा देता है शूरों से द्वेष करता है दरिद्रों का
तिरस्कार करता है धार्थियों को आश्चा देता है, गुप्त बातें
प्रकाशित करता है, द्वेष प्रकाशित करके, न बोली जानेवाली
बात बोलता है गुणों को छोड़ देता है और दोषों को ग्रहण
करता है, यह खलों का स्वभाव है ।

रूपणसमृद्धीनामपि भोक्ताः सन्ति केचिदतिनिपुणाः ।

जलसम्पदोम्बुराशोर्पान्ति लयं शश्व दीर्घाम्री ॥५॥

रूपण घन के भोग करनेवाले भी कोई कोई निपुण मनुष्य
होते हैं, समुद्र की जलरूपी सम्पत्ति बड़याग्न में लीन हो
जाती है अर्थात् बड़याग्न समुद्र की जल सम्पत्ति का भोग
करता है ।

घनबाहुव्यमहेतुः कोपि नित्यमेव मुक्तकरः ।

प्रावृषि कस्याम्बुमुचः सम्पतिः किमधिकाम्बुनिधेः ॥६॥

प्रकाशवर्ष ।

यं संस्थान के प्रसिद्धि कथियां में से नहीं हैं । इनका कोई काव्य है कि नहीं इसका भी पता नहीं मिलता । सुभाषित ग्रन्थों में इनके नाम से जो श्लोक संग्रहीत हुए हैं, यों ही मधुर और भावपूर्ण हैं ।

शिशुपालवध के द. काकार यलमदेवा ने चौपे सर्प अन्त में अपनी टीका में लिखा है -

ध्रुवा प्रकाशवर्षानु व्याख्यान नावदीन्द्राम,
विशेषतस्तु नौशस्ति बोधोऽप्रानुवाहते ।

प्रकाशवर्ष से सुनकर मैंने ऐसी टीका लिखी है । काव्यों की टीका लिखने के लिए केवल बोध की आवश्यक नहीं है । यहाँ तो केवल अनुभव से ही काम चल सकता । इससे यह मालूम पड़ता है कि प्रकाशवर्ष एक अनुभवी पण्डित थे । इससे अधिक इनके विषय में कुछ मालूम नहीं ।

जगत्सिसृक्षाप्रलयक्रिया विधी प्रयत्न मुम्मेपनिमेषविभ्रमम् ।
वदन्ति पत्येक्षणलोलपद्मणा पराय तस्मै परमेष्ठिने नमः ॥१॥

जगत् की सृष्टि और प्रलय का कारण जिसकी भाँसों की चिल पपनियों का खुलना और बन्द होना ही है, ऐसा विश्र्व होते हैं, उस परमेष्ठी (ब्रह्मा) को नमस्कार ।

छापदं मरणदुःखमिवाभुमान्य दत्तं किं खलु भवन्त्यतिभूषसापि ।
दुःखान्परिहसन्त इवेह सन्तः संकल्पितैरतिदुःखकदार्षितं यत् ॥२॥

मरण दुःख के समान माँगने का दुःख सहवाकर यदि अधिक भी दिया जाय तो उससे लाभ क्या ! सज्जन कल्पद्रुमों का देखते हुए प्रार्थना के मनोरथ से

याणभट्ट ।

इन्होंने कादम्बरी और हर्षचरित नामक दो गद्यकाव्य लिखे हैं, ये हर्षचरित के आधितथी। ये सातवीं सदी के प्रारम्भ में हुए थे । इन दो ग्रन्थों के अतिरिक्त पार्श्वती-परिणय नाम का एक छोटा नाटक भी इन्होंने नाम से प्रसिद्ध है । कुछ लोगों का कहना है कि हर्षचरित के नाम से प्रसिद्ध नागानन्द आदि नाटक भी याणभट्ट के ही बनाये हैं, पर इसमें कुछ पुष्ट प्रमाण नहीं है । अष्टादशशतक भी इन्होंने बनाया है । जैन पण्डित गुणधिनय गणि ने नलचम्पू की एक टीका लिखी है, उसमें उन्होंने याणभट्ट के “मुकुटतारि-तक ” नामक एक नाटक का भी उल्लेख किया है । हेमचन्द्र ने भीचिन्म विचार धर्मा में याणभट्ट के कई श्लोक उद्धृत किये हैं और उन श्लोकों को पद्य कादम्बरी का घतलाया है, इससे याण की बनायी एक पद्य कादम्बरी भी थी यह मान्य पड़ता है, पर आज न तो यह पद्य कादम्बरी मिलती है और न मुकुटतारिण्टक नाटक ।

याणभट्ट ने हर्ष चरित के प्रारम्भ में अपना परिचय इस प्रकार दिया है । ये वात्स्यायन गोत्रोत्पन्न थे । इनके पूर्वज का नाम कुयेर था, कुयेर के चार पुत्र हुए, ईशान, हर, पशुपति और अच्युत । पशुपति के पुत्र अर्धपति हुए, अर्धपति के भृगु, हंसगुचि, आदि कई पुत्र उत्पन्न हुए, इनमें एक चित्रमानु भी थे, चित्रमानु का प्याह राज्यदेवी से दुमा, चित्रमानु कीर राज्यदेवी के पुत्र याण हुए, वात्स्यायना में ही इनकी माता का वर्णपास दुमा इस कारण इनका छालन पाटन दूसरों ने

कार्यशः प्रष्टव्यो न मनमान्यो मम प्रियो वेति ।
गुरुत्वासनसेव्यः प्रियानितम्बः कदा मन्ती ॥१५॥

कार्यश मनुष्य से किसी विषय में सलाह लेनी चाहिए,
यह मनुष्य हमारा मान्य है या प्रिय है इस कारण किसी ने
सलाह नहीं लेनी चाहिए । मान्य गुरु (भारी) प्रिय स्त्री !
नितम्बः पर क्या कोई मन्त्री का भार सौंपता है ।

गुणवानस्मि विदेशः क इव ममेत्येव दुरभिमानतवः ।
भजनमदिष्ट विराजति विन्यस्तं न पुनरधरमणी ॥१६॥

मैं गुणवान् हूँ मरे लिये विदेश क्या, यह केवल दुरभि-
मान मात्र है, भजन आँखों में ही शोभता है, यदि यह भपर
में लगाया जाय तो क्या अच्छा लगेगा ।

स्वच्छप्रकृतिके बहुमानगुपति नातिशयतयाः ।
स्फुटमप्रोदाहरणं यथोभरे दुबलपाक्षीणाम् ॥१७॥

लोक में उसी का मान होता है जिसकी प्रकृति कड़ी है
नम्र प्रकृतिवालों का मान नहीं होता । लियों के स्वन हम
उदाहरण हो सकते हैं ।

कल्पद्रुमान् विगतवाग्दत्तने सुमेरी रक्षाग्न्याधमनिले सरितामपीते ।
बाष्पा शिथं निक्षुब्धता प्रजलेषु नित्यमग्न्युत्तमलः क्षमु कटे निहितः प्ररीतः ।

प्रछा मे कल्पद्रुम को धरें लोगों के बीच में उत्पन्न किया,
जिन्हें किसी चीज़ की चामना नहीं । उनमें रसों को समुद्र
के अगाध जल में उत्पन्न किया भीरु बलों के लिए घड़े में
उपचरीय रखा । अधां नलों की आँखों के सामने प्रकाश
नहीं रहता, अनपय उनको विवेक नहीं होता ।

किया। बाण के चौदहवें वर्ष में इनके पिता का भी स्वर्ग हो गया। उसी समय से इनपर कुटुम्ब पालन का भार श्रुत्यादि। ५

इनके विषय में आचार्य गोवर्धन ने अपनी आर्यासत्र में लिखा है।

जाता शिखण्डिनी प्राग् यथा शिखण्डो तथा वगच्छामि।
प्रागन्वयमधिकमाप्तुं याणी याजो वभूवेति ॥

जिस प्रकार शिखण्डिनी अधिक धूल प्राप्त करने के लिए दूसरे जन्म में शिखण्डो हुई, उसी प्रकार अधिक प्रगल्भता प्राप्त करने के लिए याणी ने (सरस्वती) बाण का रूप धारण किया।

नमस्तुभ्यश्चिशिखण्डिनी चन्द्रचामरधारणे।

त्रैलोक्यनगरात्मभूतस्तम्भाय शोभते ॥१॥

जिनके ऊंचे मस्तक को सुन्दर चामर के समान चन्द्रमा चूम्यन कर रहा है, जो त्रैलोक्य रूपी नगर का मूल स्तम्भ है उस शिख को नमस्कार।

एकैकातिशयालवः परगुणज्ञानैकवैशानिकाः

सम्प्रेते धनिकाः कलामु सकलास्त्राचार्यवर्या वणाः।

अप्येते सुमनोगिरा निशमनाद्रिम्यत्यहो छाषया।

धृते सूर्यनि कुण्डले कपणतः क्षीणे भवेतामिति ॥२॥

एक एक से बढ़ कर दूसरों के गुण जानने में प्रवीण है, जो समस्त कलाओं में आचार्य धनने के योग्य हैं, ये गीरूपी कुसुम को फानों में रखने से डरते हैं क्योंकि कानों

में रखने से गुण्डल का घड़ा पाकर वे घिस जायेंगी, इसलिए वे आदरपूर्वक उन्हें माथे पर ही रखते हैं ।

प्रीतिं न प्रकटो करोति मुहुरि द्रव्यव्यपाशद्वया ।

मीतः प्रत्युपकारकारणमपात्त्वन्ना कृष्यते सेवया ॥

मित्र्या जगति वित्तमायनमपात्स्तुत्यापि न प्रीयते ।

हीनाशो विभवव्यव्यतिकरमस्तः कथं प्राणिति ॥१॥

धन संच होने के भय से मित्रों पर प्रेम प्रकट नहीं करते, प्रत्युपकार करना पड़ेगा, इस भय से सेवा से भी प्रसन्न नहीं होते, धन हूँ देने के भय से झूठ बोलते हैं, स्तुति से भी प्रसन्न नहीं होते, यमराज धनव्यय के डर से किस प्रकार जीते हैं ।

करिकलम विमुक्त कोलतां च विनयवतमावसाननः ।

मृगपक्षिणकोटिभङ्गु रो मुकुटपरि क्षमते न तेह शः ॥४॥

करिकलम, चञ्चलता छोड़ दो, सिर नीचा करके विनय-प्रसन्नता का पालन करो, सिंह के नय के समान टेढ़ा इस शङ्खुश का तुमपर पड़ना उचित नहीं ।

नगृह्णाति प्रांश नयकमल किं वञ्चिनि जले,

न पट्टं राद्धान् प्रयति विसभङ्गार्पणकलैः ।

कलमो प्रेमाद्रामनि विपश्यते नाभ्यकरिणी

अलङ्कारभङ्गद्वय दयितां वारण्य पतिः ॥५॥

नयीन कमल के रेशुयुक्त जल में प्रांस ग्रहण नहीं करता कमल डंटी के टुकड़ों से भी प्रसन्न नहीं होता, प्रमार्द दूसरी हथिनी को भी सहन नहीं करता, क्योंकि यन में विछुड़ी हुई अपनी हृदय दयिता को वह हाथी स्मरण कर रहा है ।

लतान्ताबावृत्ते शशिशकलशीतं नय ज्वरं

भ्रमदुष्टासङ्गाः परिहरति कान्ताः कमलिनीः

दधन्नासाकारं कमलिनी करी जातविहो

वितम्बश्च पञ्चान्नभ्रममपि वनान्तं न रमः ॥६४॥

लताओं को नहीं छूता, चन्द्रखण्ड के समान शीतल जल
को भी नहीं छूता, सुन्दर कमलिनी को भी—जिसपर मोर
शूँङ रहते हैं—दूरही से छोड़ देता है, शूँङ भी भार के समान
धारण करता है, घिरही हाथी उसासे ले रहा है और वन में
उसे एक क्षण के लिए भी चैन नहीं ।

नदीप्रमान्भिरवा किल्लयवदुत्पाद्य च नरु-

म्भदोन्मत्ताग्निम्वा करचरणदन्तैः प्रतिगन्ताद् ।

जरीप्राम्थानायां तरुणजनविद्वेषजननीं

स एवाप्य नागः सहसि कलभेभ्यः परिभवन् ॥६५॥

जिसने नदी के तटों को तोड़ दिया है, फूल के समान
जिसने वृक्षों को उखाड़ दिया है, शूँङ पैर और दातों से
जिसने अपने प्रतिद्वन्दी मतवाले हाथियों को जित लिया है,
वही हाथी आज धूँड़ा होगया है, युवक उससे द्वेष करने लगे
हैं और वह छोटे छोटे वृक्षों से पराजित हो रहा है ।

धरमिममड कुशक्षत्रिलक्षितमापलिता

विनयविधिन्सया शिरसि तेलगप्रवृषते ।

मृ पुनरपश्चिमाकरजवज्जशिलाभिहितः

प्रसमसमुत्थितस्य निशिता तनकेसरिणः ॥६६॥

हे गजराज, तुमको सीधा करने के लिए तुम्हारे मस्तक
पर अलक्षित पड़नेवाला यह अङ्गुश का प्रहार अच्छा ।
नहीं तो चन-सिंह के सोंखे और प्रजु के समान नलों का
आफ-हिमक आघात सहना पड़ेगा और वह अच्छा नहीं ।

तरलपसि दृशी किमुसुकामकलुपमानसयासलाहिते ।

भवतार कलहसि यापिका पुनरपि पात्यसि पट्टजालयम् ॥१०॥

स्थच्छकान सरोवर में घास करनेवाली राजहंसि तुम
[धर उधर क्या देख रही हो, इस घापी में उतरो, पुनः मान-
जरोवर भी जाना ।

'वियोगिनी चन्दनपट्टपाण्डुभृणालिकाहारनिवद्धभोवा ।

बाला बलाग्मःकण्ठदन्तुसेषु हसीव शिश्ये नलिनीदलेषु ॥११॥

चन्दन पंक के समान पीली, नृजालिका तार के सहारे
पियत रहने वाली वियोगिनी छाँ छोटे छोटे जलकणों से
[क कमलिनी के पत्तों पर हंसों के समान सोयी ।

दुःखदशा मविशन्म्यास्तस्याः कण्ठ मुदमुद्वर्षाः ।

स्वल्पावशेषत्रीवितनिर्वाणमिवेय निरुणदि ॥ १२ ॥

उसकी बुरी दशा है, गला घाव से भर आया है, मानो
तेड़ा घवा हुआ प्राण जाने न पाये इसलिये यह गले को
क रहा है ।

सर्वाशरुधि दग्धवीर्यसि सदा सारङ्गवदक्रुधि

क्षामक्षमार्हहि मन्दमुन्मथुलिहि स्वच्छन्दकुन्ददुहि ॥

पुण्यस्त्रोतमि भूरितस्तरत्रसि अवालापमानार्णसि

प्रीप्ते मासितकटतेवसि कथं पान्थ वज्रक्षोवसि ॥ १३ ॥

इस प्रीप्ते मास ने सब दिशाओं को भर दिया, पिरपा
ला दिये, मृगों पर सदा काध किया, वृक्षों को पतला बनाया,
रों के आनन्द को घटाया, स्वतन्त्रता पूर्यक कुन्द-पुष्प से द्वेष
प्या, सोताँ को सुखवाया, घूलि को गर्म किया, जल को
अग्नि के समान बनाया, पान्थ, तुम इस शीप्ते मास में
य कि सूर्य का तेज फैल रहा है, कैसे जीते हो ।

१. दूरादेव कुजोमुलिर्न तु पुनः पानीय पानार्थिता
 रोमाघोपि निरन्तरं प्रकटितः प्रीत्या न शीत्यादरात् ।
 रूपालोकनविस्मितेन चलितो मूर्धा न शान्त्या कृपा-
 ममुष्णो विधिरध्वगेन घटितो वीक्ष्य प्रपापालिकाम् ॥ १ ॥

दूर से ही पथिक ने हाथ जोड़ें, पर पीने के पानी के लिए नहीं, रोमाञ्च हो आया, पर शीत के कारण नहीं, किन्तु प्रेम के कारण। रूप देखकर वह विस्मित हो गया था इस कारण उसने अपना सिर हिलाया, प्यास शान्त होने के कारण नहीं, प्रापापालिका (पनसाला चलानेवाली) को देखकर पथिक ने अपने भाग्य सफल किये ।

स्वेदाग्निः कणिकाचतेन वपुषा शीताः नलस्पर्शनं
 तपोत्कर्षं तुषा मुखेन शिशिरस्वप्नान्मुपावाहरः ॥
 दूराभवह्नमनिःसहेरवयवैश्छामासु विभ्रान्तयः
 कश्मीरान्वरितो निदाघसमये धन्यः परिभ्राम्यति ॥ १ ॥

यह मनुष्य धन्य है जो गरमी के दिनों में कश्मीर भ्रमण करता है, क्योंकि वहाँ स्वेद बिन्दुयुक्त शरीर शीतलवायु का स्पर्श होता है, प्यास लगने पर ठंडा पलता है, और दूर चलने के कारण अंगों के थक जाने के लिए छाया मिलती है ।

प्रीष्मांश्मप्लोपमुष्पत्यसि बकभयोदुधान्तपाटीनभाञ्चि
 प्रायः पट्टैकभावं गतवति सरसि स्वन्नतोये लुटिन्वा ॥
 कृत्वा कृत्वा जलार्द्राकृतमुपरि अतर्क्यदामं प्रपावां
 तोयं लब्ध्वापि पान्यः पयि चलति इहा हेति कुं न्पि पशुम् ॥ १ ॥

तलाव का जल ग्रीष्म के दाह से सूख गया है, वहाँ की मछलियाँ थगलों के भय से व्याकुल हो गयी हैं उसमें प्रायः कीचड़ ही रह गया है, उसके थोड़े-स्वल्प जल में लोट फर जीर्ण घस्त्र के टुकड़े को पथिक ने अपने ऊपर रखा, जब वह पनशाला में गया तब उसे जल मिला, पर वह प्यासा ही हाहा, करता हुआ जा रहा है ।

लघ्वाम्बुभिधेरम्मःकृन्तनमुद्वृगीर्यं तोयदाः ।

दुपुर्बकतां सूयः पीत दुग्धानंवा इव ॥ १८ ॥

मेघों ने लघ्वण समुद्र के समस्त जल को गिरा दिया, तब ये श्वेत हो गये, मानों उन्होंने क्षीरसमुद्र का पान किया है ।

मीलोन्यलघने रेजुः पादाः श्यामायिता रवेः ।

घनवन्धनमुक्तस्य श्यामिका मकिता इव ॥ १९ ॥

मीलकमल के घन में सूर्य के शणम बने हुए चरण (किरणें) शोभते हैं । मानों मेघ के बन्धन के कारण ये श्याम हो गये थे और वह श्यामता मुक्त होने पर भी घतमान है । —

हारे गृहस्य विहितं शयनस्य पार्श्वे बन्दिश्वंरस्तुपरि तूळपदो गतीपाद् ।
अहं शुद्धलमभुरागवशात्कलत्रमित्थं करोति किमसी स्वपतस्तुपादः ॥ २० ॥

घर का द्वार बन्द है, पलंग के पास भाग जल रही है, ऊपर झोड़ने के लिए भारी दर का झोड़ना है, अहं में अनु-रागयती स्त्री है, इस प्रकार सोने वाले को यह आड़ा क्या कर सकता है ।

धउधनुषि बाहुरागिनि शैला न वमन्ति वसदाधर्म्यम् ।

विपुर्बजनेषु गगता कैव वराकेषु कायेषु २१ ॥

जब ये धनुष धारण करने हैं तो पर्यंत नहीं नयते यही
 आश्चर्य है, रिपुनामक चिचारे काशो की क्या गिनती ।
 बह्मणवीथी वसुधा कुन्या जलधिः खली च पातालम् ।
 बन्नीकश्च सुमेरु कृतप्रयत्नस्य घोस्य ॥ २२ ॥
 उद्योगी घोर पुरुष के लिए समूची पृथिवी आंगन समु-
 न्दर, पाताल मैदान, और सुमेरु पर्यंत मिट्टी के ढेर के
 समान है ।

महाकवि विल्हण ।

ये संस्कृत साहित्य के एक धुरन्धर कवि हैं । कालिदास
 अश्वघोष परिमल आदि कौं श्रेणों के ये कवि हैं । इन
 कविता सरस मनोहर और थोड़ा परिश्रम से आस्वाद्य हैं
 इन्होंने विक्रमाङ्कदेवचरित नामक अपने काव्य ग्रन्थ में अप-
 परिचय दिया है, वह यहाँ लिखा जाता है ।

ये काश्मीर के रहने वाले थे, काश्मीर के प्रधान नगर प्रवर-
 पुर (श्रीनगर) से तीन मील दूर खोनमुखनामक एक
 ग्राम था, यही ग्राम विल्हण के पूर्वपुरुषों की निवास भूमि
 थी । विल्हण तीन भाई थे, इनके बड़े भाई का नाम इष्टान,
 और छोटे भाई का नाम आनन्द था । मझले ये स्वयं थे ।
 इनके पिता का नाम ज्येष्ठकलश और माता का नाम नागा-
 देवी था । इनके पितामह का नाम राज्यकलश और प्रपिता-
 मह का नाम मुक्तिकलश था । विल्हण ने लिखा है कि मेरे
 पिता ज्येष्ठकलश ने महाभाष्य पर एक टीका लिखी है । पर
 उस टीका का आज पता नहीं मिलता । विल्हण का
 विद्याभ्यास काश्मीर में ही हुआ था । विल्हण ने अपनी विद्या
 के विषय में यह लिखा है—

साङ्गो वेदः कविपतिदृशा शब्दशास्त्रे विचार
प्राणा यस्य श्रवणसुमणा साहि साहित्यविद्या,
को वा शक्तः परिगणयितुं धूयतां तत्त्वमेतन्
प्रसादशो किमिव विमले नास्य सः कान्तमासीत् ॥

अङ्गो के सहित वेद और शब्द शास्त्र में महा भाष्यकार के समान जिसका विचार था, श्रवणों के सुखदायी वह साहित्य विद्या जिसके प्राण हैं, अथवा कौन गिन सकता है। यथार्थ बात यह है कि इनके स्वच्छ बुद्धिदपण में कौन सी ऐसी बात है, जिसका प्रतिबिम्ब न पड़ा हो।

विद्याध्ययन के पश्चात् इन्होंने देश का परित्रमण किया, काशी से चलकर मार्ग में चंदीराज कर्णराज से इनकी मंत्री हुई, इनके यहाँ कुछ दिनों तक महाकवि विल्हण ने वास किया था और यहाँ उन्होंने अपना पहला काव्य रामचरित लिखा था। यह काव्य विल्हण ने चंदीराज कर्णराज को ही समर्पित किया था। यहाँ से चलकर गङ्गाधर नामक किसी कवि के यहाँ इन्होंने वास किया, यहाँ से वे कल्याण गये और यहाँ के राजा विक्रमराज की सभा के वे मुख्य पण्डित चुने गये। वे विक्रमदेय त्रिभुवन महानाम से प्रसिद्ध हैं। सन् १०७६ से ११२७ ई० तक इन्हीं ने राज्य किया।

विल्हण ने अपने विक्रमाङ्गदेवचरित में अनन्त और कलश इन राजाओं का उल्लेख किया है, उस समय अनन्त मर चुका था और कलश को राजगद्दी मिली थी। अनन्त-राज ने सन् १०२८ से १०८० ई० तक और कलश १०८० से १०८८ ई० तक काश्मीर का शासन किया। विल्हण के विषय में काश्मीर के इतिहास राजतरङ्गिणी में इस प्रकार लिखा है।

कर्णापति की यात रोद के साथ सुनकर कुमार
सरस्वती के चञ्चल वस्त्र के समान सुन्दर दन्त किरणों की
परम्परा प्रकाशित करते हुए उत्तर दिया ।

वाष्पालतैया पुरतः कपीनां कान्त्या मद्योषं तन्निधे सुधांशुः ।
त्यस्तनिधौ पाटवनाटनं यत्तथापि मन-या किनपि प्रवीमि ॥ ८ ॥

यह कवियों के सामने यक्याइ करना है, चन्द्र-
सामने अपनी सुन्दरता का गर्व करना है, घेरो ही भ
सामने अपनी पटुता दिखाना भी है, फिर भी भक्ति के का
कुछ कहता हूँ ।

विचारवानुपमपाकरोति तातरय भूषागमपि दक्षपातः ।
येहं तनुने सति सोमदेवे न पीवराग्येशि ममाधिकारा ॥ ९ ॥

पिता का मुझ पर बड़ा प्रेम है इसी कारण ये इस बात
पर गहरा विचार नहीं करने । यड़े लड़के सोमदेव के राने
पीवराग्यपद के महण करने का हमारा अधिकार नहीं है ।

वातुन्यवशीति यदि प्रपानि वात्रग्यमाचारविपर्यवश्य ।
अरोमहर्दशममाः किमप्यदनकुशोभूकन्तिपुत्रोपम् ॥ १० ॥

वातुन्य पंश में भी यदि मयांदा का अनिष्ट हो
यह यड़े दुःख की घात है, और क्या उस समय यदी बदन
बाह्य कि यह कान्तिकी हार्थी अनकुश हो गया ।

कदम्बाः कर्तं प्राद्विषु मरुदो तान्म्य योग्यः दक्षममया मे ।
कार्यं विना समानान्न न मे मृदधीतिराममेव ॥ ११ ॥

जी का बाह्य कि सायने गहले मेरे यड़े माई का
है, मयांदा य अनिष्ट न काय्या हुई लामे
को हमें नकल मरी ।

ऽपेष्टं परिम्लानमुखं विधाय भवामि लक्ष्मीप्रणयोन्मुखश्चेत् ।

किमन्यदम्यावपरायणेन भवैव गोत्रे लिखितः कलङ्कः ॥ १२ ॥

घड़े भाई के मुँह को मलिन बनाकर यदि हम राज लक्ष्मी के प्रेम में उत्कण्ठित हों तो और क्या, अन्यायी होकर मैंने ही अपने गोत्र में कलङ्क लगाया ।

सातधिरां राज्यमलंकरोषु ऽपेष्टे ममारोहतु यौवराज्यम् ।

सखीलमाकान्तविगान्तरोऽहं द्वयोः पदातिव्रतमुद्रामि ॥ १३ ॥

पिता बहुत दिनों एक राज्य करें, मेरे घड़े भाई युवराज बनाये जाय और मैं अनायास दिशाओं पर आक्रमण करूँ और इन दोनों का सिपाही बना रहूँ ।

रामस्य विश्वा भरतोऽभिषिक्तः क्रमं समुत्तुष्ट्य यदात्मराज्ये ।

तेनोन्मिष्टा प्रीजित इत्यकीर्तिरप्यापि तस्यास्ति दिगन्तरेषु ॥ १४ ॥

राम के पिता ने क्रम की परवा न कर भरत को राज्य दिया, इसलिए वही के यश में होने की उनकी अकीर्ति फैली और आज भी वह ज्यों की त्यों यत् मान है ।

तदेव विभक्त्यु कुन्तलेन्द्र यशोविरोधी भवि पक्षपातः ।

न किं समालोचयति क्षितीन्दुरापातशून्यं मम यौवराज्यम् ॥ १५ ॥

हे कुन्तलेन्द्र, भाव अपने इस विचार को छोड़ें, क्योंकि इससे भयश होगा । क्या महाराज का ध्यान इस बात की ओर नहीं है कि मैं तो बिना परिश्रम से ही युवराज बना हूँ ।

पुत्राद्वयः भोगपवित्रमेव धुन्वा यमत्कारमगाम्भरेन्द्रः ।

एवं हि लक्ष्मीपुंरि पांशुलानां केषा न चेतः कनुरीकरोति ॥ १६ ॥

पानों को पवित्र करनेवाली बात पुत्र से सुनकर राजा को माधुर्य हुआ, क्योंकि यह लक्ष्मी तो दोनों को छान है और इसके लिए किसका चित्त मलिन नहीं हो जाता ।

महाकवि विल्हण ।

महाकवि बिल्हण ।
मस्नेहमङ्गलं विनिवेश्य चैनमुवाच रोमाञ्चतरङ्गिताङ्गः ।
क्षिप्रशिवात्पुग्ज्वलदन्तकान्त्या प्रसादमुक्तावलिमस्य कण्ठे ॥ १९ ॥
राजा ने अपने पुत्र को गोद में लिए और उसे
केत हो गया ।

राजा ने अपने पुत्र को गान्ध में धँसा लिया, उनका शरीर
पुलकित हो गया। वे उज्ज्वल दाँतों की शोभा से पुत्र के कानों
में मानों मोतियों की माला पहना रहे हो, ये पदं प्रेम से
भाग्यैः प्रभूर्नमरां...

भाग्यैः प्रभूर्नमगंयानसौ मे सन्य भवानीदयितः प्रसन्नः ।
 बालुक्वगोप्रस्य विभूषणं यन्पुत्रं प्रसादीकृतम् ॥

यदं भाग्यं सं भगवान् शङ्कर प्रसादः ॥ १६ ॥

यह भाग्य से भगवान् शङ्कर प्रसन्न हुए हैं। यह पातित
कुल सच है, क्योंकि उन्होंने प्रसन्न होकर ही बालुभ्य गौर से
अलङ्कार स्वरूप आपको पुत्र के रूप में प्रसाद दिया है।
एतानि निर्घाति यथांति वदन्नात्मा
मधुनि लेखाति

पुत्र के रूप में प्रसाद दिया है।
महानि लेखानि मुरधिरंजैर्वा रिजातादयः ।
कानो के निम्न

कानों के लिए भट्टन के समान प्रयुक्त ॥ ११ ॥

फानों के लिए भस्म के समान ये बातें किसी दूसरे के
मुँह से थोड़ी ही निकल सकती हैं। देवलोके के भ्रमों के लिए
मधु पारिजात के अनिरिक्त दूसरे वृक्षों से गन्दी मिलना।
पर्यायः कृते भूमिभृता कुमाराः केतुः ।
वन्मत्तमात्राः ।

पश्याः कृते भूमिभृतां कुमारः केचन वाः न पवित्रवानाम् ।
 वन्मत्तमातङ्गमहसगुर्वी सा रात्र्यलक्ष्मीस्तृणवत्पुत्रे ॥ १० ॥

जिसके लिए राजाओं के लड़के न मान्यम कितने बड़े पाप कर सकते हैं, मतवाले हजारों हाथियों की यज्ञतदार यह राज्यलक्ष्मी तुम्हारे लिए तृण के समान है -

कङ्कामर्माशुभित्तर्गन्तं शङ्कामर्माशुभित्तर्गन्तं शङ्कामर्माशुभित्तर्गन्तं ।
ददमीत्यर्थं श्वशुरद्वयद्वयं पात्रं श्वशुरद्वयं ।

२६मीरसी स्वमुञ्चदुष्टवद्वा पापं भविषी विनयप्रसन्नः ॥ ३१ ॥

यह लङ्का के पास वाले समुद्र से निकली है, राक्षसियों के समान इसकी सृष्टि के लिए भी रक्तासव चाहिए, पर यदि यह राज्यलक्ष्मी तुम्हारी भुजाओं में बांध दी जाय तो यह दिनचर्या की पात्र अवश्य होगी ।

जानामि मार्गं भवतोपदिष्टं ममपि चालुक्यकुले प्रसूतिः ।

किंन्वद्र लक्ष्मीर्गुलकन्धहीने निसर्गलोला कथमेति दादय न् ॥२१॥

तुमने जो बातें कही हैं, वह मुझे मालूम है । मेरा जन्म भी चालुक्य कुलही में हुआ है, पर बात यह है कि तुम्हारा बड़ा भाई गुणहीन है, उसमें स्वभावचञ्चल यह लक्ष्मी कैसे दृढ़ता प्राप्त कर सकेगी ।

किंचिन्न मे दुष्णमस्ति पूज्य देवशुचकं यदि कौतुकं ते ।

एतस्य साम्राज्यमन्यमानाः पापग्रहा एव गृहीतवायाः ॥२२॥

मेरा कुछ भी दोष नहीं है, तुम्हें यदि कौतुक हो तो ज्योतिषियों से पूछो, इसके पापग्रह ही इस विषय में अपराधी हैं जो इसको साम्राज्य देना स्वीकार नहीं करते ।

साम्राज्यलक्ष्मीदयितं अगाध स्वामेव देवोपि भृगादुमौलिः ।

लोकान्मृतां मे बहुपुत्रतां तु पुत्रद्वयेन ज्योतनोत्परेण ॥२३॥

भगवान् शङ्कर ने भी तुम्हीं को साम्राज्य का अधीश्वर पतलाया है, यद्यपि लोक में हमारे बहुपुत्र होने की प्रशंसा है, पर मैं पुत्रवान् तो अपने छोटे दोनों लड़कों ही से हूँ, यह बात शङ्कर ने कही है ।

तन्मे प्रमाणीकुरु यत्स वाक्यं चालुक्यलक्ष्मीधिरमुद्रतासु ।

निर्मन्तराः क्षांतिकृतः स्तुवन्तु ममाकलङ्कं शुचरक्षपादम ॥२४॥

घेटा, इस कारण मेरी घात मान लो, वालुङ्ग्य वंश की लक्ष्मी को सदा के लिए उन्नत होने दे, पक्षपात रहित राजा हमारे विशुद्ध गुण पक्षपात की स्तुति करें ।

मृत्वेति वाक्यं पितुरादरेण जगत् भूयो विहसन्कुमारः ।

मन्त्राग्यदोषेण दुराग्रहोऽयं वातस्य मन्त्रोक्तिरुल्लङ्घयेत् ॥१९॥

पिता की घात सुनकर पुनः हंसता हुआ कुमार ।
आदर से बोला, मेरे ही भाग्य दोष से पिता का अप्रग्रह ।
है और यह अप्रग्रह मेरी कीर्ति का फलरूप है ।

यदि ग्रह स्वस्य नाराग्यदुताः कारुण्यशून्यः शरिशोखरो वा ।

तैरेव तातो भविता कृतार्थस्तद्वर्षतां कीर्तिर्विपर्ययो मे ॥२०॥

यदि मेरे बड़े भाई के ग्रह राज्य प्राप्ति के अनुकूल नहीं
और यदि महादेव भी उनके अनुकूल नहीं हैं, तो इसी
पिता जो चाहते हैं वह हो जायगा, इसलिए मेरा यह कल
माप दूर करें ।

भराकिररवास्ति न दिग्ब्रवेयु मस्यानुजोऽं शिरसा पलाशः ।

स्यान्नस्य एवाद्भुतकार्यकारी विभक्तु रक्षामणिना समत्वम् ॥२१॥

मेरे बड़े भाई दिग्ब्रजय नहीं कर सकते, यह घात नहीं है,
क्योंकि उनकी आज्ञा का पालन करनेवाला मैं उनका छोटा
भाई हूँ । ये केवल राजधानी में बैठ कर ही बड़े अद्भुत कार्य
कर सकते हैं, केवल रक्षामणि के समान उनकी छाया
बाहिर ।

इत्यादिनिभिप्रतरीयंकोमिः हृत्वा पिनुः कौमुदमुत्सर्प च ।

मकारपग्ग्येष्टुदारशीलः स धीवराग्यप्रतिपत्तिप्राप्तम् ॥२२॥

कि क्रोध से युद्ध में मैं सी कौरवों को भयस्थ व्यथित कर दूँगा, दुःशासन के कलें जें का रुधिर भयस्थ पीऊँगा, अपनी गर्द से दुर्योधन की गदा ज़रूर तोड़ूँगा, माप के राजा चाहें पैसी पर सन्धि करलें ।

यत्सत्यव्रतमङ्गभीरुमनसा यन्नेन मन्द्रीकृतं
यद्विस्मयमपीहितं रामवता शान्तिं कुलस्वेष्टता
तद्युतारयिष्येवृत् नृपमुताड्येशाम्बराकर्षणीः
क्रोधरपोतिरिदं महत्कुर्वन्ने वीधिधिरं जूम्सते ।

सत्यव्रत के मङ्ग के भय से जो यत्नपूर्वक कम कर दि
गया था, राम प्रधान और कुल का मंगल चाहने वाले राजा
ने जिसको भूल जाना भी चाहा था, वह जुए की मरवि
(भस्म निकालने के काण्ड) में बंधा हुआ युधिष्ठिर के क्रोध का
प्रकाश द्रौपदी के केश और यत्न के आकर्षण से मात्र
कुठवन में फँस रहा है । (भीम की उक्ति)

नाहं रक्षो नभूतो रिपुर्धिरजलाद्वादिताङ्गः प्रकामम्
नित्सीर्णैरुपविशान्ननिधिगहनं क्रोधेन क्षत्रियोस्मि
नो मो राजग्यवीराः समरशिबिः शिस्तादृग्प्रशेषाः कृतव-
क्षासेनानेन लीकैर्हलकश्चिदुत्तरगाम्निर्हितैरास्पृश्यते ।

मैं राक्षस नहीं हूँ और न भूत हूँ किन्तु शत्रु के रुधि
जल से मेरा समस्त शरीर लिप्त है, मैंने समुद्र के समान
गहन प्रतिष्ठा का पालन किया है, मैं क्रोधो क्षत्रिय हूँ, हे
रणाम्नि की ज्वाला से जलने से बचे हुए वीर राजागण, तुम
व्यर्थही मरे हुए हाथी और घोड़ों की ओट में छिप रहे हो ।
(भीम की उक्ति)

धृतायुधो यावदहं तावदन्यैः कियायुधैः

यद्वा न सिद्धमस्त्रेण मम तन्केन साध्यताम्,

जब तक मैंने अस्त्र धारण किया है तब तक दूसरे किसी के अस्त्र से क्या, जो काम मेरे अस्त्र से सिद्ध न होगा, वह कौन दूसरा सिद्ध कर सकता है । (कर्ण की उक्ति)

यदि समरमपाद्य नास्ति मृत्योर्भयमिति युष्मभितोऽन्वतः मयातुम्
अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः किमिति युष्मा मलिनं यशः कुरुष्वम्,

यदि रण से हट जाने पर मृत्यु का भय न रहे तब तो रणस्थान से भाग जाना ठीक है, पर प्राणियों को तो अवश्य मरना पड़ेगा, फिर भाग कर तुम लोग अपने यश को मलिन क्यों करते हो । (अश्वत्थामा की उक्ति)

युस्मान् ह पयति क्रोधाहोके शत्रुकुलक्षयः

न लज्जयति दाराणां सभायां देशकर्षणम् ।

क्रोध से शत्रुओं के नाश करने में तुम लोगों को लज्जा मालूम होती है । पर सभा में अपनी स्त्री के केशों के खींचे जाने से तुम लोगों को लज्जा नहीं आती । (भीम की उक्ति)

यो यः शस्त्रं विभर्ति स्वभुजगुल्मदः पाण्डुरीनां चक्षूनां

यो यः पाञ्चालगोत्रे शिशुराधिकवया गर्भशरणो गतो वा

यो दस्ताङ्गममाध्री यरति मयि रणे यश्च यश्च प्रतीपः

क्रोधात्पुस्त तस्य स्वयमिह जगतामस्तकस्यास्तकोऽहम् ।

— पाण्डुर्वी की सेना में जो जो शस्त्र धारण करते हैं जिस जिसको अपनी भुजाओं का गर्व हो, पाञ्चाल गोत्र में जो कोई बालक जवान या गर्भ में हो जो उस कर्म के (द्रोणचार्य के मारे जाने के) साक्षी हो और युद्ध में जो मेरा सामना करे,

क्रोधान्ध होकर मैं उनका (क्रोध से घास्यपूति करना भूल गये) यमराज का भी यमराज हूँ (अश्वत्थामा की उक्ति)

काशागृहानलविषाघसमाप्रवेशैः प्राणेषु वित्तनिचयेषु च नः प्रहृत्य ।
आकृत्य पाण्डववधूपरिधानकेशान् स्वस्था भवन्ति मयि जीपति पातः ।
लक्षागृह में आग लगाकर, भोजन में घिय मिला कर मैं समा में ले जाकर प्राण और धन का जिन लोगों ने भयहृत् किया, पाण्डवों की स्त्रियों का जिन लोगों ने पेशा पाँचा, वे धृत राष्ट्र के पुत्र मेरे जीते स्वस्थ होयें अर्थात् कभी नहीं, वे मरें ।
(भीमसेन की उक्ति)

मयूढं पदैर' मम गलु विशोरेव कुरुभिः
न तमाषो हंतुर्न भवति किरीटी न च युवाम्
जरासन्धस्योरःस्थलमिव विरूप'पुनरपि
क्रुधा सन्धि' भीमा विधत्सति दूषं धत्सत ।

घाल्यायस्था से ही पौरवों के साथ मेरा घेर बढ़ा हुआ और उस घेर का कारण युधिष्ठिर भजु'न या तुम दोनों में । कोई नहीं है, इस कारण जरासन्ध के उरःस्थल के समा जोड़ी हुई सन्धि का भीम कांधपूर्यंक तोड़ता है, तुम लोग उसे जोड़ो (कांधी भीम की उक्ति)

विशालैर्वदनाः प्रशमाद्रीणां
मन्दान् पाण्डुनवाः सह माधवेन
रजप्रमाजिनमुवः धनविप्रदाध
मन्था भगन्तु कुराजमुना सभृत्वा ।

राष्ट्रधों के नाश में गिरांधास्त्रि युध्त्वा जायगी, धनपय पाण्डव रज के साथ प्रसप्रतापुर्वं हों, रक्त से भूमि का शोभित

करनेवाले क्षत शरीर कुरुराज के पुत्र अपने भृत्यों के साथ स्वर्गस्थ हों (भीम की उक्ति)

निर्वीर्यं गुरुशपभाषितवशात् किं मे तनेवासुधाम्
सम्प्रत्येव भवाद्दिहाय समरं शस्त्रोऽस्मि किं त्वं यथा
जातोऽहं स्तुतिव'शकीते'नविशं किं सारधीनां कुले
सुदारातिकुलाग्रियं प्रतिकरोम्यस्त्रेण वास्त्रेण यत्

शुद्ध के शाप के कारण तुम्हारे ही समान क्या मेरे अस्त्र निर्यीय हैं, भय से रण छोड़ कर तुम्हारे ही समान मैं भी भाग आया हूँ, स्तुति करने में निपुण सारथियों के वंश में मैं भी जन्मा हूँ एक सूत्र शत्रु के किये अनिष्ट का क्या मैं ही भर्त्सों से नहीं, किन्तु आंसुओं से प्रतीकार कर रहा हूँ ।
(भद्रवधामा की उक्ति कर्ण के प्रति ।)

अग्निपाणि करोत्येव पाचा शक्नोन्कर्मया ।

इतन्नातृशतैर्दुःखी प्रलापैरस्य का व्यथा ॥

यह शाय्यों के द्वारा अग्निय करता है करने दो, क्या करे विचारा कार्य से तो कुछ कर नहीं सकता, इसके सौ भार मारे गये हैं, इसके पकने का दुःख क्या (अर्जुन की उक्ति) ।

कर्ता घृतच्छलानां जतुमयशरणोददीपनः सोऽभिमानी

राजा दुःशासनोदेगुं अनुजशतस्याङ्गराजस्य मित्रम्

कृष्णाकेशीतरोक्यपनयनपटुः पाण्डवा यस्य दांसा.

कास्ते दुर्योधनोऽसौ कथयत न रुषा द्रुपदमभ्यागतौ स्वः ।

यह अभिमानी राजा कहां है, जिसने कपट घूत किया था, लाख के घर में आग लगवाया था, दुःशासन आदि सौ भाइयों का जो राजा था, कर्ण का जो मित्र था, द्रोपदी के

पेश और घस गींचने में जो यज्ञ निपुण था और पाण्डव जिसके दास हैं, यह दुर्योधन कहता है । मैं क्रोध में नहीं पड़ूँगा, हम दोनों (भीम और अर्जुन) दोनों के लिए आशंका है । (भीम की उक्ति)

कुर्वन्वावासाहतानां रणशिरसि जना बन्दिमादुदेहभारान्
अधून्मिधं कर्थाग्रददन्तु जलसमो यान्धरा यान्धवेभ्यः ।
भारान्तां जालिदेवान् हतनरतदने सन्दिशान् गृत्रहृन्—
रत्न भास्वान् प्रपातः सव रिपुगिर्यं वीरिर्धमां वरानि ।

सगे सम्यन्धों रण में मरे वृद्धों का शरीर दाह करें, यान्धव अपने अपने यान्धवों को आंसू युक्त जल किस प्रकार दें, मरे हुए मनुष्यों के वन में अपने स्वजनों के शरीर, जो गृह और कड़ो द्वार खण्डित किये गये हैं—टूटें, सूर्य अस्त हुआ, अथ अपनी अपनी सेनाएं हटा लो (युधिष्ठिर की युक्ति)

अग्रदुमुत्रममिठचण्डगदामिधात
संज्ञर्गितोर्युगलस्य सुयोधनस्य
स्वानावनदधनशोणितशोणपाणि
हस्तयिष्यति कर्षास्तव देवि भीमः ।

फटकते हुए भुजाओं से धुमायी गयी प्रचण्ड गदा के आघात से दुर्योधन का जङ्घा में तोड़ दूँगा, उसके गाँठे रथिर से भीम तुम्हारे केशों को सघारेंगा । (भीमसेन की प्रतीका)

भट्ट भल्लट ।

यह बहुत प्राचीन कवि हैं “भल्लट शतक” नाम का एक ग्रन्थ इनका पाया जाता है, जो कि इनके स्फुट श्लोकों का संग्रह है । जगट, कैयट, उवट मम्मट के समान भल्लट नाम भी है । इस नामसाम्य के कारण इनका कश्मीरी होना माना जाता है । यह कथ उत्पन्न हुए थे इसका कुछ पता नहीं चलता । ग्यारहवीं सदी के मम्मट भट्ट ने अपने ग्रन्थ “काव्य प्रकाश” में इनके कई श्लोक उद्धृत किये हैं । लेखरीली से यह भट्ट हरि से पीछे के कवि मान्य होते हैं । शब्दालङ्कार पर इनका अत्यधिक प्रेम है । जिससे कालिदास के पीछे के ये कवि मान्य पड़ते हैं । इनके स्फुट श्लोक प्रायः अन्योक्ति प्रधान हैं और वे थड़े ही मार्कों के हैं, नीचों के पद्यों से यह बात प्रमाणित होगी ।

दानार्थिना मधुकरा यदि कर्मतालैर्दूरीकृताः करिवरेण मदान्धबुध्या
तस्यैव गण्डयुगमण्डनहानिरेषा मृद्गाः पुनर्यिदृचपचने वसन्ति ॥१॥

दान (प्रतिग्रह या मद) चाहनेवाले भ्रमरों को यदि गज-राज ने मदान्ध होने के कारण अपने कानों को फटफटा कर दूर कर दिया तो इससे उसी गजराज के ही कोपलों की शोभा न होगी, इससे उसीकी हानि भी होगी, भ्रमर तो निले फमलों पर जाकर आश्रय ले ही लेंगे ।

भास्वीशिखु प्रथितवैष विपासिनेम्बः संस्पृतेऽमुषित्वेषतपैव दूरान् ।
इहाकरागमवराहकराहिताभिः किं भाषयत्यपरमूर्मिपरम्परभिः ॥२॥

स्त्री बच्चे सभी इस बात को जानते हैं कि प्यासों के भय से समुद्र अपने जल को खारा बना लेता है और इस प्रकार उसकी रक्षा करता है, फिर भी भयानक मकरो के कारण विकराल अपनी लहरियाँ में लोगों को क्यों भयभीत करता है ।

भावदहृत्रिमसदागदित्वापभित्तिरारोपितो मृगपतेः पश्यी यदि रक्षा ।
मत्तोभकुम्भतटपाटनलग्नदस्य नादं करिष्यति कथं हरिणाभिपश्य ॥१॥

यदि कुत्ते के कंधे पर सटा बना कर यह सिंह के भासन पर धड़ा दिया जाय तो वह मतवाले हाथियों के मस्तक फाड़ने वाले मृगराज का गर्जन कैसे करेगा ।

रक्षाया दिशः प्रवितताः मलिन विषेण

पाशैर्मही द्रुतमुक्ता उव्यिता वनान्ता

स्थापाः पदाभ्यनु मरान्ति गुदीन चापाः

कं देशमाभ्यनु मृगपति मृगाणाम् ॥२॥

सब दिशाओं में रस्मी फैल गयी है, जल में विष मिला दिया गया है और पाश से पृथ्वी घेर दी गयी और व-भाग में जल रक्षा है धनुष लेकर ध्याप पीछा कर रहा है, इस समय मृगराज किस देश में जाकर मारनी रक्षा करे ।

विशाल शास्त्रमात्रवदनमुभयं बीज्य कुमुमं

मुकुत्तामोद बुद्धिः कृत्तमवि भवेदस्य मयूषाम्

इतिष्वाग्नीवाग्निं कृत्तमवि च दैवान्पारिचर्यं

वितादे मूढोऽयः सति मरणा सोऽव्यवहृतः ॥३॥

सेमल के बड़े और मनोहर फूल देखकर शुक ने समझा कि इसका फल भी अति ही सुन्दर होगा यही समझकर उसने उस वृक्ष की सेवा की, भाग्य से फल भी हुआ पर पकने पर उसमें से रस निकली और उसे भी वायु उड़ा ले गया ।

पथि निपतितं शून्ये दृष्ट्वा निराश्रयाननां
नयदधिपतौ गर्वोच्चैः समुद्रतटस्थैः
निभ्र समुभितास्तास्ताश्चेष्टाविकारशलाकुलो ।
यदि न कुदते कायः काकः कदा नु करिष्यति ॥ ८ ॥

शून्य मार्ग में खुले मुंहवाली वही की हड्डियां देखकर भी यदि काना कौआ गर्व न करे, अभिमान से अपना शिर ऊंचा न करे, मनोविकारों से व्याकुल होकर अपने अनुरूप 'चेष्टाएं' न करे तो फिर वह क्या करेगा ।

किं ज्ञातीऽसि क्षतुष्पथे घनतरुच्छायोऽसि किं छाया ।
युक्तश्चेत् फलितोऽसि किं फलभरैराख्योऽपि किं सचतः ॥
हे तद्गृक्ष सहस्व सप्रतिससे शाखाशिलाकर्षण—
क्षोभामौदनममृतानि भवतः स्वीरेव दुश्चेष्टितैः ॥ ११ ॥

घोरास्ते पर क्यों हो, घनी छायावाले क्यों हो, छाया से युक्त हुए तो फलवाले क्यों हो, यदि फल से युक्त हुए तो नय क्यों गये, हे मित्र अच्छे वृक्ष, अपने ही कर्मों से भय डालियों का तोड़ा जाना, टहनियों का खींचा जाना सहो ।

प्रावायो मणयो हरिर्जलचरो लक्ष्मी इवो मानुषी,
मुक्तोपाः सिक्ता प्रवहन्तिः शेषाल मम्मः सुधा,

तीरे कन्य महोरहाः किमपरं नमापि रत्नाकरो
दूरे कथंरसायनं निकटसृष्ट्यापि नो शाम्यति

जहाँ के पत्थरमणि हैं, जलचर विष्णु भगवान हैं, ल
जल की लो हैं, मोतियां बाल हैं मृगों का लता गेवाल
जल अमृत है, तीर पर कलशवृक्ष हैं और क्या, नाम भी रस
कर है । भाई दूर से तो मगुद्र की सभी याते' कानों को द
करता हैं, पर समाप जानें से तो व्यास भी दूर नहीं होती ।

भेकेन वयस्यता सरोपवरुणं यत्कृष्णमपांनने
दातुं कर्णचपेट मुञ्जितभिषा हलः सुमुज्जामित
पद्याधोमुखमक्षिणो विदधता नागेन तत् स्थितं
तत्सर्वविष मन्त्रियो भगवतः कस्यापि लीलावितम्

क्रोध से कठोर बोलता हुआ इस मंडक ने कृष्ण
गाल में चपत लगाने के लिए निर्भय होकर जा हाथ उ
हैं और साँव ने नीचे मुँह करके जो अपनी भारी दाढ़ क
हैं, यह सब विष के मन्त्र जाननेवाले किसी मगरार
बोल है ।

ज्ञाननिधि था । किसी किसी का कहना है कि भयभूति कुमारिल भट्ट के शिष्य थे, पर इस वक्ति में कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है ।

ये यशोवर्मा के आश्रय में रहते थे, काश्मीर के राजा मुक्तापीड ने जब यशोवर्मा को परास्त किया, तब भयभूति आदि कवि भी मुक्तापीड के यहां चले गये । राज सरङ्गिणी में लिखा है—

कविर्वाक्यविराजप्रभोभयभूत्यादितोवित्तः

जितो यवो यशोवर्मा वत्पदस्तुतिवन्दिताम्ना

मुक्तापीड का समय सातवीं सदी का अन्तिम काल माना जाता है, इससे भयभूति का भी समय ७वीं सदी ही मानना चाहिये ।

आचार्य गोवर्धन ने भयभूति के संयन्ध में लिखा है—

भयभूतेः संव्यादूधभूरेष भारती भक्ति,

एतद्वृत्तकारुण्ये किमन्यथा रोदिति प्राचा

ये कण्ठरस की कविता बनाने में निश्चिह्न समझे जाते थे । इनकी कण्ठरस की कविता सुनकर पत्थर भी रो देता था, यही बात आचार्य गोवर्धन ने भी लिखी है ।

दृश्य भयभूति भी सब रसों में कण्ठरस को ही मुख्य समझते थे । ये समझते थे कि अन्य रस इसी कण्ठरस के भेद हैं । भयभूति कहते हैंः—

एको रसः कण्ठ एव निमित्तमेदाद्

भिन्नः शृणु शृण्विव धवने विवर्तान्

आवर्त बुदबुदतरङ्ग मयान् विकारान्

अम्भो यथा सलिलमेव हि तन्वमस्तम् ।

(उत्तर राम चरित सं)

सर्वेषां व्यग्रहर्तृषु कुतो ह्यपवन्नीयता,
यथा श्रोणी तथा बायां साधुष्वे दुर्जनो जनः ।

मिसफा व्यवहार सादा होता है उसकी शुद्धता वै
समझी जाय, स्त्री और बाणों की शुद्धता के विषय में श
लोग सन्देह करते हैं ।

किमपि किमपि मन्दं मन्दमामत्तिवोणा-
द्विरलितद्वयोः जगत्तोरकमेव,
अशिथिलपरिरम्भत्पातृर्नैकैः कदोऽन्जो-
रविदितगतयामा रात्रिरेव स्वरसीव ।

प्रेमयश हम दोनों का मुंह पास पास था और कम पति
धीरे धीरे हम लोग कुछ कुछ घोंलते थे, दृढ़ मालिगन में
एक एक हाथ व्याप्त न थे, इस प्रकार हम लोगों को मानव
की नहीं हुआ और रात ही घोंत गयी ।

हे राम दक्षिण, मृगस्य शिशोर्द्विजस्य
जीवातये विमृज्य शूद्रमुनी कृपाणम्,
रामस्य धातुरक्षेप्ति निर्भरगर्भसिद्ध-
सीताविवासनपटोः करुणा कुतस्ते ।

रामचन्द्र शूद्र मुनि का वध करने के समय अपने हाथ
रहते हैं - हे दक्षिण हस्त, मरे हुए ब्राह्मण पुत्र के जीने के लि
शूद्र मुनि पर तलवार चलाओ, तुम तो राम के हाथ हो, तु
गर्भवती सीता का निर्वासन किया है, तुमको दया न
आ सकती है ।

परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं
दधती विलोलकयरीकमाननम्

करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी,
विरहव्यथेत यन्मेति जानकी ॥

जानकी के सुन्दर कपोल पीले और दुर्बल होगये हैं, चेष्टा-
पाश बिखरे हुए हैं, यह करुणा की मूर्ति मालूम पड़ती है
अथवा शरीरधारिणी विरह व्यथा मालूम पड़ती है, यह
जानकी यन् में आरही हैं ।

एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्-
भिन्नः पृथक्पृथगिव भवते विवर्तान्,
आयत्तं बुद्बुदं तरङ्गमथाश्च विचरन्
भस्मो यथा मलिलभेदहि तत्समस्तम् ।

एक एक ही है और यह करुणरस है, वही भेद के निमित्त
अनेक रूपों में प्रतीयमान होता है, जिस प्रकार जल एक
ही है, पर रूप भेद के कारण यह आयत्त, बुद्बुद, तरङ्ग आदि
नाम धारण करता है ।

मन्तामयादिभ्यपि मानुषाणां
दुःखानि संवन्धिर्वियोगजानि, ✓
दृष्टे जने प्रेयसि दुःखदार्ढ्ये
सौत्र सदसौख्ये संलब्धवन्ते ॥

मनुष्यों के सततरूप से यहनेवाला भी सम्बन्धियों के
वियोग से उत्पन्न दुःख, प्रिय के दर्शन से और बढ़ जाता है
यह दुःख हो जाता है, उसकी हजारों धारार्पें यहने लगती हैं ।

पश्चान् पुच्छं वहति विपुलं तत्र भूवोत्पन्नम्
दीर्घमीवः समवति सुरास्यस्य चन्वार एव
शष्पाभ्यसि प्रकरति शकृन् पिण्डकानाग्रमात्रान्
किं व्याख्यानेनैव जति सपुनरून्मे दयेहि वामः ।

गणेशवादी मंत्रालयों को पूजा करना है भगवान्
करती है कौनसे गणेशों के भी शत्रुओं का भय
धीरों का कहना है कि गन्ना वाणी मनुष्यों की मान

। मान्यता माधव मे)

गणेश नमोऽस्तुते गणेशाय नमोऽस्तुते गणेशाय नमोऽस्तुते
गणेशाय नमोऽस्तुते गणेशाय नमोऽस्तुते गणेशाय नमोऽस्तुते
गणेशाय नमोऽस्तुते गणेशाय नमोऽस्तुते गणेशाय नमोऽस्तुते
गणेशाय नमोऽस्तुते गणेशाय नमोऽस्तुते गणेशाय नमोऽस्तुते

महादेव ताण्डव नृत्य कर रहे हैं नन्दी बड़े आनन्द
शृङ्ग यज्ञ रहा है, शृङ्ग का शब्द सुन कर काति'कोर का
मयूर भाषा, उसको देखकर साँप उरें और ये गणेश की सुई
में घुसने लगे, गणेश चिल्लाने लगे और अपनी सुई पदों

ते, इससे उनके कपौलस्थल पर बैठे हुए भीरे उड़ने लगे
 और वे उड़कर दिशाओं में फैल गये, गणेश का यह चिल्लाना
 और खूँट का पटकना आप लोगों की रक्षा करे ।

भ्यतिपन्नति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु-

नं नालु बद्धिपाधीन्यीतयः संभ्रमन्ते ।

विकल्पति हि पतद्गुणोदये पुण्डरीकं

द्रवति च दिमरश्मावुदगते चन्द्रकान्तः ।

भीतर रहनेवाला कोई कारण विशेष ही प्रेम का कारण
 ; बाहरी याते प्रीति के कारण नहीं हो सकती, सूर्योदय के
 साथ कमल चिफसित होता है और चन्द्रमा के उदय होने के
 समय चन्द्रकान्त मणि द्रवित होता है ।

प्रेमाद्राः प्रणयस्तृप्तः परिचयादुद्गादरागोदया—

एतास्ता मुग्धहृभोनिसर्ममधुरार्थेऽप्या भवेयुर्मयि ।

पाश्वाम्बःकरणस्य बाह्यकरणव्यापारोधी क्षणा-

दाभासाभरिषज्जितास्त्वपि भवत्यानन्दसाग्री कथः ॥

प्रेम से धात्र प्रणय को (श्रेष्ठ प्रेम को) स्पर्श करनेवाली
 भीर परिचय के कारण जिसमें नाद्र राग का उदय हुआ है,
 ऐसी स्वभावसुन्दर उसकी चेष्टाएँ यदि मेरे प्रति हों, जिनकी
 सम्भाषना करने पर भी आनन्दमय विमोह उत्पन्न होजाता
 है, भीर बाहरी इन्द्रियों का भान जाता रहता है ।

ग्लानस्य त्रीवशुभस्य विकासनानि

संतर्पणानि सचलेन्द्रियमोहनानि

आनन्दनानि हृदयेकरसापनानि

दिष्टा मयाप्यधिगतानि वसोभूतानि ।

मुरझाये जीवपुष्प को विकसित करनेवाले, कृत करने वाले और सब इन्द्रियों को मोहित करने वाले हृदय के प्रसिद्ध रसायन और आनन्द देनेवाले चचनामृत मैंने भी सुनें, यह प्रसन्नता की बात है ।

दलति हृदयं गात्रोद्देगं द्विधा तु न भिद्यते
बहति विकलः कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम् ।

ज्वलयति तन्मन्तदाहः करोति न भ्रमसा-
स्पृहरति विधिममंछेदी न कृन्तति जीविनम् ॥

हृदय विदीर्ण हुआ जाता है, उद्देग बढ़ता जाता है पर वह दो टुकड़े नहीं होजाता । इन्द्रिय-ज्ञान सूख्य यह शरीर मोह प्राप्त करता है, पर प्राण नहीं जाते, अन्तर्दाह शरीर को तपा रहा है, पर जला नहीं देता ।

भनियतलक्षितस्मितं विराज-

म्बतिपयक्रीमलदक्षकुङ्कुमलाग्रम् ।

वदनकमलकं शिशोःस्मरामि

स्मलदग्ममधुस मुग्ध अलितं मे ॥

जिसके रोंने हँसने का कोई ठिकाना ही नहीं था, फूल की कील के समान छोटे छोटे दांत थे, तुम्हारी घाल्याश्रय के उस मुख का मैं स्मरण करता हूँ और स्पष्ट तुम्हारी मोली माली घाली को स्मरण करता हूँ ।

भर्तृहरि ।

शतफलय पाप्मणदीप और मटीकाय ये तीन प्रण्य भर्तृ-
हरि के नाम से प्रसिद्ध हैं । पर इन तीनों के कर्ता एक भर्तृ-
हरि नहीं हैं । भर्तृहरि भी तीन हैं और उन लोगों में एक एक

ग्रन्थ बनाया है । शतकत्रय के कर्ता मर्तुहरि विक्रमादित्य के भाई थे । इनकी स्त्री का नाम विंगला था । विंगला के दुर्व्यवहारों से दुःखी होकर इन्होंने संसार का त्याग किया । इनका काल ईसवी सदी के ५७ वर्ष पहले है । चाक्यपदीप ध्याकरण का एक बहुत प्रमाणिक और माननीय ग्रन्थ है । शतकत्रय में नीति भट्टार और वैराग्य का वर्णन है और भट्टीकाव्य में ध्याकरण के प्रयोगों की प्रधानता रखकर रामचरित का वर्णन किया गया है । शतकत्रय के कर्ता राजा विक्रमादित्य के भाई हैं जो कि ईसवी सदी के पहले हुए थे, चाक्यपदीप के कर्ता मर्तुहरि छठी सदी के अन्त और सातवीं सदी के प्रारम्भ में हुए थे । भट्टीकाव्य के कर्ता मर्तुहरि नहीं किन्तु भट्टी हैं । उन्होंने स्वयं यह बात भट्टीकाव्य के अन्त में लिखी है ।

नीचे शतकत्रय के कुछ श्लोक उद्धृत किये जाते हैं—

भञ्जः सुखमाराध्या सुखतरमाराध्यते विशेषतः

तजानलव दुर्भिक्षं ब्रह्मविषत नरं न रक्षयति ।

मूर्ख मनुष्य परिश्रम के बिना ही समझाया जा सकता है और जो विद्वान् है वह और भी बिना परिश्रम के समझाया जा सकता है, पर थोड़ा जाननेवाले मनुष्य को ब्रह्मा भी नहीं समझा सकते ।

बालं बालमृणालतन्तुभिरसौ रोहं समुद्रमभते,

छंशुं बज्रमधीन् शिरोपकुसुमप्रान्तेन सप्रसृजते,

माधवं मधुविन्दुना रक्षयितुं क्षाराम्बुधरोदतं

नेष्टुं वाञ्छन्ति यः खलान् पथि सतां सूक्तैः सुधास्पर्शिविभिः ।

यह मनुष्य हाथी को कोमलकमल के सूत्रों से बांधना चाहता है । शिरोप कुसुम के द्वारा हीरे को छेदना चाहता है और मधुविन्दु के द्वारा क्षार समुद्र के जल को मीठा बनाना

चाहता है जो दुष्टों को भयानक मर्त्य घापी से सज्जनों के
पर ले जाना चाहता है ।

साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः
साक्षात्पशुः पुष्टविशण्वहीनः
मृगं न तादृशपित्रोवमान
स्तद्विभागधेयं परमं पशुनाम् ।

साहित्य सङ्गीत और कला से विहीन मनुष्य पूछ सी
रहित साक्षान् पशु है, यह बिना घास खाये हो जीता है और
यह उसका बड़ा भारी भाग्य है ।

भम्भोजिनोवननिवामविलासमेव —
हंसस्य हन्ति निगरां कुपितो विधाता
मत्स्यस्य दुग्धत्रयभेदविधौ प्रसिद्धाद्
वैदग्ध्य कीर्तिमपहनुमसौ समर्थः ।

यदि भाग्य हंस पर बहुत अप्रसन्न हो जाय तो उसका
कमल घन में रहना छुड़ा सकता है, पर दूध और
अलग करने की जो उसकी निपुणता की कीर्ति है, उ
नहीं छीन सकता ।

जपन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम् ।

ये पुण्यात्मा और रसों को यश में रखनेवाले कवी
विजयो होते हैं, जिनके यश के शरीर में जरा और मरण का
भय नहीं रहता ।

राजन् दुष्टशसि यदि क्षितिभेनुमेना
तेनाय वत्सजिव लोहमसुं पुषाण,

तस्मिन्स्य सम्बन्धनिशं परिपोष्यमाने
नामाफलैः फलति कल्पलतेव भूमिः ।

राजन, यदि तुम इस पृथ्वीरूपी गौ को दूहना चाहते हो तो बछड़ा-रूपी इस प्रजा का पालन करो, जब तुम प्रजा का पालन करोगे तो यह भूमि कल्प वृक्ष के समान अनेक प्रकार के फल देगी ।

रत्नैर्महाद्देस्तुषुर्न देशा
न भेत्तिरे भीमविषेचामीठम्,
सुधां विना न प्रयत्नुदि'राम'
नश्विञ्जितायांद्दित्स्मन्ति धीराः ।

देवतां अमूल्य रत्नों को पाकर तुम न हुए भयङ्कर विष से भी डरे, जब तक अमृत न मिला तब तक उन लोगों ने दम न लिया, समुद्र मंथन करते ही रहे, धीर मनुष्य अपने उद्देश्य को बिना सिद्ध किये विश्राम नहीं लेते ।

शस्ति निपतितानां स्तस्तथमित्थकानाम्
मुकुलितनयनानां किञ्चिदुन्मीलितानाम्,
सुरतजमित्तैदस्विन्नगण्डस्थलीना-
मधरमधु वधूनां भाग्यवन्तः पिबन्ति ।

जिनके बिसरे हुए केश आकर छाती पर पड़े हैं, जिनकी आँखें थोड़ी थोड़ी खुली हैं और चन्द हैं, सुरत की थकावट से जिनके कपोलों पर पसीना आगया है, ऐसी स्त्रियों का अधरमधु भाग्यवान् पीते हैं ।

मधुरम् मधुरैरपि कोकिला-
कलकलैर्मन्यस्य च वायुभिः

चाहता है जो दुष्टों को अमृतमयी वाणी से सज्जनों के मन पर ले जाना चाहता है ।

साहित्यमद्वीतकलाविहीनः
साक्षात्पशुः पुष्टविषाणद्वीनः
नृणं न स्वाद्वपिज्ञोयमान
स्तद्भागधेयं परमं पशुनाम् ।

साहित्य सद्गीत और कला से विहीन मनुष्य पूँछ लँग रहित साक्षान् पशु है, यह बिना घास पाये ही जीता है और यह उसका बड़ा भारी भाग्य है ।

अभोजितोषननिषामविलासमेव —
ईसस्य हस्ति निमरां कुपितो विधाता
मत्स्यस्य दुग्धप्रकभेदविधौ प्रतिदाम्
वैदग्ध्य कीर्तिमपहनुमयी ममथे ।

यदि भाग्य हम पर बहुत अप्रसन्न हो जाय तो उग कमल घन में रहना छुड़ा सकता है, पर दूध और जल भलग करने की जो उसकी निपुणता की कीर्ति है, उसे श नहीं छीन सकता ।

अयस्मि न मुहूर्तिनां रमतिडाः कवीचराः
नारिण्येषां यशःशायं जरामरणजं भयम् ।

ये पूजयागमा और रत्नों को यश में रचनेवाले कवीच विजयां होतें हैं, जिनके यश के शरीर में जरा और मरण भय नहीं रहता ।

राजन् दुग्धमि यदि जितिधेनुमेनां
नेनाय वलमिव मोक्षमयुं पुण्यम् ।

तरिर्वैश्वस्यवनिर्श परिपोष्यमाने
नानाफलैः फलति कम्पलतेव भूमिः ।

राजन, यदि तुम इस पृथ्वीरूपी गौ को दूहना चाहते हो तो बछड़ारूपी इस प्रजा का पालन करो, जब तुम प्रजा का पालन करोगे तो यह भूमि कल्प वृक्ष के समान अनेक प्रकार के फल देगी ।

रत्नैर्महार्दिसुतपुनं देवा
न भेजिरे भीमविप्रेषमीतम्,
सुखो विना न प्रययुर्दिराम
न निश्चितार्थाद्विस्ममितीरीराः ।

देवतां अमूल्य रत्नों को पाकर तुम न हुए भयङ्कर विष हो भी थे न उरे, जब तक अमृत न मिला तब तक उन लोगों ने दम न लिया, समुद्र मंथन करते ही रहे, धीरे धीरे अपने उद्देश्य को बिना सिद्ध किये बिधाम नहीं लेते ।

इति निपतितानां स्वस्तधमिह कानाम्
मुकुलितनयनानां किंचिदुष्मीलितानाम्,
सुरतजनितसेदस्विन्नगण्डस्थलीना-
मधरमधु वहूनां भाग्यवन्ताः विवन्ति ।

जिनके बिखरे हुए केश आकर छाती पर पड़े हैं, जिनकी भाँसें थोड़ी थोड़ी खुली हैं और धम्द हैं, सुरत की थकावट से जिनके कपोलों पर पसीना आगया है, ऐसी मधरमधु भाग्यवान् पीते हैं ।

मधरमधु मधरमधु

विरहिणः प्रसिद्धानि शरीरिणो
विपदि हन्त सुधापि विषयने ।

यह वसन्त ऋतु फोकिल के मधुर शब्द और मलयाचल
के पायु से भी विरहियों को मार रहा है, दुःख की घात है कि
विपत्ति के समय अमृत भी विष बन जाता है ।

सावदेव कृतिनामपि स्फुरग्वेन निर्मलविवेकदीपकः
सावदेव न कुरंगवधुरां ताव्यते चपललोचनाग्रहैः ।

पण्डितों के भी हृदय में सभी तक विवेक का नि-
दीपक प्रकाश करता है, जब तक ये मृगनेत्रों के च-
कटाक्षों से तड़ित नहीं होते ।

मतेभकुम्भपरिधादिनि कुङ्कुमाद्रौ
कान्तापपोधरतटे रसखेदशिन्नः
वक्षो निधाय मुनपञ्जरमण्यवतीं
धन्यः क्षपां क्षपयति क्षणलम्घनिव्रः ।

जो मनुष्य थक कर मतवाले हाथी के मस्तक के समान
बड़े कान्ता के स्नानतट पर वक्षः स्थल रखकर भुज पंजर से
बंधा हुआ शीघ्रही सोकर रात बिता देता है, वह धन्य है ।

यद् यस्य नास्ति रुचिरं तस्मिन्नास्यात्पृष्टा मनोलेऽपि ।
रमणीयेऽपि सुधांशी न मयः कामः सरोजिन्याः ॥

जो जिसको सुन्दर नहीं मालूम होता वह उसको नहीं
वाहता है, चन्द्रमा सुन्दर है पर कमलिनी उसपर प्रीति नहीं
करती ।

सन्ध्यातं निधिशङ्कया क्षितितलं ध्याता विरेचोत्तिवो
निरतीर्णः सरितां पतिवृत्तयो यत्नेन सन्तोषिताः

मन्त्राराधनकृतपरेण मनसा नीताः श्मशाने निराः

प्रातः काराचरादौऽपि न मया कृष्णेऽपुना मुञ्चयाम् ।

घन प्राप्ति को लालसा से शृंगी को मोरा, पर्यंत की धातुओं को फूँका, समुद्र पार किया, पड़े यदा से राजाओं को सन्तुष्ट किया, मन्त्राराधन करने के लिए श्मशान में रातें बितायो, पर एक कूटो कौटो भी न मिली, हे कृष्ण, भय हो मुझे छोड़ ।

न ध्यानं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसारविच्छिन्नये,

स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुपंमोऽपि शोपाजितः

नारीपीनप्रबोधतोऽपुनलं स्वप्नेऽपि नास्ति कृतं

मानुः केवलमेव यौवनचरच्छेदे कुटारा वयम् ।

संसार के कष्टों को दूर करने के लिए ईश्वर के धर्मों का विधिवत् ध्यान नहीं किया, स्वर्ग के कपाट खोलने के लिए धर्म भी उपाजित नहीं किया, स्त्री का स्वप्न में भी धातिङ्गम नहीं किया, हम लोग केवल माता के यौवनछेदन करने के लिए कुटार हैं ।

अज्ञानमाहृष्यं फलनु भलमस्तीमदहने,

स मीनोऽव्यशानाद्दिशयुतमश्नानु विशिनम्,

विज्ञानमोऽव्येते वयमिह विपन्नास्तदस्मिन्—

मनुष्यामः कामानहह गहनो मोहमहिमा ।

पतंग पिता जाने अग्नि में कूदता है, मछली भी अज्ञान से ही घनसी का मांस खाती है, पर हम लोग जानबूझ कर विपत्तियों के आकर विषय सुख को नहीं छोड़ते, यह मोह की ही महिमा है ।

तत्र राजा वयमप्युपासितगुह्यज्ञामिमानोन्नताः —
 क्वातरुचं विभवैर्वशांसि कवयो दिक्षु प्रतन्यन्ति मः
 इत्थं मानद् नातिदूरमुभयोरस्यावयोन्तरं
 यद्यस्मासु पराङ्मुखोऽसि वयमप्येकान्ततो निरुताः

तुम राजा हो, तो हम भी गुरु की उपासना से प्राप्त ज्ञान
 कारण उन्नत अत्माभिमान रखते हैं। तुम धन के द्वारा
 सेइ हो, और हमारा यश विद्वान् ज्योतिष दिशाओं में फैलाने
 इस तरह हममें और तुममें कुछ बहुत भेद नहीं है, पर जब
 मैं हम से पराङ्मुख हो तो हम भी बिल्कुल तुम्हारे और
 लापरवाह हैं।

वयमिह परितुष्टा बल्लभैस्त्वं दुष्टनैः —
 सम इह परितोषो निर्विशेषोऽप्येषः
 स तु भवतु हरिद्रो यस्य मृणा विशाला
 मनसि चपरितुष्टे कोऽर्थवान् को हरिद्रः ।

हम लोग बल्लभ से सन्तुष्ट होने हैं और तुम्हारे लिए
 कपड़े बाहिष्, पर हमारे तुम्हारे सन्तोष में कोई भेद नहीं,
 हरिद्र तो वह है जिसकी मृणा बड़ी है, जब मन सन्तुष्ट है
 तो धनी कीन और हरिद्र कीन ?

भारवि ।

किरातागुनीय काय के कर्मा महाकवि भारवि गान्धी
 सही में उज्ज्वल हुए थे। यह बात एक शिलालेख के मोड़े
 डिब्बे खोद के प्रमाणित होती है।

येनापोत्रि य चेदम
निरमपेक्षिणी विवेकिनाञ्जनचेरम,
न विजयतो रविहीतिः
कविताधितकालिकस्य भारविहीतिः ।

महाकवि दण्डी ने किरातार्जुनीय के १५ वें सर्ग के चारें
श्लोक धरने काव्यादर्श में उद्धृत किये हैं । किरातार्जुनीय
के अतिरिक्त और कोई ग्रन्थ इन्होंने लिखा है कि नहीं, इसका
ना नहीं मिलता ।

इष्यतां स वधमोयमशेषं
नेश्वरं परमना सति माध्वी ।
भारदेवमनुनीय कथं वा
विप्रियाणि अजयन्मनुनेयः ।

उसकी निन्दा चाहे जितनी करो, पर स्वामी के विषय में
कटोरता अच्छी नहीं, किसी प्रकार अनुकूल बनाकर लेनाओ
ःतिहूलाचरण से अनुकूल न बनाना ।

हारी चतुरधिपाणि कपोली
कोविदं न्यपि कुतः कलहोत्थाः ।
कामिनामिति वचः पुनरुक्तं
प्रीतये नवनवत्वमिवाव ॥

“शार की मोर सांसे हैं, हाथ पर कपोल हैं, और
जीवन तुमपर भयलम्बित है यह बारबार कलह क्यों करेगी”
कहा हुआ यह वचन कामियों की प्रसन्नता के लिए नयाही
मालूम पड़ता था ।

प्रपञ्चलोचैःकुसुमानि मातिनी
विपद्गमोत्रं दयितेन लम्बिता ।

स्वै राजा वयमप्युपासितगुह्यज्ञामिमालोन्नताः —
 गणातस्त्वं विमद्वैर्यशांमि कवयो दिक्षु प्रतन्वन्ति नः
 हर्ष्य मानद् नातिदूरमुपयोरन्यावयोरन्तरं
 ययस्मासु पराङ्मुखोऽसि वयमघं कान्ततां निरुताः

तुम राजा हो, तो हम भी गुरु की उपासना से प्राप्त ज्ञान के कारण उन्नत अत्माभिमान रखते हैं। तुम घन के द्वारा प्रसिद्ध हो, और हमारा यश विद्वान् जोग दिशाओं में फैलते हैं, इस तरह हममें और तुममें कुछ बहुत भेद नहीं है, पर जब तुम हम से पराङ्मुख हो तो हम भी बिलकुल तुम्हारे मोर से छापरयाह हैं।

वयमिह परितुष्टा बलकलैस्त्वं दुकूलैः —
 सम इह परितोषो निर्विशेषावशेषः
 स तु भवतु दरिद्रो यस्य वृष्णा विशाला
 मनसि अपरितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः ।

हम लोग धलकल से सन्तुष्ट होते हैं और तुम्हारे लिए कपड़े ब्राह्मण, पर हमारे तुम्हारे सन्तोष में कोई भेद नहीं। दरिद्र तो वह है जिसकी वृष्णा बड़ी है, जब मन सन्तुष्ट है तो धनी कौन और दरिद्र कौन ?

भारवि ।

किराताशुभीय काव्य के कर्ता महाकवि भारवि सातवीं सदी में उत्पन्न हुए थे। यह बात एक शिलालेख के पीछे लिखे श्लोक से प्रमाणित होती है।

देनायेति न वेदम्

स्तिरगधेतिषी शिवेकिनात्रिनवेदम्,

■ विज्ञपतां रविकीर्तिः ।

कविताधितकरादिदास भारविकीर्तिः ।

महाकवि दण्डी ने 'पिराताहु'नीय के १५ में 'सर्ग' के चार श्लोक धरने काव्यादर्श में उद्धृत किये हैं । 'पिराताहु'नीय के अनिश्चित और कोई ग्रन्थ इन्होंने लिखा है कि नहीं, इसका पता नहीं मिलना ।

दृश्यतां स वक्षसोपमशेन

नेष्टरे परस्मात् सति माध्वी ।

भारवैनमनुनीय कथं वा

विशिषाणि जनयन्मनुषेयः ।

उसकी निन्दा चाहे जितनी करो, गर स्वामी के विषय में कटोरता भण्डी नहीं, किसी प्रकार अनुकूल बनाकर लेनाभी प्रतिकूलाचरण से अनुकूल न बनाना ।

द्वारि चतुराधिपाणि कपोलो

जीवितं स्वयि कुतः कलहोत्पाः ।

कामिनानिति वचः पुनरुक्तं

प्रीतये भवनवत्प्रमियाय ॥

"द्वार की ओर आंखें हैं, हाथ पर कपोल हैं, और जीवन सुमपर भयलम्बित है यह बारबार कलह क्यों करेगी" कहा हुआ यह वचन कामिनी की प्रसन्नता के लिए नयाही मालूम पड़ता था ।

प्रपञ्चतोषैःकुसुमानि मानिनी

विपद्गोत्रं दयितेन लम्बिता ।

किसी स्त्री की ओल में पुष्पधूल पड़ गयी थी, मुँह से फूँक कर पति उसे निकाल रहा था, पर यह निकाल न सका, अतएव उस स्त्री ने पति को स्तन से धक्का मारा, उसके स्तन ऊँचे और मोटे थे ।

प्रियकरप्रहिताम्बुद्वयच्छटा-
रत्नरूपमोलितलोचनपाप्महो ।
हृदि क्वाचिदमह्य मनोभय-
ज्वलनतापदग्ना जगृहेवताम् ॥

पति अपने हाथों से जल के छींटे दे रहा था और उन छींटों से स्त्री को भाँसे बन्द होजाती थी, पर इससे उस स्त्री के हृदय में सहन करने के अयोग्य कामाग्नि उत्पन्न होगयी ।

करी पुनाना नयपहावाहूरी
वयस्वगाधे किल जातर्मभ्रमा ।
सतीश्वनिर्वाण्यमघाण्ड्यदूषित
प्रियादुर्लभमवाप मानिनी ॥

अगाध जल में कोई स्त्री घबड़ा गयी और यह नयपहाय के समान अपने हाथों को कँपाने लगी, तब उसे प्रियतम का आलिङ्गन प्राप्त हुआ, यह सन्धियों से कहने योग्य भी न था और धृष्टता से दूषित भी न था ।

प्रियेय संमध्य विपश्यन्निधा-
मुपाहितां वक्षसि पीवरस्तने ।
यत्र न काचिद्विजहौ अकाविलो
वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि ॥

सौत के सामने ही गूँथ कर प्रिय ने उसके गले में बाँध
पहना दी, यह माला जल के कारण खराब होगयी है, तो मैं
यह छोड़ती नहीं। गुण प्रेम में रहता है, किसी वस्तु में नहीं

तिरोहितान्तानि नितान्तमाकुले-
रपां विगाहादलकैः प्रमारिमः ।
ययुर्वृणां वदनानि तुल्यतां
क्षिरेषु नृन्दान्नरितैः सरोरुहैः ॥

जल में स्नान करने के कारण उसके घाल बिसर जाते
हैं और फैल जाते हैं, जिससे उसका मुख ढक जाता है
भ्रमर, समूह से छिपे हुए कमल के समान उस समय स्त्रियों
के मुख, मालूम पड़ते थे ।

रम्यतामुपगते नयनानां
लोहितायति सद्वनमरीचौ ।
भाससाद विरहस्य धरिणीं,
चक्रवाकमिषु नाग्यभितापः

सूर्य जय आँखों को प्रिय मालूम होने लगा और जब
यह लाल हो गया, उस समय चक्रवाक की दम्पती ने
का त्याग किया और उसे ताप होने लगा ।

हृदये दयितेन हृते ययुषि सवेप धुनि पयि निराशोके ।
अपि कथय कथमनङ्ग प्रियगृह ममि सारिका नयति ॥

हृदय प्रिय ने हर लिया, शरीर काँप रहा है, रा
अन्धकार है, कामदेव, अभिसारिका को पति के घर
कैसे ले जा रहे हो ।

दुर्दिननिशीपलिकिते त्रिःश्रृंखारणु नगरपीपीतुः ।

पत्नी विदेशमाने परं मुगं जपनचपलायाः ॥

दुर्दिन को अन्धकारमयी अर्धरात्रि में, नगर के मार्गों के
एकसाँ होने पर और पति के विदेश जाने पर, अचन चपला
स्त्रियों को बहुत मुत्त होता है ।

हान्तदेशम बहु सदिरालीमि-

शान्तनेय रतये रमणीमिः ।

मम्मधेन पणितुसमतीनां

शायशः सगलितमप्युपकारि ॥

मित्र को बारबार सन्देश भेजनेवाली स्त्रियाँ रति के लिए
चली हो गयीं, काम के पश होने के कारण उनकी बुद्धि छु
गयी थी । देखा जाता है कि कहीं कहीं विचलित होने
से भी उपकार हो जाता है ।

कामिनीवद्वननिर्जितकान्तिः शोभि तु नदि शशाक शशाङ्कः ।

छजयेव विमलं वपुराणु शीधूर्णधपकेणु समज ॥

चन्द्रमा शोभित न हो सका, क्योंकि उसकी शोभा को
स्त्रियों के मुख ने जीत लिया था । इससे छजित होकर
सुन्दर शरीर प्राप्त करने के लिए वह मदिश से मरे व्याले में
डूब गया ।

यश विगृह्णाति तदा इत यशः

करोति मैत्रीमय दूषिताणुषाः

स्वितिं समीदयोभवथा पतीश्वरः

करोन्ववशोपदत्तं शृणुजनम् ॥

यदि उससे विरोध करें तो यश नष्ट होता है, यदि मित्रता
की आज्ञा तो सब गुणों पर ही पानी फिरता है, इस प्रकार

चारों ओर विचार कर बुद्धिमान मनुष्य छोटे आदमियों का तिरस्कारही करते हैं ।

तावदाभीयते लक्ष्म्या तवदस्य स्थिरं यशः ।

पुरुषस्तावदेवासौ यावन्मानात्र हीयते ॥

तमी तक इसके पास लक्ष्मी रहती है, तमी तक इसका यश स्थिर रहता है । और पुरुष भी तमी तक है जब तक इसका मान बना हुआ है ।

सपुमानयं वज्रन्मा यस्य नाग्निं पुरः स्थिते ।

नान्ध्यामट् गुष्टिमन्येति सत्यायामुद्यताङ्गुलिः ॥

उसी मनुष्य का जन्म लेना सार्थक है, उत्तम मनुष्य की गणना के समय जिसके नाम के लिए पहले अंगुली उठती है और पुनः दूसरी कोई अंगुली नहीं उठती, उसके समान दूसरा नहीं है । अर्थात् न तो कोई उसके बराबर होई और न उसके पेसा ही है ।

उवलितं न हिरण्यरेतसं

वपमास्कन्दति भस्मना जनः ।

अभिभूतिभवादसूनतः

मुखमुष्कन्ति न चाम मानिनः ॥

जलती हुई आग को कोई नहीं छूता, पर भस्मरासी को सभी छूते हैं । इसी कारण पराजय के डर से मानी मनुष्य मुख से प्राण छोड़ते हैं, पर अपना तेज नहीं छोड़ते ।

सहसा विदधीत न क्रिया-

मवियेकः परमापदां पदम् ।

नृणुने हि विपुष्यकारिणः

गुणनुष्णाः स्वयमेव सम्पदः ॥

जल्दी में कोई काम न करना चाहिये, क्योंकि अधिक
सब आपत्तियों का मूल है, गुणों में अनुराग रखनेवालों
सम्पत्तियां विचारपूर्वक काम करनेवालों को स्वयं
चुनती हैं ।

मयेभा स्यःइतमाधरणाव
किं करिष्यति अनो बहुकृत्यः
विद्यते यदि न कश्चिदुपायः
मर्त्यलोकेपरितोषकरो यः ॥

सब प्रकार से अपना दिन करना चाहिये, बहुत थोड़े
घातों से कुछ भी नहीं होता, संसार में ऐसा कोई भी उपाय
नहीं है जिससे सब लोग प्रसन्न किये जा सकें ।

मुनिरस्मि निरागसः कुतो मे
अयमित्येव न भूतयेऽभिमानः ।
परार्थेषु बहुमन्त्रणा
किमिव हस्ति दुरात्मनामरुहधम् ॥

मैं मुनि हूँ, निरपराध हूँ, मुझे क्या भय है, इस प्रकार
का अभिमान ठीक नहीं, क्योंकि दूसरों के उदय से जलने
वाले दुरात्माओं के लिए कुछ असाध्य नहीं ।

प्रव्रजन्ति ते सूक्ष्मिणः परामर्श
भवन्ति मायाविषु ये न भाविनः
प्रविश्य हि प्रव्रजन्ति शठस्तथा विधा-
नसंकुलाङ्गा जिज्ञासा इवेव यः ॥

उन मनुष्यों का पराजय हो जाता है, जो छलकपट
करनेवालों के प्रति छलकपट नहीं करते । जिस प्रकार

खुले अंग के मनुष्यों के शरीर में घुस कर वाप उन्हें मार देते हैं उसी प्रकार धूर्त मनुष्य भी ।

जितेन्द्रियत्वं विनयस्य कारणं

गुणप्रकरणं विनयाद्वाप्यते ।

गुणाधिष्ठे पुंसि जनोऽनुरज्यते

जनानुरागप्रमया हि संपदः ॥

जितेन्द्रिय होना विनय का कारण है, गुण से विनय की वृद्धि होती है, अधिक गुणवान् ने मनुष्य प्रेम करते हैं और मनुष्यों के प्रेम से ही सब सम्पत्तियां प्राप्त होती हैं ।

महाकवि भास ।

ये संस्कृत के बहुत बड़े कवि हैं । कहा जाता है कि एतान् ने २२ नाटक बनाये थे । भास के बनाये नाटक अथवा अनुपलब्ध थे, पर महामहोपाध्याय पं० गणपति शास्त्री की कृपा से ट्रायकोर संस्कृत सीरीज़ में इनके कतिपय नाटक प्रकाशित हुए हैं । यह प्रसन्नता की बात है । इनके विषय में एक श्लोक है जिससे संस्कृत साहित्य में इनका क्या स्थान है इसका पता लगता है ।

“भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः”

भास कवि कविता कामिनी के हास हैं । ये कवि कालिदास से भी प्राचीन हैं । कालिदास ने अपने मालविकाग्निमित्र में लिखा है ।

“अथितयशसांभाससौमित्रकविपुत्रादीनां प्रख्यातवि-
क्रम्य वरमानक्यैः कालिदासरथ कुनी कथं बहुमानः”

भास के नाटकों में स्वप्नवासनादत्त पद्या ही प्रसिद्ध
नाटक है । इसके विषय में राजशेखर ने लिखा है ।

भासनाटकचक्रेऽविच्छेदकैः क्षिप्ते पटीक्षिपुम्,
स्वप्नवासनादत्तस्य दाहकोऽभूत्तथायकः ।

महाकवि सायभट्ट ने भी हर्षचरित में भास का उल्लेख
किया है ।

सुवचार्कनारम्भेर्नाट्यैर्बहुभूमिकैः
सपत्न्यैर्वंशो लेभे भासो देवदुर्लभिवः ।

इन धारों से और इनके श्लोकों से इनके महाकवि होने
का परिचय मिलता है ।

दग्धे मनोभव त्री पाहाकुण्डकुम्भमर्तुर्नर्मनैः ।

गिबडीहुतासमाना जाता रोमीबली बली ॥ १ ॥

काम घृष्ट के जल जाने पर स्तनों में रफ़ेरे दूध अमृत के
ढाटा त्रियली के आलबाल में रोमाधली रूपी काली उत्पन्न हुई !

धेवा मुदा प्रियतमामुलमीधलीय

भासः स्वभावललितो विकटश्च वेपः ॥

धेनेदमीदूधमदूरयत्त मोक्षवर्त्म

दीर्घांगुरस्तु भगवान्त्त पिनाकपाणिः ॥ २ ॥

शराय पीना चाहिये, स्त्री का मुँह देखना चाहिये,
स्वभाव सुन्दर और विकटवेष ग्रहण करना चाहिये, जिसने
मोक्षका मार्ग ऐसा पतलाया है, वह पिनाकपाणि भगवान्
शिव धिरजीवी हों ।

तीक्ष्णं रविस्तपति नीच इवाचिराजः

शृङ्गं स्वरूप्यन्नति मिश्रमिवाकृतशः ।

तोयं प्रसीदति गुणैरिव चिन्तायाः

कामी दरिद्र इव शोषमुपैति पटुः ॥ ३ ॥

सूर्य तीखा तप रहा है, जैसे हाल का घन पाया हुआ कोय
नोच । मृग अपनी सींग छोड़ रहा है जैसे अहङ्ग मित्र । उन
स्वच्छ हो रहा है जैसे मुनि का अन्तःकरण और दरिद्र कामी
के समान पटु सूख रहा है ।

बाला च सा बिदितपद्मशरप्रपञ्चा,

तन्वी च मा स्तनभरीचिवाद्भयति ।

लज्जां समुद्रहति सा सुरतावसाने

हा कापि सा किमिव किं कथयामि तस्याः ॥ ४ ॥

यह बाला है, पर कामदेव के प्रपञ्चों का उसे ज्ञान है,
यह तन्वी है पर स्तनों को याद से उसका शरीर भी बढ़ गया
है, सुरत के अन्त में यह लज्जित हो जाती है । यह कौन है
कैसी है, यह बात मैं कैसे कहूँ ।

कपाले भाशाः पण्डिति करोल्लेदि शशिन-

रत्नचिह्नद्रोताम्रिसमिति करी संकटपति ।

रत्नाम्ने तन्वस्थाद्भरति वनिताप्यंशुकमिति

प्रमामलभ्यद्रो जगदिदमहो विप्लवपति ॥ ५ ॥

चन्द्रमा की स्वच्छ किरणें कटोरे में पड़ी हैं, यिही उसे
दूध समझ कर चाट रही है । वृक्षां के छिद्र में पड़ी किरणों
को कमल तन्तु समझ कर हाथी खींचता है, बिछौने पर पड़ी
हुरे किरणों को छियां घटा समझती हैं इसीसे रत्नाम्ने में
उसे खींचती हैं । इस प्रकार प्रमा से भक्त होकर चन्द्रमा
जगत को पागल बना रहा है ।

कटिनहृदये सुप्त क्रोधं सुखप्रतिपातकं

लिखति दिवसं यातं यातं यमः किञ्च मानिनि ।

वयसि तरुणे नैतद्भुक्तं चले च समागमे

भवति कलहो यावत्तावद्दूरं सुमगे रतम् ॥ ६ ॥

हे कठोर हृदयवाली क्रोध छोड़ दो, क्योंकि यह सुख का माशक है, हे मानिनि, दोते दिनों की संख्या यमराज लिखा करता है । नयी उमर में यह बात अच्छी नहीं, हाथ भी तो खञ्जल है इसका क्या ठिकाना । जिस समय तुम फलह कर रही हो उस समय में तुम्हें प्रेम करना चाहिए ।

कृतककृतकैर्मायासख्यैस्त्वयास्म्यतिवञ्चिता

निभृत निभृतैः कार्यालापैर्मयाम्युपलक्षितम् ।

भवतु चिदितं नेष्टाई ते वृथा किमु लिखसे,

इदमसद्वना त्वं निःस्नेहः समेन समं गतम् ॥ ७ ॥

यनाप्रदी ध्यावारों से तुमने हमको ठग लिया है, तुम्हारे लिपे हुए कार्यों से मुझे इस बात का ज्ञान हो गया है । अच्छा, मालूम हो गया, तुम्हें हम प्रिय नहीं है, व्यर्थ खेद क्यों करते हो, तुम स्नेह रहित हो और हममें सहन करने की शक्ति नहीं, चलो दोनों बराबर हुए ।

विरहिणितलावतृक्षीपम्य विधति निशापति-

गोलितविभावस्याशेषाद्य ह्युक्तिर्मस्या त्वेः

भमिनववधूरोपश्रादुः करीपतनून्वा

दसरत्ननारत्नेष्वरस्तुषारसमीरयः ॥ ८ ॥

विरहिणी स्त्री के मुख के समान चन्द्रमा हो गया है, नष्ट विभव की आवाज के समान सूर्य की घुति चिकनी हो गयी है,

नयी चह के क्रोध के समान भूसी की आगम नोहर हो गयी है
दुष्ट पुरुषों के आलिङ्गन के समान ठण्डो हवा चल रही है ।

यदपि विबुधैः सिन्धोरन्तः कयात्रिदुपाजितं
तदपि सरलं चाह स्त्रीणां मुनेषु विलोच्यते ।

सुरसुमनसः श्वासामोदे शशीच कपोलयो-

रमृतमधरे तिर्यग्भूते विषं च विलोचने ॥ ९ ॥

देवताओं ने बड़े कष्टों से समुद्र में से जो वस्तु पायी है,
वे सब सुन्दर स्त्रियों के मुख पर देखी जाती हैं । श्वासरी
सुगन्धि में सुरसुमनस (देवता या देवताओं का फूल)
देनों गालों पर चन्द्रमा, ओष्ठ में अमृत और टेंद्री माँलों में
विष है ।

दुःखात्ते मयि दुःखिता भवति या दृष्टे प्रहृष्टा तथा ।

दीने दैन्यमुपैति रोपपरये पृथ्वं यच्चो भाषते ॥

कालं वेति कथाः करोति निपुणा मत्स'स्तवे रगति

भार्या मन्त्रिवरः सखा परिजनः सैका बहुत्य' गता ॥ १० ॥

मेरे दुःखित होने पर जो दुःखित होती है और प्रसन्न
होने पर प्रसन्न होती है, मेरी दीनता में जो दीन होजाती है,
मेरे क्रोध के समय जो फोमल घातें करती है, समय समझती
है, समझदारी की घातें करती है और मेरे मित्रों पर अनुराग
करती है, यह एकही स्त्री भार्या, मन्त्री, सखा, नौकर अनेक
हो गयी है ।

भिक्षाटन ।

यें भिक्षाटन नामक एक लण्ड काव्य के कर्ता हैं । इनका दूसरा नाम शिवजी है । इन्होंने अपने काव्य में कालिदास और धाण का उल्लेख किया है । इनकी कविताएँ पड़ी सरस हैं । त्रिपुरदाह के बाद शिव ने जो भिक्षा की है, उसी कथानक को लेकर इन्होंने अपना भिक्षाटन काव्य बनाया है । भिक्षाटन काव्य के कर्ता होने के कारण ये भी उसी नाम से प्रसिद्ध हैं ।

भिक्षाटनेन पुरहुवपुराङ्गनाना-
माकस्मिहोमपविधाधिनि कश्मौली ।
तामामरङ्ग सगजंरामानसानां
गानाविधानि चरितानि चर्य वक्षामः ॥

महादेव समरायत्री नगरी में भिक्षाटन के लिए निकले, उससे देवाननाएँ आकस्मिक उगसव करने लगीं, अनङ्ग धाण से जर्जर उन स्त्रियों के अनेक प्रकार के चरित्र मैं कहता ॥

काचिद्विचारितवहिर्ममना जनन्या
ददु, श्रियं भवनजालकमाप्रसाद ।
तस्या विनोचनमदुश्चत दाभदम
कन्धोपकृद्दशफरोपमिन क्षणेन ॥

किसी की माता ने उसे बाहर जाने से रोक दिया, भत-
एव यह प्रिय को देखने के लिए घर की छिड़काँपर चली
गयी, उस समय उसकी आँखें पंखों में फँसी हुई मछली के
समान भालूम होती थीं ।

काचिद्विचारितवहिर्ममना जनन्या
ददु, हरं भवनजालकमाप्रसाद ॥

तस्या विलोचनयुग्मं धनञ्जालयन्त्र-
मरुद्मीनमिषु नोपमितं बभूव ॥

किसी स्त्री को माता ने उसे बाहर जाने से रोक दिया।
इसलिए वह महादेव को देखने के लिए घर की छिड़की
गयी, उस समय उसकी आंखें जालवद्ध दो मछलियों
समान मालूम होती थीं ।

कृष्णं च कापि गुरुणैव जनेन रोध-
मुल्लङ्घ्य नायकसमीपमुर्व प्रतस्थे ॥
हा इन्त शीघ्रगमनप्रतिरोधहेतु-
स्तस्याः पुनः स्तनभरोपि गुरुर्वभूव ॥

कोई स्त्री बड़े कष्टों से भीड़ को डाँक कर नायक के पास
पहुँचने के लिए प्रस्थित हुई, पर हाथ, उसका स्तनभार उस
शीघ्र गमन का बाधक हुआ, वह शीघ्र न चल सकी ।

प्राणेश विश्वसिखिर्ब मदीया
तत्रैव नेषा दिवसाः क्रियन्तः ।
संप्रत्ययोग्यस्थितिरेष देशः
करा यदिन्दोरपि तापयन्ति ॥

हे प्राणेश, मेरा यह निवेदन है अभी कुछ दिन आप यहाँ
वितायें, क्योंकि इस समय यह देश रहने के योग्य नहीं
क्योंकि यहाँ चन्द्रमा की किरणें भी ताप देती हैं ।

अस्थानगामिगिरालंकरणैरुपेता
भूयः षट्स्यलननिन्दुतिप्रतप्ता ।
बाण्यैव कापि कुरुवेर्जनहस्यमान्त
मादिनर्गता निजगृहाद्गता मदाग्रा ॥

जल्दी के कारण किसी स्त्री ने गहनों को यथास्थान नहीं
 रखा था, यह अनुराग से अन्धो हो गयी थी, यह शीघ्रता-
 कि घर से निकली, उसके पैर फिसल गये, यह उनको
 पाने लगी, इन कारणों से यह देखने में भी अच्छी नहीं
 लूम होती थी, कुफ़रि की वाणी के समान यह लोगों की
 ती की पात्र हुई ।

अलेखु सत्सु निर्वाणा वयमग्रं वयं गुणान्
 ह्यं वा तत्कामाग्ने रयकपविदम्बना ॥

खलों की चर्तमानता में हम लोग गुण भर्जन करने
 लगे, हम लोगों का यह प्रयत्न चारों के गाँव में रय करी-
 का उपहासाहस प्रयत्न के समान है ।

वर्षेने स्वर्षयेकोमी मंडराशानशासना ।

मडुइरोवत्करोद्वभूतः पुष्पश्चाकुलोद्भवः ॥

स्वर्द्ध से ये दोनों अनेक प्रकार की सम्पत्तियों द्वारा
 हैं, कूड़े करकट से उत्पन्न भङ्गुर और दुष्कुल में उत्पन्न
 ।

अश्वन्ति वानि विरहे विदलन्ति वानि

योगे प्रियेय सखि किं वलयैः पूलं तैः ।

नैवास्ति यैर्विपदि मंपदि चोपयोग-

स्त्रीः मंगमं न गतु वाञ्छन्ति कोपि मर्त्यः ॥

जो वलय विरह की दशा में गिर जाते हैं और प्रिय से
 १ की दशा में टूट जाते हैं, हे सखि ! ऐसे इन कंकणों से
 लाभ, जिसका सम्पत्ति और विपत्ति में कोई उपयोग
 उसका साथ कोई भी मनुष्य नहीं चाहता ।

धाविःशान्तिश्चान्नेषवन्दनदुमर्कषा ।

एकोदकनमोमार्गदिङ्मुडदिधमेरषराः ॥

दिखायी पड़नेवाली शारा और पहलों के द्वारा जिसके नन्दन वन के वृक्षों के कम्पित करने की शान मालूम पड़ती है, जिसके जलमे आकाश मार्ग के दृश्य जाने के कारण दिशाओं का ज्ञान जाता रहा ।

भावत'गर्त'म'भान्न'विमान'प्लव'विष्वा ।

नीलजीमूतसीवालकूनरेग्यादरित्ता ॥

जिसके आवर्त'रूपी गढ़े में भ्रमण करनेवाले विमान डूबते उतराते हैं, नीले मेघरूपी शंखालों में जिसने अपने तटों को भूषित किया है ।

भवलेपभराक्रान्ता सुरलोकतरंगिणी ।

पापात पाप्यंतोकास्तत्रटाकान्तरगह्वरे ॥

गर्य के भार से युक्त देवलोक की यह नदी शिर की जटा के गहर में गिरी है ।

दुःखे सुखे च रज एव बभूव देव-

ह्नादृगिजये मदति गीतमधर्मपत्न्याः ।

यस्माद्गुणेन रजसा विकृतिं गता सा

रामस्य पादरजसा विकृतिं प्रपेदे ॥

गीतम की स्त्री अहल्या को बड़े दुःख और सुख का कारण रज ही हुआ । रजोगुण के द्वारा उसे पत्थर की योनि मिली और रामचन्द्र के चरणरज से पुनः उसे अपना स्वरूप मिला ।

आवालदृशमनुगच्छति रामभद्र-

मेया पुरी शदिह मा ससु निर्गुणा स्वाम् ।

भोजदेव ।

इत्यादरादिव धरा बहुधा विधाप
हलिच्छन्दाभिजतनुं तमनु प्रतस्थे ॥

न्द्र के साथ चालक घूँद आदि समी जा रहे ।
'तो मैं निगुंण समझी जाऊँगी, यह समा
की भूमि ने आइर पूर्वक धूलि के ध्वाज से
अनेक बताया और यह रामचन्द्र के साथ च

'पमुल्लविमुल्लेन श्वेन कान्तेन साक'
दितरि विधिराकाकानताप प्रजम्भाम् ।

कुशलमिति मत्वा तुनमन्हाव धात्री
देवमुत्तकात्' शोभुभिः पर्यङ्गार्णव ॥

राजसुख छोड़ दिया है, उसके साथ भाग्यक
न को जा रहो है । इस समय यह मनुजल है
पृथ्वी ने लोगों के मुँह पर का भाँख धूलि से

तानुमाररसनिग'तपीरवर्गा
यानमात्रगृहचत्वरराजमार्गा ।
मु'क्तभोगमुत्रगन्धमिव क्षणेन
वी बभूव रघुपु'गवराजधानी ॥

अनुसरण करने के प्रेम में पीर वर्ग राजधानी
। अथ यहां पर द्वार सड़कों आदि पच रही
दुष्ट सर्प के समान रघुध्रिष्ठ की राजधानी शं
गयी ।

“यह कैसे रह सकेगा, इस प्रकार सोच कर वन देव-
ताओं ने रामचन्द्र को आसुमरी आँखों से देखन और राम-
चन्द्र सुनी पर्णशाला को देखते रहे, उनकी चेतना लुप्त होगई
और वे विलाप करने लगे (सीताहरण के समय की यह
वात है)

हा कष्टमत्र नहि सा कमदं प्रवृत्त-
मालोक्यामि यदुलामिह पादमुद्राम् ।
मा वीक्ष्य सूनमगूरीतमृतं सुहृत्-
मस्तर्हिता तदपु रोषवतीव सीता ॥

हाय, यहाँ सीता नहीं है यह क्या हुआ, मैं यहाँ उबड़-
खाड़ ढेर के चिन्ह देखता हूँ, मैं मृग को बिना लिये घला
भाया हूँ यह देखकर क्या, वह पोंड़ी ढेर के लिए क्रोध से
यहीं किसी वृक्ष की ओट में छिप तो नहीं गयी है ।

त्वदभिलषितपूर्वार्थं वञ्चितः पञ्चवक्त्रा-
मचरमचरमोऽहं मोहभावा प्रज्ञानात् ।
तदिह सरलकुन्दे नैव रोषस्य कालः
सुमुखि मम सुखं किं सादसीताविभोगम् ॥

हे भोली, जानकी, तुम्हारे ही मनोरथ की पूर्ति के लिए
ढगा जाकर धजानी मनुष्यों का अप्रभामो होकर मैं पञ्चवक्त्री
में घूम आया । सुवर्ण मृग को दूँदना अज्ञानी का काम है, पर
तुम्हारी इच्छापूर्ति के लिए मैंने यह भी किया । यह समय
क्रोध करने का नहीं है, हे सुमुखि, क्या राम के मुख ने कभी
सीता का विभोग देखा है ।

यद्यपि कौतुकमपूर्वमृगे शृगाक्षि
चान्द्रं हरामि हरिषं मम सन्निधेहि ।

वावन्न मुञ्चसि मया हृतमेणमेन'

तावद्वदधालु तव वक्तृतुलां मृगाहः ॥

हे मृगाक्षि, यदि तुम बहुत मृग लेना चाहती हो तो चन्द्रमा का हरिण मैं ले आता हूँ, तुम मेरे पास आओ, मेरे द्वारा लाये हुए इस मृग को जब तक तुम न छोड़ोगी तब तक के लिए चन्द्रमा तुम्हारे मुख की समानता करे। अर्थात् हरिण के निकलने से चन्द्रमा भी निकलटू हो जायगा।

सप्राणा चेज्जनकतनया किं न तिष्ठेत मल्ल'

द्विष्यैः सत्त्वैर्न ललु निहता रक्तसिका न गृभी ।

गोदावरां पुलिनविहतिं रामशून्या न कुर्या-

द्युक्तं नक्तं चरकवलनात्संस्थिता सर्वथा सा ॥

यदि जानकीजीती है तो मेरे सामने क्यों नहीं आती, हिंस्र जन्तुओं ने उसे मारा भी नहीं है, क्योंकि पूर्ण रक्षित से रंगी नहीं है। राम के बिना गोदावरी के तीर पर यह घमने भी नहीं जाती। इससे राक्षसों ने उसे अपदय ल लिया।

आंकान्तरप्रणयिनश्चक्षुरां प्रलम्बु-

माश्रितकालमनिलहय यदि प्रयामि ।

विश्राप्य मामपि समाह्वय साध्वि तमै

मीनिविरेव भाने निदवानु राक्षसम् ॥

हम गये हुए श्वसुर को प्रणाम करने के लिए वनग के निपट समय को डाँक कर यदि तुम जानो हो तो हे माया! उनसे कहकर मुझको भी बुलाओ, लक्ष्मण ही भवन का राक्षस सीप देंगे।

मङ्गक

ये कश्मीर निवासी थे । इनको लोग कर्षिकार मंख और पण्डित मंखक भी कहते थे । इन्होंने थीकण्ठचरित नाम का एक महाकाव्य और मंखकोश नाम का एक कोश बनाया है । डा० द्यूलर ने काश्मीर के कवियों सम्बन्धी अपने रिपोर्ट में लिखा है कि मङ्गक का थीकण्ठचरित ११३५ ई० से ११४५ ई० तक के बीच के समय में बना है । इनके विषय में इससे अधिक और कुछ मात्तम नहीं ।

इनके कुछ श्लोक सुनिये —

भजतवाणिश्यरहस्यमुदा वे काव्यमार्गे वृधतेऽभिमानम् ।

ते गारुडीपानन धीम्य मन्त्राङ्गालाङ्गलास्वादनमारभन्ते ॥१॥

जिन्हें पाण्डित्य रहस्य का कुछ भी ज्ञान नहीं है, उन्हें काव्यमार्ग में अभिमान नहीं करना चाहिए । यदि कोई ऐसा करे तो उसका करना माण्डू मन्त्रों को न जान कर बिय खाने के समान होगा ।

सरस्वतीमातुरभुषितं न वः कवित्रयाणिश्वरनस्मन'धराः । —

कथं न वर्षाद्रमनात्तमीदृशो दिवादिदिनं प्रीतिविशेषमरजुने ॥२॥

जिसने सरस्वती माता के कवित्त और पाण्डित्य रूपी स्तनों का घटुन दिनों भर पान नहीं किया है उसके समस्त मङ्ग कैसे सुन्दर हो सकते और दिनोंदिन उसकी पुष्टिही कैसे हो सकती है ?

त्रिनीष'शिक्षा इव हृत्पदल्यमास्वनीमाइवसावर्ततिः ।

वे क्षीरतीरपविभाददृष्टा त्रिनेत्रिने कथनो जयन्ति ॥३॥

हृदय में घास करनेवाली सरस्वती के वाहन राजहंसों से शिक्षा पाये हुए के समान जो विवेकी क्षीर नीर को विल-
गाने में समर्थ हैं, वे ही कवि विजयी होते हैं ।

काव्यामृतं दुर्जनराहुनीतं प्राप्य भवेन्नो मुमनोजनस्य ।

सद्यकमप्याजविराजमानतैक्षण्यप्रकर्षं यदि नाम न स्यात् ॥१॥

दुर्जन राहु के द्वारा चुराया हुआ काव्यामृत कभी सज्जनों
को प्राप्त न होता, यदि उसमें अधिक तीक्ष्णता न होनी ।

वितासाहित्यविदापरत्र गुणः कथंचिच्छयते कवीनाम् ।

भालम्बते तत्क्षणमम्मसीव विस्तारमन्यत्र न तैलविन्दुः ॥५॥

साहित्यज्ञों को छोड़ कर कवियों के गुण अन्यत्र प्रसिद्ध
नहीं होते । तत्क्षण जल में हो तैलविन्दु विस्तार पाता है;
अन्यत्र नहीं ।

अत्यर्थवक्रम्वमनर्थकं वा शून्या नु सर्वान्यगुणैर्व्यनक्ति ।

असूय्यतादूषितया तथा किं तुच्छश्वतुच्छच्छट्येव वाचा ॥९॥

कविता की अनावश्यक अधिक कठिनता उसको अन्य
सब गुणों से शून्य घटलाती है, जो होने योग्य नहीं । जिसका
रसास्वाद होना कठिन हो उस यचन से लाभ क्या ? वह तो
कुत्ते की पूँछ के समान है ।

नीचस्तनोन्वयं नितान्त-काल्प्यं पुण्यातु साधम्वं भृदत्रनेन ।

विना ॥ जायेत कथं तदीय क्षोदेनसारस्वतद्वक्त्रसादः ॥३॥

नीच अथु गिरावे', यह अत्यन्त काला भी हो और अत्रन
के साथ समानता भी प्राप्त कर ले, पर विना उसके रज के
(के) सारस्वत दृष्टि की प्रसन्नता नहीं प्राप्त होती ।

अथोक्तिं चेष पदशुद्धिरपारित सापि

ओ रीतिरस्ति यदि सा घटना कुवस्तथा ।

साप्यस्ति चेष नरधमगतिमन्देश

स्वर्धे विना त्वमहो गहनं कविम्वम् ॥८॥

अर्थ है तो पदशुद्धि नहीं; यदि पदशुद्धि है तो रीति नहीं है। यदि रीति भी है तो शब्दों का विन्यास अजीब तरह का है यदि यह भी है तो नया फलनार्थ नहीं है, इस के बिना यह कठिन कविता का मार्ग व्यर्थ ही है ।

श्लोकेषु कविमगतिर्धनं दास्य'कम्—

नरधमः कविउपागुक्तिधनु'ल्लाभाः ।

कलाभिरुपगमनार्थं गुणे धरीके

केतुमित्रमन्तावती कश्चिन्नुदन्ति ॥९॥

कवीश्वरों की उक्तिरूपी धनुष की बकला और अच्छी तरह का दृढ़ धारण प्रशंसनीय ही है । अर्थात् कवियों की कविता की कठिनता प्रशंसनीय ही है, क्योंकि उसके गुण (धनुष की तरह ही या गुण) कागों तक पहुँचने पर मन्त्रों मनुष्यों का विश्व शीघ्र ही टूट जाता है, अर्थात् समझ में न आने के कारण मन्त्रों मनुष्यों का भ्रष्टकार नष्ट हो जाता है ।

कारणेतरमात्मोद्भाविधिर्विप्रीत्यविप्रीत्य के

दास्य'कम्गुणो दुरा कनियवे लम्बादुल्लभकिते ।

शब्दोद्भाय कथय'तु कथय'तु लम्बादुल्लभकिते

देवुपायकरोतिविजयकर्मकदितल्लकोदयम् ॥१०॥

ओ शीघ्र रूपको विघोड़ कर उसके सार भाग काकलाव को ईश्वरता परने बनाते थे, वे लम्बा भाग

चले गये । इस समय तो ऐसे कवि उत्पन्न होते हैं जो
प्रास और कठिन चित्र यमक रूप आदि के काटि एव
करते हैं ।

परधोर्कास्तोकाननुदिवसमभ्यस्य ननु ये ।

धनुष्पादौ कुयु'बंदव इह ते सन्ति कथयः ॥

भविच्छिप्रोद्गच्छमलधिलहरीरीतिमुदयः ।

सुहृदावैशद्यं दधति किञ्च केवाग्रन गिरः ॥११॥

प्रतिदिन दूसरों के कुछ श्लोकों का कण्ठस्थ कर के धार
पद के श्लोक बना देनेवाले कवियों की कमी नहीं। ये बहुत
हैं। समुद्र की लहरों के समान सतत निफलने पातों,
हृदय को हरने वालों किसी किसी की कविता होती है, और
वही उज्यलता धारण करता है ।

वियोगिनी-प्रलाप ।

भालि कल्पय पुरः करदीपं चन्द्रमण्डलमिति प्रथिनेन ।

मन्वनेन विहितं ममचक्षुर्मन्धु पाण्डुरतमोगुणकेन ॥ १२॥

हे सखि, हमारे भागें हाथ का दीपक ले भामो, क्योंकि
चन्द्रमण्डल नाम में प्रसिद्ध पीले मन्वकार के ठार में
भाँवें टँक गयी हैं ।

कोदरं निमिरमेव कलहूच्छ्रमा बहनि ह्यन शशाङ्कः ।

वत्कनैरिव विदुग्गनि दृढिमांशुशो दग्निदोत्रविशोते ॥१३॥

यह चन्द्रमा कलहू के व्याप्त में मन्वकार धारण करता
है, जिसके छोटें कण में भी प्रिणकारी दाँत के वियोग
दशा में हम लोगों की भाँवें टँक जाना है ।

काकहूटमिह किन्दनि लोको केव शंभुप्राप्तामा कृत् ।

कल्पद शिदिदीपु मुचोत्तु'रुग्यमु'तु विमशो दि दिने ॥१४॥

विष की लोग निन्दा करते हैं, पर विष खाने से ही शिव भजरामर होगये हैं । विरहिणियों के यमराज इस चन्द्रमा की लोग स्तुति करते हैं, इस न्याय के लिए क्या कहा जाय ?

कालकूटमधुनापि निहन्तुं हन्त नो वहसि लाघवमङ्गु ।

यद्वादिब निगीषंसविस्वामाद्यु मुं पति सुधाकर राहुः ॥ १५ ॥

हे चन्द्रमा, हम लोगों को मारने के लिए तुम इस समय भी कालकूट के राजा ने विष धारण करते हो । उस विष के भय ने राहु तुमको निगल कर भी छोड़ देता है ।

भ'वस्तप निशाकर वृन' कल्पितास्तरणकेतकलण्डैः ।

वेन वाण्डुरतरणु नयो नः कण्डकैरिव सुश्रिन् शरीरम् ॥ १६ ॥

हे निशाकर, तुम्हारे किरणें प्रौढ कोनक के टुकड़ों से बनायी गयी हैं, जिनकी कान्ति पीली है, पर कटि के समान हम लोगों के शरीर को ये छेदती हैं ।

अम्बुधेनुगमद्विभुभङ्गया वृनमौषंभिरिमास्त्रनपिण्डः ।

पत्किलास्य घटते नदि तृप्तिः सन्दिग्धाग्रमदृगम्बुसरिद्रिः ॥ १७ ॥

यह यड़वानल का अग्निपिण्ड समुद्र से चन्द्रमा के रूप में निकला है, यह सच बात है । क्योंकि सन्दिग्धा जियों की भाँवों से निकली हुई गदियों से इसकी तृप्ति नहीं होती ।

रात्रिरात्रमुकुमारशरीरः कः सहैत एव नाम मण्डान् ।

स्पर्शमाप्य सहसैव यदीयं चन्द्रकान्तदूषदोत्रि गलन्ति ॥ १८ ॥ /

हे रात्रिराज, कौन कोनल शरीर का मनुष्य तुम्हारी किरणों को सह सकता है ? जिनके स्पर्श होने से चन्द्रकान्त नामक पत्थर भी गल जाते हैं ।

युग्ममाद दयितोऽमयवद् पंकजं रहसि चाटकपातु ।

संस्तवन्धिभिर्लस्य हिमोशो प्राप्य कामलि दत्तं यदुपैति ॥१९॥

एकान्त की धातवीत में मेरे पति मेरे मुख को कमल
फहा करते थे । उनका यह कहना ठीकही है, क्योंकि वह
चन्द्रमा के प्रकाश से सम्पर्क होने पर एक विलसन् पीड़ा
या अनुभव करता है ।

पद्मनाभ कर्णां कुट भूयो विप्रदेण परितूरय राहुम् ।

येन तज्जटकोदरसायी जात्यर्थविशुरपेक्ष विधुनः ॥२०॥

हेपद्मनाभ, पुनः भाव दया करें, राहु का शरीर जोड़ दें
जिससे चन्द्रमा राहु के पेट में खला जाय, और फिर हम
लोगों को यह कमी पीड़ा न दें ।

सन्कार्यमिदमेव तव हन्त काम्ना मायोऽपुरोऽभूत्परः समीरः ।

यद्गगाहतेयं सुलितालकस्य पर्यस्तवन्धः कचरीतिदेशः ॥२१॥

मेरे कार्य की सिद्धि के लिए तुम्हें मार्ग में मयङ्कुर म
का सामना करना पड़ा था यह मालुम होता है । क्यों
तुम्हारे केश विखर गये हैं और चोड़ो भी खुल गयीं
अपराधिनी सखी के प्रति उक्ति ।

संस्तव्य तं दुष्प्रतिभं यन्मुसलित्वया किं विहितोवागाहः ।

भाद्राण्यि गातायि तवासते यद्दत्तं च यद्विस्तृतं ललाटम् ॥२२॥

हे सखि, उस पापी को छूकर क्या तुमने स्नान कि
है ? क्योंकि तुम्हारे शरीर भीगे हैं और माथे का चन्दन
नहीं है ।

के न कमेणस्तिदयाद्वितीया तेनाधिकं सुन्दरि आविताभूः ।

यन्नाम्नति व्याकुलितेऽप्राणा नाद्यापि ते कम्पकलानुवन्धः ॥२३॥

हे सुन्दरि, किसी कारण विशेष से अधवा अकेली होने के कारण तुम बहुत डरी हुई सी मालूम पड़ती हो । तुम्हारी आँखें घबड़ायी हुई सी हैं और तुम इस समय तक भी काँप रही हो ।

स एव कारतुरिकपञ्जम्मा दीपं ध्रुवं से म्यधिताङ्गरागा ।

विभर्षिं वत्सोरभसङ्गिभृङ्गदेशमर्णैर्भङ्गगुल्मङ्गमङ्गम् ॥२४॥

उसो कस्तूरी के घन अङ्गराग ही से तुम्हें बहुत कष्ट दिया उसके सारंग से भारे आ आकर तुम्हें फाटते हैं, जिससे तुम्हारा भङ्ग भङ्ग छिन्न गया है ।

मलानखि प्रस्तुत आस्त तस्य केनापि सार्धं किमु संप्रसारः ।

यद्धारणार्थं सहसा विशन्ती न्वं लघ्वलोन्मेष पथं गतासि ॥२५॥

क्या जब तुम गयी उस समय किसीसे वह युद्ध कर रहा था ? नखों की लड़ाई यहाँ दारुण थी ? जिसको छुड़ाने के लिए तुम पीछ में गयी थीर तुम्हें नष्ट लग गये ?

मयूर भट्ट

वे संस्कृत के प्रसिद्ध कवि हैं । राजा हर्षवर्धन के सम-कालीन और उनकी सभा के वे पण्डित थे । बाणभट्ट ने अपने हर्षचरित में उनके लिए लिखा है —

हर्षं कविमुत्तमो गता अरयमोचरम्,

विषं विदुर्बभूवुः कापूरी कापूरी बाणं निवृत्तति”

मयूरमट्ट की कविता जब कवियों के भ्रमण गोचर होती उस समय उनका अभिमान चूर चूर हो जाता है। विप्रकार मयूर संपन्धी विप्र-विद्या से सर्पों का अभिमान चूर हो जाता है ।

जैनकवि मानतुंगाचार्य ने अपने भक्तामरस्तोत्र में मयूर को घाणमट्ट का श्वसुर बनलाया है। इसीके संपन्ध में एक किंवदन्ती भी प्रचलित है। घाणमट्ट और मयूर में यह संपन्ध तो था ही, इनमें मंत्री भी थी। एक दिन घाणमट्ट की स्त्री उनपर किसो कारण से नाराज़ थी। उसको मनाने के लिए घाणमट्ट प्रयत्न कर रहे थे, अन्त में हार कर घाण ने एक श्लोक बना कर पढ़ा, उस समय मयूर भी द्वार पर खड़े थे। घाण ने श्लोक के तीन चरण तो बना लिये, पर चौथा चरण मयूर ने बना दिया। यह देख कर घाण को खो लज्जित हुआ और उसने मयूर को कुछ होने का शाप दिया।

यह श्लोक नीचे लिखा जाता है।

गतमाया रात्रिः कृशतनु शशी शीर्षत इव,
प्रदीपोऽथ निद्रावशमुपगतो धूर्णत इव,
प्रणामान्ते मानसदपि न अहासि क्षुधमहो,
क्षुध प्रत्यासत्या हृदयमपि ते खण्डि कठिनम् ॥

(शर)

(मयूर)

उसी कुछ को दूर करने के लिए सौ श्लोकों से मयूरमट्ट ने सूर्य की स्तुति की है, जो सूर्यशतक के नाम से प्रसिद्ध है। यह आश्चर्योप ग्रन्थ समझा जाता है। इसके अतिरिक्त नका और भी कोई ग्रन्थ है कि नहीं, इसका पता नहीं।

विजये कुशलस्यस्यो न क्रीडितुमहमनेन सहभाषा ।

विजये कुशलोस्मि ननु स्यस्योऽक्षद्रुपमिदं पाणी ॥१॥

पार्यती कहती हैं—अ्यक्ष (महादेव तीनआँखवाला) निपुण है, इसके साथ मैं खेल नहीं सकती । शिव ने उत्तर दिया— हे विजये, मैं कुशल तो अवश्य हूँ, पर अ्यक्ष (तीन पासे वाला) नहीं; क्योंकि मेरे हाथों में ये दोही अक्ष (पासे) हैं ।

किं मे दुरोदरेणमया नु यदि गच्छपतिनं तेभिमतः ।

कः प्रदेष्टि विनायकमदिलोकः किं न जानासि ॥२॥

पार्यती—मुझे दुरोदर (जुमा) से क्या लाभ ? शिव ने दुरोदर का अर्थ समझा बुरा पेटवाला, इससे ये कहते हैं गणेश यहाँ से खले जाय, यदि ये मच्छे न हों । पार्यती ने कहा— विनायक (गणेश) में द्वेष कौन करता है ? शिव ने विनायक का अर्थ समझा गरुड़, और ये उत्तर देते हैं— विनायक से द्वेष करने वाले साँप हैं, क्या मालूम नहीं ?

चन्द्रमहनेन विना नास्मि रमे किं प्रवर्तंमयेवम् ।

देव्यै यदि हविमिदं नन्दिब्राह्मणा राहुः ॥३॥

चन्द्रमहण के (जब तक चन्द्रमा दाँप पर नहीं लगाया जाय) बिना मैं न रोल्गी, तुम क्यों तह्न करते हो । शिव ने उत्तर दिया, यदि देवी को यही अच्छा मालूम होता है, तो नन्दी राहु को सुलाओ । पार्यती ने चन्द्रमहण का अर्थ चन्द्रमा का दाँप पर लगाना समझा था और शिव ने इसका अर्थ समझा चन्द्रमहण ।

हाराही निरुत्सवे निरुद्धे भयहृति रतिः कल्पः ।

यदि केचन सत्यकः संसरेष्वेव हाराहिः ॥४॥

हा, राहु पास है, इसके दाँत सफ़ेद और भयानक हैं, इस पर कौन अनुराग करेगा ? शिव ने उत्तर दिया, यदि तुम नहीं चाहती हो तो ले इसी समय मैं हाराहि (सर्पहार) छोड़ता हूँ ।

भारोपयति मुधा किं नाहमभिशा त्वदङ्गस्य ।

दिव्य वर्षसहस्रं स्त्रित्वैव युक्तमभिधातुम् ॥५॥

पा०—मुझे अपने अङ्ग में क्यों लेना चाहते हो, मैं इससे अनभिज्ञ हूँ । शि०—देवताओं के हजार वर्ष तक इस अङ्ग में रहने के बाद ऐसा फहना अवश्य शोभा देता है ।

अमुदिनमभ्यासहृदैः सेऽहुं दीर्घोऽपि शक्यते विरहः ।

प्रत्यासन्नसमागममुद्दते विमोहि दुर्विषहः ॥६॥

प्रतिदिन अभ्यास की दृढ़ता के कारण बहुत दिनों का भी विरह सहा जा सकता है । पर समागम के समीप भा जाने पर एक मुद्दत का भी विमल असहनीय होता है ।

समागमाङ्गमंगतेन भवता चापे समारोपितं

देवाकण्य येन येन सहसा वस्यन्ममादातम् ॥

कोदण्डेन शराः शरैरतिशिरस्तेनापि भूमण्डलं

तेन त्वं भवता च कीर्तिरमला कीर्त्या च कोदण्डम् ॥७॥

महाराज, आप रणक्षेत्र में आये और आपने धनुष चढ़ाया, उस समय शीघ्र ही जिस जिसको जो जो धनुष मिला सो सुनिष्ट । धनुष को पाण मिलें, धातों को शत्रुओं के निर, शत्रु शिरों को भूमण्डल, भूमण्डल को आप मिलें, आपकी कीर्ति मिली और कीर्ति को नीलों से एक मिले ।

देवाकण्य काठिनो गुरि नृणां लोके पुं आगिरा-

मायमं चन सस्मि चंचन तपा व्यापयति के कंचन ॥

तन्मध्ये न वभूव नास्ति भविता तादृङ् न भीतौ नतौ ।

कान्तौ काव्यरतौ नतौ रिपुदत्तौ कीर्तौ च यस्ते समः ॥८॥

महाराज, सुनिष्ठ, देवलोक में, मर्त्यलोक में और नाग-
लोक में कोई थे । कोई हैं और कोई रहेंगे । पर उनमें कोई भी
बैसा नहीं हुआ, ॥ है और न होगा, जो नीति में, ममता में,
कारित में, काव्यप्रेम में, स्तुति में, शत्रु मारने में और कीर्ति
में तुम्हारी बराबरी कर सके ।

भूशालाः शशिभास्कराम्बुधुवः के नाम नासादिता ।

भर्तारं पुनरेकमेव हि भुवस्त्वा देव मन्वामहे ॥

वेनाङ्गं परिपृच्य कुन्तलमपाकृष्य म्बुदस्यापतं ।

चोळं प्राप्य च मन्मदेशमधुना काव्यार्पाकरः पातितः ॥९॥

सूर्यपंश और चन्द्रपंश के कितने राजा पृथ्वी के स्वामी
नहीं हुए, पर हम तो तुम्हीं को पृथिवी का एक स्वामी
मानते हैं । जिसने भङ्ग (इस नाम का देश) को मर्दन कर
कुन्तल (इस नाम का देश अथवा छोटी) को खींच कर
चोळ (इस नाम का देश अथवा ज़नानी कुरती) को हटा कर,
मध्य देश (देश या कमर) में पहुँच कर इस समय काव्यी
(एक नगर अथवा करघनी) में हाथ लगाया है ।

महाकवि माघ ।

महाकवि माघ ने शिशुपाल-वध नामका एक काव्य
पनाया है । इनकी रचना बड़ी प्रौढ़ है । एक प्राचीन श्लोक है,
जिसमें माघ की कविता की प्रशंसा की गयी है ।

काना कानिदृश्यं भावेत्संगीतम् ।
 इन्द्रियः वदन्त्यर्थं भावे मग्नि त्रयी गुणाः ।
 माघ ने भगना गरियय हम प्रकार दिया ।
 नाम के राजा के प्रधान मंत्री गुप्तमंद्य थे । सु
 दलक हुए और दलक के पुत्र माघ ने यह का
 भोजनप्रसंग में मो इनके शिष्य में थोड़ा लिखा
 इनके दानों और दानी होने के कारण ही दरिद्र होने
 लिये हैं । माघ के दो तीन श्लोक हैं जिनमें इन
 उल्लेख हैं ।

अथ न तस्मिन् न च सुचरि मां दुराशा,
 स्वागाह सत्कथति दुर्मलिनं मनो मे ।
 वाया च लापय करी श्ववधे च पार्ष ।
 प्राणाः स्वर्गं प्रयत किन्तु विलम्बितेन ॥
 सुमशितैर्षांकरणं न मुच्यते, नपीयते काव्यरसः पिपासितैः
 न विषया केनचिदुद्वेष्टं कुलं, हिरण्यमेवाग्रजं निष्कलाः कल
 इन श्लोकों से माघ ने अपनी अवस्था दिखायी है
 पिपा से ऊय गये थे । ॥
 इनके कुछ मनोहर श्लोक आगे लिखे जाते हैं ।

नारीनितम्बफलके प्रतिरूप्यमाना
 हंसीव हेमरशना मधुरं रसास ॥
 तं मोचनार्थमिव नूपुरराजहंसा
 मन्दमुराच'मुत्तर' चरणावलम्बाः ॥ १ ॥

नारी के नितम्ब पर बँधी हुई सोने की करघनी हंसिनी
 के समान धीरे धीरे बोल रही है । उसका बन्धन छुड़ाने के
 लिए नूपुररूपी राजहंस बड़े दुःख से चिहाने लगे और ने
 पैरों पर भी पड़े ।

मुद्रुपहसितामिवालिनादेर्वितरसि नः कलिकी किमर्थमेताम् ।

वसन्तिममिगमेन धाम्नि तस्याः शठकलिरेव महांसवपाद्य दत्तः ॥२॥

कोई खण्डिता नायिका अपराधी पति को, जो उसे पुष्प देकर प्रसन्न करना चाहता है कहती है—इस कलिका का उपहास ये भ्रमर अपने शब्दों से कर रहे हैं । क्योंकि इसके द्वारा तुम मुझे उगना चाहते हो । मुझे यह कलिका क्यों देते हो, हे शठ (छिप कर अपराध करने वाले) तुम अपनी प्रिया के घर पर जाकर बहुत बड़ा कलि (कलह) दे चुके हो । मय दूसरी कलि (पुष्पकली) को ज़रूरत क्या है !

भवद्विहङ्गुमा विहाय वसोवुर्वतीषु कोमलमालभारिणीषु ।

पद्मपद्मिरे कुलान्मलीना न परिचयो मलिनारमनो प्रधानम् ॥३॥

भ्रमरों के समूह ने उन लताओं को छोड़ दिया, जिनके पुष्प खियों ने तोड़ लिये थे । वे कोमल माला धारण करने वाली युवतियों पर जाकर बैठे । जिनकी आत्मा काली है, वे क्या परिचय की परवा करते हैं !

विनयति मुद्रुशी दृशः परागं प्रणयिनि कौसुममाननानिलेन ।

तद्विहङ्गुवर्तेश्मोदयमङ्गोर्ध्वमपि रोपरमोभिरावुष्टे ॥४॥

एक स्त्री की आँखों में किसी फूल की धूलि पड़ गयी थी । उसे उसका प्रियतम मुँह से फूँक कर निकाल रहा था । वह देख कर उसकी सोत की दोनों आँखें क्रोध की धूल से भर गयी ।

संजीव यपति मुद्रुर्महेमपुष्पमलीमात्रा स्तनयुगलेनवीपमाने ।

विरलेष युगमगमदृषाः मान्नोरदृषः क इव सुखावदः परेताम् पथः

वसमा कालिदासस्य मारवेरसंगीरवम् ।

इण्डिनः पदसाहित्यं माघं गन्ति त्रयो गुणाः ॥

माघ ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है—श्रीधर्म नाम के राजा के प्रधान मन्त्री सुप्रभदेव थे। सुप्रभदेव के दत्तक पुत्र और दत्तक के पुत्र माघ ने यह काव्य बनाया। भोजप्रयन्ध में भी इनके विषय में थोड़ा लिखा है। जिससे इनके दानी और दानी होने के कारण ही दत्तक होने की बात लिखी है। माघ के दो तीन श्लोक हैं जिनमें इन बातों का उल्लेख है।

अर्था न तन्ति नच सु'पति मां दुराशा,

म्यागात्र सह'कचति दुर्ललितं मनो मे ।

यात्रा च लाघव करी श्ववधे च पार्य ।

प्राणाः स्वयं व्रजत विन्नु विलम्बितेन ॥

सुभक्षितैर्गर्वाकरणं न भुज्यते, नपीयते काव्यरसः पिपासितैः -

न विद्यया केनचिदुद्धतं कुलं, हिरण्यमेवाग्र्यं निष्कलाः कलाः ।

इन श्लोकों से माघ ने अपनी अवस्था दिखायी है, वे धिचा से ऊप गये थे । ४

इनके कुछ मनोहर श्लोक आगे लिखे जाते हैं ।

नारीनितम्बफलके प्रतिवन्ध्यमाना

हंसीव हेमरशना मधुरं ररास ॥

तं मोचनार्थमिव नूपुरराजहंसा

अकन्दुरात्त'मुच्चर' चरणावलम्बाः ॥ १ ॥

नारी के नितम्ब पर बँधी हुई सोने की करंछनी हंस के समान धीरे धीरे बोल रही है। उसका बन्धन नूपुराने छिपे नूपुररूपी राजहंस बड़े दुःख से चिहाने लगे और तों पर भी पड़े ।

पद्मितामिवालिनादेर्वितरसि नः कलिकी किमर्थमेताम् ।
तमभिगमेन धाम्नि तस्याः शठकलिरेव महास्त्वयाद्य इतः ॥२॥

तोई खण्डिता नायिका अपराधी पति को, जो उसे पुण्य प्रसन्न करना चाहता है कहती है—इस कलिका का तू ये भ्रमर अपने शब्दों से कर रहे हैं । क्योंकि इसके तुम मुझे टगना चाहते हो । मुझे यह कलिका क्यों देते शठ (छिप कर अपराध करने वाले) तुम अपनी प्रिया पर जाकर बहुत बड़ा कलि (कलह) दे चुके हो । अब कलि (पुष्पकली) को ज़रूरत क्या है !

कुसुमा विहाय बलीशुं बलीशु कोमलमालभारिणीम् ।
दधिरे कुलाग्र्यलीलां न परिचयो मलिनात्मनां प्रधानम् ॥३॥

मैंने के समूह ने उन लताओं को छोड़ दिया, जिनके रसों ने तोड़ लिये थे । वे कोमल माला धारण करने प्रतिष्ठों पर जाकर धटे । जिनकी आत्मा काली है; वे रचय की परदा करते हैं !

यति सुदृशो दृशः परागं प्रचयिनि कौमुदमामनाजिह्वेन ।
तत्पुनरेतन्मोक्षमदनेऽहं वमसि रोषरजोभिराशुपुटे ॥४॥

हो की भाँलों में किसी फूल की धूलि पड़ गयी थी । का प्रियतम मुँह से फूँक कर निकाल रहा था । यह उसकी सोत की दोनों भाँसे कोष की गहराई में —

स्त्रियाँ जलक्रीड़ा कर रही हैं । गजराज के मस्तक के समान विशाल उनके स्तनों से जल हिल उठा और इससे चक्रवाक दम्पती का वियोग हो गया । उच्छृङ्खल से क्या किसी को सुख हो सकता है ?

आनन्दं दर्शति मुने करोदकेन श्यामाया दयिततमेन सिध्यमाने ।

ईर्ष्याया वदनमसिकमप्यनल्पस्वेदाभ्रः स्नपितमत्रायतेतरसाः ॥१॥

प्रियतम नवयौवना के मुख पर अपनी अँजली से ज सींच रहा था और उस नवयौवना का मुख प्रसन्न हो रहा था क्योंकि प्रियतम उसका सम्मान कर रहा है । पर दूसरी मुख पर जल के छींटे नहीं पड़े, इससे ईर्ष्या के कारण उस मुँह पर इतना पसीना आया कि वह भीग गया ।

काम्तानां कुवलयमप्यपास्तमपणोः शोभाभिर्न मुनदृष्यादमेकमेव ।

महर्षादलिविलैरितीव गावहोलोमैः पथति मदोत्पलं मननं ॥२॥

जल में चञ्चल लहरियाँ उठ रही हैं, उनमें कमल नाच रहा है, उसके नाचने का कारण यह है, यह समझता है कि स्त्रियों के मुख की शोभा से मैं ही परास्त नहीं हुआ हूँ किन्तु छाँखों की शोभा से कुवलय भी (रक्त कमल) परास्त हुआ है । इसी द्वेष के कारण यह भीरों के शब्द से गारता हुआ नाच रहा है । उसको एक नया साथी मिल गया, इसीसे यह प्रताप होगया ।

प्रतिवृत्तनामुपगतं हि त्रिषी विचक्षरकमेति बहुमाधवना ।

भवदम्बनापुद्गिनमर्तुमूषयनिष्पन्नः करणहयमपि ॥३॥

माध्व के प्रतिकूल होने पर अनैक साधन भी पिछल हो जाते हैं । जब गुरु गिरने (भ्रष्ट होने) लगता है, तब शत्रु दृष्टारों हाथ भी उसकी सहायता नहीं कर सकते ।

अनुरागवन्तमपि श्लोचनयोर्दधत् वपुः सुखमतापकरम् ।

निरकासयद्रविमपेतवसुं विषदालयादपरदिग्गच्छिका ॥ ९ ॥

अनुरागो है, आँखों को सुख देनेवाला उसका शरीर भी
अर्थात् सुन्दर भी है; पर उसके पास वसु (धन या किरण)
ही है, अतएव पश्चिम दिशा कृषिणो येश्या ने सूर्य को आकाश
की घर से निकाल दिया ।

हविषाम्नि भर्तृरि शूरो विमहाः परलोकमभ्युपगते विविगुः ।

अगलनं त्रिवशा कथमिवेतारया सुलभोऽभ्युपगमनि स गृह पतिः ॥ १० ॥

तेजोनिधि पति के परलोक जाने पर अस्त होने पर या
मरने पर-काम्नि मग्नि में प्रविष्ट हुई। यदि वह ऐसा न करती
तो दूसरे जन्म में यही पति उसको-कैसे मिलता ।

भविष्यत्तारकमदृष्टदिमपुतिविमलमस्तमितभानुनमः ।

विरतोऽस्तापमहमिषममादपद्मोपतैव विगुणस्य गुणः ॥ ११ ॥

ताराओं का उदय नहीं हुआ है, चन्द्रमा भी दिखायी
नहीं पड़ता, सूर्य अस्त हो चुका है, ताप शान्त हो चुका है
भीर भावकार नहीं है, ऐसा आकाश शोभितहो रहा है ।
क्योंकि गुणहीन के लिए दोषों का न रहना ही गुण समझा
जाता है ।

बहूरोऽपि भारकरद्वयान्निः सतमो तमोभिरधिगम्य तवाम् ।

पुतिनघरीदु महगणो लपवः प्रकटीभवन्ति मलिनप्रपन्नः ॥ १२ ॥

आ महगण दिन में सूर्य के प्रकाश में दिखायी नहीं पड़ते
थे, वे ही अन्धकारमयी रात्रि पाकर प्रकाशित होगये । नीच
मलिनों का भावप पाकर चमकने हैं ।

प्रथमं कलामवदधार्पमयो हिमदीर्घातिमहभूदुदितः ।
 दधनि प्र वं कमन पव न नु शु तिगालितोपि सहमाम्बुद
 चन्द्रमा पहले कलामात्र था, पर यही उदित
 महान् हो गया । तेजस्वी भी धीरे धीरे अभ्युदय पाते
 बारही नहीं, यह निश्चित है ।

वदमत्रिहैरभजिनः शयनाइयनिद्राशु रमरोज्रहा ।

प्रथमप्रबुद्धनदराजसुतावदनन्दुनेव तुहिनदुष्टु तिता ॥१४॥

विकसित श्वेत कमल के समान चन्द्रमा विप
 शयन से अर्धाङ्ग समुद्र से उदित हुआ । मानों विप
 पहले जागी हुई लक्ष्मी का मुखचन्द्र ही उदित हुआ ।

अथ लक्ष्मणानुगतकाम्त्वपुत्रंलधिं स्वतीम्य शशिदास्रापिः ।

परिचारितः परितः कलवलैस्तिमितौघराह्वकुलचिन्दि ॥ १५ ॥

उदित होने पर लक्ष्मण (कलङ्क या लक्ष्मण) जिस
 पीछे चल रहा है, और मृक्षों (नक्षत्र या भातृ) की सेना ।
 जो घेष्टित है, वह चन्द्रमारूपी राम समुद्र लांघ कर अग्न
 कार रूपी राक्षसों का नाश करने लगा ।

रजनीमवाप्य हवमाप शशी सपदि भवभूषयत्सावपि ताम् ।

अविलम्बितक्रममहो महतामितरेतरोपकृतिमचरितम् ॥१६॥

रात्रि ने चन्द्रमा को कान्ति दिया और चन्द्रमा ने भी
 उसी समय उस रात्रि को भूषित किया । यज्ञों का वह चरित
 धन्य है, जिसमें शीघ्र ही परस्पर उपकार करने की रीति है ।

दिवसं भृशोऽश्वरचिपादहतां दृढतोमिवानवरवालितैः ।

मुहुताशमृगधरोमहर् ददशिरयसन्कुमुदिनीयनिनाम् ॥१७॥

दिन में सूर्य ने चरणों (किरणों) से कुमदिनी को मारा
 है । इस कारण सतत होनेवाले सूर्य ने

है, इस कारण चन्द्रमा अपने अप्रकर से (हाथ से या किरणों से) पोंछ रहा है और उसे आश्वासन दे रहा है ।

अम्बरं विनयतः प्रियपाणेर्वीर्यितश्च करयोः कलहस्य ।

वारणामिव विधातुमभीर्षणं कथयया च बलवैश्च शिशिञ्चे ॥१८॥

प्रिय का हाथ यस्य खींचता है, और स्त्री के दोनों हाथ उसे रोकते हैं इस प्रकार इन दोनों में कलह हो रहा है । इस कलह को मिटाने के लिए स्त्री की करघनी और कट्टण बार बार घोल रहे हैं ।

वृषपति विततोर्ध्वरश्मिरजावद्विमलवौ हिमपात्रि वाति चास्तम् ।

वहति गिरिरथं बिलम्बिषण्टाद्रूपपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम् ॥ १९ ॥

सूर्य का उदय होता है, और चन्द्रमा अस्त होता है, इस प्रकार यह पर्वत हाथी के समान मालूम होता है जिसके दोनों ओर दो घंटा लटके रहते हैं ।

सर्वदि कुमुदिनीभिर्मोह्यतां हा अपाति

अवमगमदपेतास्तरकास्ताः समस्ताः

इति द्युपितरुलसञ्चिन्तयन्नुमिन्दु-

वहतिहृशमशेव भद्रशोभं शुचेव ॥२०॥

कुमुदिनी मुकुलित हाथी, रात्रि का भी अस्त होगया और ये समस्त तारकायं नष्ट हो गयीं, इस कारण अपनी स्त्री से रात्रि से प्रेम रखनेवाला चन्द्रमा रुसा होगया है, वह शोक से शोभा रहित अङ्ग धारण कर रहा है ।

नवनवपदमङ्गं गोपवस्त्रमुक्तेन स्थापयसिमुद्गरोष्ठं पाणिना दन्तदष्टम्

प्रतिदिशमपरधीसङ्गभीसीत्रिसर्पन्नव परिमलगन्धः केन शब्दोपरीतुम् ॥२१॥

नयीन नग का जिह यज्ञ से छिया रहे हों; दोनों से
काटा हुआ भोगु हाथों में छिया रहे हों; पर दूसरी स्त्री के संग
का गूचक, चारों ओर फैलनेवाले इस परिमल गन्ध के लिए
क्या करेंगे ! इसको कैसे छियाओं ?

बहुजगद् बुरस्तात्तस्य मत्ता किकाद्

चङ्कर च किल चाटु प्रौढयोगिन्द्रदक्ष ।

विदितमिनिमगीभ्यो तन्निवृत्तं विधिभ्यः

रम्यगतमदयान्दि मीहितं मुग्धवत्सा ॥२२॥

मैं उन्मत्तावस्था में उसके सामने बहुत घोलती रही क्या !
प्रीड़ा त्रियों के समान मैंने उसके सामने व्यवहार किया
क्या ? स्त्रियों के द्वारा रात की घातें जानकर नशा उतरने
पर मुग्ध यधू की यही लज्जा भायी ।

हुततारकरदलाः क्षिप्तवैशाखशेले

दधति दधन्ति धीरानारवान्वारिणीव ।

शशिनमिह सुरीषाः सारमुद्रनुमेते

कलशिमुद्रधिगुर्वां बलवा लोडयन्ति ॥२३॥

शीघ्र हाथ खलाने में निपुण इन अहीरों ने दही में मथानी
कपी पर्यंत डाला है । इससे उसमें से गम्भीर ध्वनि निकल
रही है । जिस प्रकार जल को मथकर देवताओं ने उसका
सार चन्द्रमा निकाला था, उसी प्रकार ये भी समुद्र के समान
कलश को मथ रहे हैं ।

अनुनयमगृहीत्वा ध्याजमुष्ठा पराधी

स्तमय कृकवाकोरतारमाकण्यं कन्ये ।

कथमपि परिकृता निद्रयान्धा किल स्त्री

मुकलितनयनैवास्मिपति प्रायनायम् ॥२४॥

उसको बहुत खुशामद की गयी, पर उसने कुछ भी न
पुना और करवट बदल कर सो गयी । पर प्रातः काल मुर्गे की
गँगा जब उसने सुनी, तब निद्रित रहकर ही जँभाई के बहाने
उसने पुनः करवट बदली और आँखें बंद किये ही पति का
मालिगन किया ।

परिशिषिलितकर्णप्रीदमामीळिताक्षः

क्षणमयमनुभूय स्वप्नसुष्वञ्जुरेव ।

रिरसविपत्ति भूयः शय्यमग्रे विकीर्णं

पटुतरचपलौटप्रभुरन्मोयमरवः ॥२५॥

कान और गर्दन सोधी करके आँखें बन्द करके ।
प्रभ ने जङ्घा को ऊपर करके थोड़ी देर तक शयन किये
अथ इसके घास खाने में निपुण ओठ चञ्चल हो रहे हैं, में
कड़फ रहा है । यह आने रखी घास को खाना चाहता है ।

वदपमुदपदीहिर्वातिथः संगती मे

पतति न धरमिन्दुः सोपरातेष गत्वा ।

स्मितदधिरिष सद्यः साम्बमूर्य प्रप्रेति

स्फुरति दधिरमेपा पूर्वकाहाङ्गनायाः ॥२६॥

जो सूर्य मेरे साथ उदय होता है, वही अपरा (पश्चि
दिशा या दूसरी स्त्री) के यहाँ जाने से पतित (भस्तः
पतित) हो जाता है । यह समझकर पूर्य दिशारूपी स्त्री ।
प्रभा मुस्कुराहट के समान दिखायी पड़ती है ।

इषदसकलमेकं सण्डिताग्रानमद्भिः

धियमपरमपूर्णामुष्णवसद्भिः पलाशीः ।

कलरपमुपगीते पट्पदीयेन घत्तः

कुमुद कमललण्डे पुन्यरूपामवस्थाम् ॥२७॥

एक—कुमुदवन मुकुलित होनेवाले पत्तों से आधा होगा है, अतएव नष्ट होनेवाली शोभा को वह धारण करता है। और दूसरा—कमल विकसित होनेवाले पत्तों से अपूर्ण अर्थात् प्रदने वाली शोभा को धारण करता है। दोनों के पास भी मधुर गम्भीर गान कर रहे हैं, इस प्रकार कुमुदवन और कमलवन दोनों समान अवस्था धारण करते हैं।

विक्रमकमलगन्धैरन्धपञ्चमालाः

सुरभितमकरन्दं मन्दमावाति वायुः ।

प्रमदमदनमाप यौवनोद्दामतामा ।

रमण्यरभसप्रेदस्येदविशोददशः ॥२८॥

विकसित कमल की गन्ध से भीरों को अग्धा बनाता हुआ, सुगन्धित पुष्परेणु को धारण करनेवाला वायु भीरे भीरे पहता है। यह हर्ष और मदन से उन्मत्त, यौवन के कारण उच्छृङ्खल स्त्रियों के, रमण की धकायट से उन्मत्त पत्नीने को दूर करने में समर्थ है।

नवकुमुदवनप्रीदासठेल्लितद्वा—

दधिद्वगधिशोषामप्युतां जागरिता ।

अवसपरविशोद्धं मुञ्चति सप्तदन्तः

विशदिविपुलिष पाण्डुग्लानमाग्नानिमित्तुः ॥२९॥

अधिक शोभाशाली यह अग्निमा मनीन कुमुदवनभी के दास की बीड़ा में लगे रहने के कारण समुष्मी रात जागता रहा। अब पथिम दिशा के भद्र में सोने की इच्छा ने उनके रूप अपने को छान रहा है। उसके दास (विरज) सिधित हो गये हैं, अर्थात् वह मरु हो रहा है।

विगततिमिरपहं पश्यति स्थोन पावतु

ध्रुवति विरहमिन्द्रः पश्यती पावदेव ।

रमपरमममाह्लातादीन्नुत्पनुषा

सतिदपरवतास्तादागता चक्रवाकी ॥३०॥

यह चक्रवाक जय तक भाष्काश की अन्धकार हीन
देखता है और जय तक यह अपने पंखों को भाड़ता है, तभी
तक मदी के उत्तरवार से उत्पुष्पना से प्रेरित होकर चक्रवाकी
छली आयी ।

तद्विषयमवादीर्यम्ममत्वं विप्रेति

प्रियजनवसिमुक्तं धनुकुक्कं दधानः ।

मद्विषयमतिमाणाः कामिनी मण्डनयी-

मंजति दि सफलत्वं बहुभाष्येकनेन ॥३१॥

तुम मेरी प्रिया हो, यह जो तुमने कहा है यह पिलकुल
सच है । क्योंकि प्रियजन के द्वारा भोगा हुआ वस्त्र पहन कर
तुम मेरे यहाँ आये । कामियों के शृङ्गार की शोभा पल्लभा
के देखने ने ही सफल होती है ।

कुमुदवनमपश्चि भीमदम्भोन्नयनं

त्वजति मुदमुक्तः प्रीतिर्मात्रकवाकः

वदपतिरविरश्मियांति शीतोद्गुरस्त्रं

हलविधिलसिमानां ही विचित्रो विपाकः ॥३२॥

कुमुदवन शोभाहीन हो गया और कमलवन ने शोभा
धारण की । उलूक की प्रसन्नता गयी और चक्रवाक प्रसन्न
हुए । सूर्य उदित हो रहा है और चन्द्रमा अस्त, । दुर्भाग्य का
परिणाम अनेक प्रकार का होता है ।

मा जीवन्मः पराजितान्मदुःखोपि जीयति ।
तस्याजनिर्वाण्यु अननीहं शक्यतः ॥३३॥

जो दूसरों के द्वारा होनेवाले निरस्कार के दुःख से जल-
कर भी जीते हैं, वे न जीयें । उनका न जीना ही अच्छा
है, क्योंकि उनसे केवल माता को कष्ट ही होना है ।

गुण्येवाथे स्वमांनुमांनुमन्तं चित्ते यत् ।
दिमांनुमांनु प्रमने तन्त्रदिशः सुदृष्टं कलम् ॥३४॥

दोनों का अपराध बराबर है, पर सूर्य को देर से मौ-
खन्दमा को शीघ्र शीघ्र राहु प्रसता है । यह कोमलता का
फल है ।

पादाहतं यदुत्थाप सूर्यान्मपितोहति ।
स्वस्थादेवापमानेपि देहिनस्तद्वरं रजः ॥३५॥

पैर से आहत होने पर जो उठती है और शिर पर
जाती है, वह धूल अपमान होने पर भी जो बुपचाप धैरे
हैं उन मनुष्यों से अच्छी है ।

मुरारि ।

इन्होंने अनघंराघ्य नाम का एक नाटक
इनके पिता का नाम मद्र्ध्र्धमान था और
तन्तुमति था । हरविजय प्रणेता रत्नाकर से
रत्नाकर ने अपने हरविजय काव्य में इनका स्म

“अद्भुतनाटक इवोत्तमनायकस्य
नार्थं कविर्भूषितं यस्य मुरारिरित्यम् ।

अतएव ये रत्नाकर से प्राचीन हैं । मुरारि ने अपने विषय में इस प्रकार लिखा है—

देवीं वाचमुपासते हि वद्वः सारं तु सारस्वतं
जानीते नितरामसौ-गुरुकुलकृष्टो मुरारिः कविः ।
अब्धिलंहित एव वानरभटैः किन्त्वस्य गम्भीरता-
मापातालनिमग्नपीवरजनुर्जानति मन्थाचलः ।

सरस्वती की आराधना करनेवाले बहुत हैं, पर उसका सार गुरुकुल के पढ़ेवाले को सहनेवाले मुरारि कवि ही जानते हैं । वानर समुद्र लाँघ गये, पर उसकी गहराई का पता मन्थाचल ही को है ।

इनके कुछ मनोहर श्लोक आगे लिखे जाते हैं —

भवेदेनोपास्तेकुमुदमुदरे वा स्थितवतो
विपश्चादम्भोजानुपगतवतो वा मधुलिहः ॥
भयस्यातः कोपि स्वपरिपरिचयापरिचय—
प्रवन्धः साधूनामयमनमिसंधानमधुरः ॥ १ ॥

कमल शत्रु के यहाँ से भागा हुआ झमर और अपने कोश में रहने वाला झमर इन दोनों को एक प्रकार से देखता है । उसकी इनमें भेद-दृष्टि नहीं है । यह अपना है यह दूसरा है, इस बात का विचार किये बिनाही सञ्जन सब का समान रूप से सेया-साकार करते हैं ।

अविमपमुशमशा नानाशमाय भवन्नपि ।
महतिदुटिलद्विधाम्यातः खलत्वनृदये ॥
कथि भयमृतामस्तुष्टेदृष्टमस्तमसामसौ ।
विषपरफणारत्नालोको मयं तु मृशायते ॥ २ ॥

स्वभाव से कुटिल मनुष्य से विद्या के अध्ययन करने से वरपि अधिनयी अज्ञानियों को कुछ शान्ति मिल जाती है, पर

उससे उसकी खेलता की वृद्धि होती है। सर्प की कणा रहने वाले मणि के प्रकाश से साँप से डरने वालों के लिए अन्धकार का नाश अवश्य होता है, पर मय तो कम न होता, यह तो बढ़ता जाता है।

स्ववपुषि नखलक्ष्म स्वेन कृत्या भवत्या

कृतमिति चतुराणां दर्शयिष्ये सखीनाम्

इति रहसि मयाते मीपिताया स्मरानि

स्मरपरिमलमुद्गामङ्गसर्वसहायाः ॥३॥

इसके अपने शरीर में अपने नखों का चिन्ह बनाया और यह तुमने (खी ने) किया है, यह मैं चतुर सखियों को दिखाऊँगा, । यह कह कर मैंने तुमको डरवाया और तुमने इसके प्रकाशित होने के मय से सब सह लिया।

जाताः पकपलाण्डुपाण्डुरमुष्यष्टायाकिरस्मरकाः

प्राचामङ्गु रयन्ति हिंघन रुचो रातीवत्रीयातपः

हृतात्तन्मुविगतवपुः समिद्धं विम्वं दधन्पुम्बिति

प्रातः प्रोपित रीचिरम्बरातलादस्तावत् चन्द्रमाः ॥ ४ ॥

साराधों की प्रभा पके पलाण्डु के समान गीली हो गयी है। कमलों को जीवित करनेवाली रुचि पूर्ण दिशा में उग हो रही है। मकड़ी के जाला के समान विम्बधारण करनेवाले यह चन्द्रमा प्रातःकाल आकाश से अस्ताचल पर आ रहा है इसकी गोभा हीन हो गयी है।

मोगीन्द्रः प्रमदोत्तरद्वमुरणीवगीतगोहीदुने

कीर्तिद्वय श्रवणु विशगिताती मधुपुत्री वर्तने

रन्तःमिः सुरमुन्दरीनितमिनी गोत्रीपु कर्णद्वयी

दुःखः अंत्यदि नाम हिं सदि मरुदाशो न चतुःपदाः ॥५॥

देव, भागवतनामों की मूर्तान मना में भावम् में मद्गद
 प्रकाश मंगलम् मुम्दारी बौमि सुने, क्योंकि उनके दो हज़ार
 मीने हैं । पर अनुरक्त देवाङ्गनामों के द्वारा भावी हूँ मुम्दारी
 बौमि हम्द के में सुन मनेगा । क्योंकि उनके तो दो ही बात हैं ।
 पर्याय हम्द के भी हज़ार मने हैं, पर उनमें तो सुनने की
 लाल लाल है ।

जा रहा हूँ यह इच्छा हृदय में उत्पन्न हो सकती है, पर प्राणप्रिया के सामने निर्दय होकर यह कहा कैसे जा सकता है ? पर यह कहा गया । अविरत अश्रु प्रवाहयुक्त प्रिया के मुख देख कर भी लोग विदेश चले जाते हैं । स्वल्पधन व प्राप्ति की इच्छा तुम लोगों के हृदय में ऐसी मजबूत है !

लिखति न गणयति रेखा निर्भरवाप्याम्बुधौतगण्डतला ।

भवधिदिवसावसानमामूदिति शङ्किता वाग्य ॥३॥

आँसू से उसके दोनों गाल माँग गये हैं । यह भयधि दिन धीतने की शङ्का से न तो लिखती है और न भयधि लिप लगायी रेखा को ही गिनती है ।

प्रियतमस्यमिनामनघाईसि प्रियतमा च भयन्त मिहाइति ।

नहि विभाति निशारदितः शशी न च विभाति निशापि विनेनुना ॥४॥

हे निर्याप, तुम इसके प्रियतम होने योग्य हो और वह तुम्हारी प्रिया होने के योग्य है । रात्रि के बिना चन्द्रमा नई शोभता और चन्द्रमा के बिना रात्रि भी नहीं शोभती ।

महाकवि राजानक रत्नाकर ।

वे कश्मीर के निवासी कवि थे । इनका पूरा नाम राजानक रत्नाकर यागीश्वर है । कश्मीर के राजा जयन्ति वर्मा के समय में ये हुए थे । यह बात राजतरङ्गिणी में लिखी है ।

मुद्राङ्कणः शिष्यस्यासौ कवितान्त्रवर्द्धनः

अथां रत्नाकरश्चगान् मायाशयेऽभिमिश्रयः ।

अर्थात् यहाँ का समय ८५५ से ८८४ ई० तक माना जाता । एसाकर भी इसी समय के थे, यह समझना चाहिए ।

रत्नाकर के शिवा का नाम भद्रममानुषा और वे नाग-
र नामक स्थान में रहते थे । महाकवि बाह्यमोहर ने इनके
अर्थ में लिखा है—

॥ गणेशाय नमः ॥

इतीव गच्छते चात्र वसितव्यमिति ।

आर्या समाज (मनु । ग र्टे, इगर्जी मंत्रा और श्री
। हरद्विष्ट इत्यादि में पांचव समाज वर्ग की गृहिणी ।

इन्द्रो मे हविर्दत्तः शश्वतः एकः सदाशिवः ब्रह्माणा है । एह
 शस्य पञ्चान्नं ततोऽं मे पुनं दत्ता है । इन्द्रोऽं कविता श्रीद
 त्तोमी श्री । इन्द्रो मे शश्वतः दत्तः मे एकः सदाशिवः ब्रह्माणा है ।
 ब्रह्माणा है —

हृदिऽप्यमदाकहेः कविना मधुर हृदयदया अदम्यकहे,
अवि निगुणकविः कवि कल्याणम् अदवि कविमम कदापिः कवेः ।

होते प्रायः ही हिम मालदेवानों, दुर्द्विष्टक बाण्य के, महाबलि की जीविका सुने, कवि के प्रसार से अर्थात् बाण्य कवि और महाबलि ब्रह्म से ही आता है ।

कर्मयोग कर्म-भारालेखी इति विदुः-

विनाशकरीति कष्टं । एतन्मतिमयम् ।

[illegible]

॥ १ ॥

जा रहा हूँ यह इच्छा हृदय में उग्यत्र हो सकती है, प्राणप्रिया के सामने निर्दय होकर यह कहा कैसे जा सकता है ! पर यह कहा गया । अविरत अश्रु प्रवाहयुक्त प्रिया मुख देख कर भी लोग विदेश चल जाते हैं । स्वल्पघन प्राप्ति की इच्छा तुम लोगों के हृदय में ऐसी मजबूत है !

लिरति न गणयति रेखा निर्भरथाप्याम्बुषीनगण्डतला ।

अवधिदिवसायसान'मामूदिति शङ्किता चाला ॥३३॥

आंसू से उसके दोनों गाल भीग गये हैं । यह अवधि के दिन पीतने की शक्ती से न तो लिरती है और न अवधि के लिए लगायी रेखा को ही गिनती है ।

प्रियतमस्त्वमिमामनघादंसि प्रियतमा च भयम्भ मिहाद'ति ।

नहि विभाति निशारदितः शशी न च विभाति निशादि विनेशुक ॥३४॥

हे निष्पाप, तुम इसके प्रियतम होने योग्य हो और वह तुम्हारे प्रिया होने के योग्य है । रात्रि के बिना चन्द्रमा नहीं शोभता और चन्द्रमा के बिना रात्रि भी नहीं शोभती ।

महाकवि राजानक रत्नाकर ।

ये कश्मीर के निवासी कवि थे । इनका पूरा नाम राजानक रत्नाकर चामीश्वर है । कश्मीर के राजा अवन्ति वर्मा के समय में ये हुए थे । यह बात राजतरङ्गिणी में लिखी है ।

मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्दनः

अथा रत्नाकरश्चगात् साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः ।

मृत्युं विम्व के अन्तागन्त दर खंडे जाने के कारण भीर
अनुविम्व के उदयाद्रि गिराव दर रहने के कारण भाकाग
की मोझा शायजान के मृण के लिए दो अन्त लिए हुए
मृण के समान मानुस पदमी है ।

अन्तागन्तदरकेऽनुदःखरिखी-अन्तागन्तदरकेऽनुदःखरिखी ।
अन्तागन्तदरकेऽनुदःखरिखी-अन्तागन्तदरकेऽनुदःखरिखी ॥ १५॥

मरीम केम के कारण एक में मिले हुए मृण और पानी
की गाह मोझा के समान खंडा के दावा बनानी दिन और
मृण दोनो के मरीम के मिलने की मोझा अन्तागन्त दुर ।

अन्तागन्तदरकेऽनुदःखरिखी-
अन्तागन्तदरकेऽनुदःखरिखी-अन्तागन्तदरकेऽनुदःखरिखी ।
अन्तागन्तदरकेऽनुदःखरिखी-अन्तागन्तदरकेऽनुदःखरिखी-
अन्तागन्तदरकेऽनुदःखरिखी-अन्तागन्तदरकेऽनुदःखरिखी ॥ १६॥

शायजान के समान और मरीम की समान दावा धातुओं
की धूर के खंडे में भाकाग और दावाओं की दावा के दावा
विम्व का बना दिया है, और जो उदयेवाले मरीम दावाओं
के कारण मानुस हो गयी है, वह दिन की मोझा अपने ही लो
के समान मानुस के दावा हुए पदी ।

अन्तागन्तदरकेऽनुदःखरिखी-
अन्तागन्तदरकेऽनुदःखरिखी-अन्तागन्तदरकेऽनुदःखरिखी ।
अन्तागन्तदरकेऽनुदःखरिखी-अन्तागन्तदरकेऽनुदःखरिखी-
अन्तागन्तदरकेऽनुदःखरिखी-अन्तागन्तदरकेऽनुदःखरिखी ॥ १७॥

उद मृत्यु अन्तागन्त के विम्व दर दावा, वह मरीम
विम्व दावाओं के लिए कहे जाते हैं, जो दावा अन्तागन्त

दिन एक कमल का फूल है। फैलने वाली स
 उसकी केशर हैं। और सूर्यविम्ब बड़ा सा कर्ण
 दिशा अष्टदल हैं, सायंकाल के प्रदोष के कारण
 अंधकार मीरे हैं। वह कमल बन्द हुआ, उ
 हुई।

अस्ताद्रिगोचरार्वा हल्ले चित्तप
 गोरोचनारुचिमरीचि धिरोपनरा
 विम्ब दिनान्तपवनाहतपुण्डरीक-
 पर्यस्तपद्मरजसेव विलहपमानम् ॥

सूर्यविम्ब की किरणें गोरोचना के सम
 हैं। यह सूर्यविम्ब अस्ताचल पर जाता हुआ
 मालूम होता है। सायंकाल के पवन के द्वा
 की विलरी हुई धूल मानो उसमें लिपट गयी

सिन्धौ कुमुम्भाकुमुमस्तपकामिता
 मागिहकामितपनः प्रतिविम्बित
 संपरपतिस्म तितमण्डलमास्तहा
 संधदमनरथकायनचक्रशङ्खी ॥

समुद्र में प्रतिविम्बित होने पर ए
 पुष्पों के गुच्छों के समान लाल और कु
 अस्ताचल के शिखरों के घना जगन के
 के रथ के पहिये टूट तो नहीं गये हैं,
 को समुद्र में देखता है।

अस्ताचलमिव विविगरुपोदयाद्रिभूशान्मिरग
 न्यायनचहरवाचगुडीनशीत्यशालद्वेष सम

खड़ा खड़ा होगये थे और इसीसे कमलवन के गर्दन उठाने की बात समझी गयी ।

आकृष्य मायमित्र पश्चिम दिग्विभाग,
यदाश्नदक्षिरददीर्घं वरायलेन,
साराष्ट्यबुद्बुदकरालनभस्तदाह—

रक्ताम्बुजं तपन विम्बमलम्बितात् ॥ ११ ॥

आकाश एक तालाब है जिसमें तारायेँ बुद्बुद के समान हैं । और सूर्य कमल है । उस कमल को मानों पश्चिम दिशा के हाथी ने अपनी सूँड से खींच लिया है; अतएव सूर्य विम्ब उस समय पश्चिम की ओर दिखायी देता है ।

पर्वतमस्तगिरि सानुनि सान्द्रतोष्य—
रागाष्ट्यण्डविसदृशमरीचिविम्बम् ।

वदर्वकोपित इरक्षुरितानन्तार्थि—

रुष्वांश्चितारकतितेदिन भेदमासीत् ॥ १२ ॥

अस्ताचल के शिखर पर सन्ध्या के कारण खूब लाल सूर्य का विम्ब फैल गया है । यह पार्श्वदेव पर कुपित महादेव के तृतीय नेत्र से निकले हुए अग्नि स्फुलिंग के समान मालूम होता है ।

आविर्भवतिमिरसंगलनानुविद्ध,

संघातुपृथक्प्रविशत्यलमुन्मेषात्तः ।

भाति स्म निःश्वसितपूनातिष्ठावदीर्घ—

विस्तीर्णक्षेत्रफलरजविहसि विम्बम् ॥ १३ ॥

सूर्य का विम्ब फैलनेवाले अवधार के मिलने से और सार्यकाल के प्रकाश के मिलने से थोड़ा काला लिये छाल-पर्ण का बड़ा ही सुन्दर मालूम होता है । यह सूर्य के कुकु-

ढाँटियों को अँजली बनाकर घयराइट के साथ संध्या को
प्रणाम किया ।

मंथ्यातपासगित्पाद्यं तदावन्मि-

विम्वैकदेशजलदः क्षणमस्तरीलः ।

वज्रप्रणाननगलन्ततत्रोहितार्ध-

विच्छिन्नविसृप्यत इवावमासे ॥८॥

यज्ञ के आघात लगने के कारण मुन से बहनेवाले रुधि
से जिसका आघा अङ्ग लाल होगया है और जिसके पं
शिथिल और चिखरे हुए हैं, उस गद्दी के समान एक क्षण
लिप अस्ताचल मालूम होने लगा । क्योंकि उसके एक भाग
लटकनेवाले मेघ का प्राप्त भाग संध्या के सूर्य की कि
से लाल हो गया था ।

भम्बेयुपः परिणतिं समयक्रमेण, सार्धनमःसामि वासापह्वस्य ।
स्रस्तांशुपद्मरविमण्डलबीजकोपवक्त्रं वभार परिपूतर पीषत्वम् ॥९॥

आकाशरूपी तालाब का दिन रूपी कमल सार्धकाल में
पक गया और उस कमल का बीजकरी रविमंडल पीला
और मोटा होगया ।

तुङ्गावकाश रचितस्वितिमातस्य,

शेषं समुत्सुकृतयेव दिव्यसमाधः ॥

वर्द्धधरा इव सरोजमुजोवभूय-

रुद्धप्रकोरक करालित पुण्डरीकाः ॥१०॥

ऊँचे स्थान में सूर्य की स्थिति देखने के लिए उत्सुक हो
कमलचन ने मानो गर्दन उठायी है । क्योंकि उस स
कमलचन में ढाँटियाँ ऊपर उठ गयी थीं, जिससे क

ऊँच इखायड़ होगये थे और इसीसे कमलवन के गर्दन उठाने की बात समझी गयी।

आकृष्य माणमिव पश्चिम दिग्दिग्माग,
वदाम्यददिरददीर्घकरागलेन,
साराच्छुदुदुदकरालनमस्तथाह—

रत्नाम्बुजं तपन बिन्दमलम्बतारात् ॥ ११ ॥

आकाश एक तालाब है जिसमें तारायें शुद्धबुद के समान हैं। और सूर्य कमल है। उस कमल को मानो पश्चिम दिशा के हाथी ने अपनी सूँड से खींच लिया है; अतएव सूर्य बिम्ब इस समय पश्चिम की ओर दिखायी देता है।

पर्वस्तमस्तगिरि स्तानुनि साम्प्रसांध्य-
रागाव्यञ्जविसदृशमरीचिविम्बम् ।

कंदर्पकोपित हरकुरितानलार्धि—

रुष्वाक्षितारकतितेजिन भेदमासीत् ॥ १२ ॥

अस्ताचल के शिखर पर संध्या के कारण खूब लाल सूर्य का बिम्ब फैल गया है। यह कामदेव पर कुपित महादेव के सुतीय नेत्र से निकले हुए अग्नि स्फुलिंग के समान मालूम होता है।

आविर्भवत्तिमिरसंदलनानुविद्ध,

संख्यागुहूषाविषादकमुख्यपातः ।

भाति रम निःखसिजघ्ननशिखावर्धनं—

विस्तीर्णशेषकपरविविज्जि विम्बम् ॥ १३ ॥

सूर्य का बिम्ब फैलनेवाले अंधकार के मिलने से और सायंकाल के प्रकाश के मिलने से थोड़ा काला लिये लाल-धर्ण का पड़ा ही सुन्दर मालूम होता है। वह साँप के फुकु-

कारों से कुछ मलिन हुए सर्प की मणि की शोभा इस समय धारण कर रहा है ।

मुक्ताम्बरस्तिमितस्फुरलुप्यमामलद्मीमलीमसरुचिः प्रकरोपधातः ।
भद्राय वासरद्वितस्फुटलोहितध्रीरुण्योभ्रुस्तगिरिकाननमभ्यविभ्रज ॥१४॥

सूर्य ने अम्बर (आकाश या यत्र) छोड़ दिया; अंधकार-
रूरी चोरी से लूटे जाने के कारण उसकी शोभा मलिन हो
गयी है । उसपर प्रहार पड़े हैं, यह लाल हो गया है और वास
रहित (वासर=रहित, वास=रहित) यह सूर्य अस्ताचल के
घनों में घला गया ।

तेजःप्रकर्षपरिहानिपपेयिवीसमाराग्रक्षेत्रतमसाभिभूयमानम् ।
अभ्योनिधीतपनमन्वपठद्विद्वन्धीरेकात्मना विदधतामिदमेव पुनम् ॥१५॥

सूर्य का समस्त तेज नष्ट हो गया । यह सूर्य के अन्ध-
कार से भूयित हो रहा है यह देख कर दिगम्भी समुद्र में डूब
गयी, क्योंकि एकात्मता - अभेद रहने वालों के लिए यही
उचित है ।

भास्वमादुंमुगामुधिदम्बमानविभ्रः क्षयेण निरग्नविरत्नरिहाय ।
वृत्तानित्सलिलपुङ्गवभङ्गावांजानतविमेव बनार तेजः ॥१६॥

अन्तरिक्ष से धीरे धीरे गिरता हुआ सूर्य का विभ्र जल
समुद्र के आसपास पहुँचा, तब यह कोमल हो गया । मत्तों
ऊपर उछलनेवाली समुद्र की किरणों के मार्ग के कारण
उसका तेज कोमल हुआ है ।

विश्वसमानकविसौमु शिष्यामहस

विष्वादिष्याम्बर दविरत्नानि सूर्य विभ्रम् ।

द्विजं जगज्जनिनी निरगत काल-

वर्द्धन विष्णुविमलम् इति ॥१७॥

सायंकाल होगया है सूर्य की किरणें एक एक गिर रही हैं, मानों सूर्य-विम्ब से रुधिर की धारा बह रही है। वह सूर्य-विम्ब मानो दिन का मस्तक है और मालरूपी लङ्ग से कट गया है, वह समुद्र में गिर गया ।

ये साधवो सुवनमण्डलमीलिभूना

ये साधुता निरूपकारिषु दर्शयन्ति ।

आत्मप्रयोजनवशी कृतविषदेहः

पूर्वोपकारिषु लब्धोपि हि सानुकम्पः ॥१८॥

पृथिवी मण्डल में ये छोछ साधु हैं जो निरूपकारियों पर भी अपनी साधुता दिखाते हैं। अपने स्वार्थ के लिए व्याकुल रहनेवाला लाल भी अपने पूर्वोपकारी पर दया दिखाता है।

हेतोः कुतोऽप्यसङ्गाः सुजना गरीयः

कार्यं निसर्गं गुरुवः स्फुटमारमन्ते ।

व्याप किं ककशलोपि न सिन्धुनाथ-

सुग्रीविमालमपि वदगवानगस्त्यः ॥१९॥

इयमाथ से गुरु सुजनगण किसी कारण वश पड़ा ही कार्य प्रारम्भ करते हैं। अगस्त्य ने घड़ों से उठा कर तरंगों वाले समुद्र का पान किया था।

व्याप्तिं यत्र गुणा न यान्ति गुणिनस्तथादरः स्यात्कुलः ।

किं कुर्याद्गुणशिखिर्लोऽपि पुरुषः पापाद्यभूने जने ॥

प्रेमाकुलविलासिनीमदवशाव्यावृत्तकण्ठस्वनः

सीरहारी हि मनोहरोपि बधिरं किं नाम कुर्याद्गुणम् ॥२०॥

जहाँ गुणों की प्रसिद्धि ही नहीं होती, वहाँ गुणियों का आदर क्या होगा! गन्धर्व के समान आदमियों में बहुत पढ़ा लिखा भी मनुष्य क्या कर सकता है! प्रेमाकुल विला-

सिनी के गला टेढ़ा करने से निकला होता है। पर यह यहाँ पर क्या प्रमाण

यद्यपि शशिशेखरो हरो हरिरूपेण यदीदृश
भमरा अपि यस्मुरा भमी तदिमास्तस्य वि

जो मस्तक पर चन्द्रमा धारण क
ये लक्ष्मी के स्वामी विष्णु हैं और जो
ये सच उस समुद्र को विभूति के बिन्दु हैं

आस्तां ह्रमापहरणं जलधेनलेन दूरे द्वाग्निपरिदीप्त
पृतावदसु यदि तोपकणैर्न बिह्व दम्बयते द्विगुणतः

द्वाग्नि से जिनका मन सन्तप्त हो गया
घट यदि समुद्र के जल से दूर नहीं होती
इतना ही होना चाहिये कि उसके जल से ज
प्यास दूनी न बढ़ जाय।

सूक्ष्मांशुवन्धश्चसितप्रलापप्रजागरोत्कम्पविजृम्भणः।
फलान्ययास्तानि तथा सुखार्थमात्मारणं त्वरपि न

दूती कहती है, उसने सुख के लिए आपके
किया था, पर उसका फल उसे सूक्ष्मांशु, श्वास,
गर, कम्प और जम्माई मिल रहा है।

यदधरगतमाध्याति गृष्णा दिशति नयधरकोत्पलरय निद्रा
किमपि तददृष्टं स कोपि चन्द्रो बदनमयः धियमातनोति त

जो अधर के समीप आने पर
कमल के

काष्ठिगुणैर्विरचिता जघनेषुलम्बी—

हंसा स्थितिः स्तनतटेषु च रम्यहारैः ।

नो भूषिता वयमितीव नितम्बिनीनां

कारणं निगलमधार्यत मध्यमायै ॥२५॥

करधनी के द्वारा जघनों की शोभा बढ़ायी गयी, स्तनों पर उत्तम हार पहनाया गया । पर हम को कोई भूषण नहीं मिला, इसी दुःख से स्त्रियों का मध्यभाग दुर्बल हो गया ।

अक्रोपकारममुना स्वगितानु दिक्षु

प्रेषोष्टुं सुखमलक्षितमेव यामः ।

धम्मिह कन्धरधिरैरभिसारिकाभिः

प्रेम्णातमभिरमितीव शिरोभिर्बुधे ॥२६॥

इसने दिशाओं को छिगाकर स्पष्ट उवकार किया है । अब हम लोग छिप कर अपने प्रिय के घर जायेंगीं । इसी कारण प्रेमपूर्वक अभिसारिकाओं ने गूँथे हुए केशों के कारण सुन्दर सिरों से मन्थकार को धारण किया है ।

भावद्वयमुकुलाञ्जलिपाचितीतः—

प्रसूय संप्रति गतः कथममुमाजी ।

अन्वर्धितमपुष्पकयित्रीरिव

स्वभावात्स्म नलिनी निशि बद्धनिद्रा ॥२७॥

ढौंढीकरी अञ्जली बाँधकर हमने प्रार्थना की थी; इस समय छोड़कर चन्द्रमा कहाँ चले गये । रात को सोयी हुई कमलिनी, कमलपुट में यन्द मयूर के शब्दों से यह स्वप्न देख रही है ।

अस्तादिपार्श्वं सुपत्रम्भुपि तिग्ममामि
 जानीत शीतकिरणोन्मुदिनो न वेति ।
 धारा इवाथ रजनीतिमिरप्रयुक्ता--
 श्वेतेश्विरं धरमभूमिषु चञ्चरीकाः ॥२८॥

सूर्य अस्ताचल के पास चले गये, देखो चन्द्रमा उग्रा
 हुआ कि नहीं, रात्रि के अन्धकार से यह आशा पाकर बर
 (दूत) के समान और घूम रहे हैं ।

निष्कृन्तकजलकरालशिक्षागिम्बुर्ह--
 स्नेहानुबन्धिमिरदीपि दिनावसाने
 संख्यामर्कैरिव सरागकरैः प्रदीपैः ॥२९॥

जिन्होंने कजल का भयानक मस्तरु हटा दिया है और
 ॥ घटों के गोद में धतमान हैं । ये स्नेह (प्रेम या तैल) का
 अनुसरण करने वाले लालकर (हाथ या किरण) के दीप
 देन के अन्त में प्रकाशित हुए, मानों ये सख्या के पुत्र हों ।

पीतलुपारकिरयो मधुनैव सार्व--
 मन्तःप्रविश्य क्षपकप्रतिबिम्बवर्ती ।
 मानान्धकारमपि मानवतीभनस्य
 भूतं विभेद यदसौ प्रससाद सद्यः ॥३०॥

क्षपक में (मद्य पीने के पात्र में) चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब
 गढ़ा था, मालूम होता था कि लियों ने शराब के साथ चन्द्रमा
 ने भी पीलिया । क्योंकि उनके हृदय में पीठ कर चन्द्रमा ने
 ॥ की अन्धकार का नाश कर दिया और ये शीघ्र ही

कथाहितान्तरकालीयुमदेन कथ-

मधोदिने नववपुःपलम्बिनदीः ॥

आलोचनेष्वनुमद्व्याचक्षते

अनुमद्व्याचक्षते नववपुःपलम्बिनदीः ॥

सुरा के नशा के कारण यह सोलने के लिए उतराहिन
हूँ । पर भाषा कहने पर यह लज्जित होकर चुप रह गयो ।
इसने अपना कथन समाप्त नहीं किया, इसने पति का कुनू-
हल भीर यह गया ।

राजशेखर ।

इन्होंने कर्पूरमंजरी, पाल रामायण, विशाल भजिका
और पाल भारत नाम के नाटक बनाये हैं । ये महाराष्ट्र देश
के निवासी थे । इनके पिता का नाम ठीक ठीक मालूम नहीं
होता । इन्होंने अपने को एक जगह दीर्घकि लिखा है एक
जगह दीर्घकि, सम्भवतः इनके पिता का नाम दुर्घकि या
दुर्घकि होगा । ये नाम सुनने में ज़रा विचित्र मालूम पड़ते हैं ।
इनकी माता का नाम शीलवती था । महाकवि भक्तकालदा
इनके पितामह थे । पायापर कुल में ये उत्पन्न हुए थे ।
पालरामायण की प्रस्तावना में स्वयं राजशेखर यह बात
कहते हैं—

स मूर्त्वा वप्राग्नीह्वगुणगण हवाकालजलदा

सुराजन्दः सोऽपि अवशपुटयेयेन वपमा

न चान्ये गण्यन्ते सरलविराजप्रभृत्तपो

महाभागस्मिन्नयमजनि चापावरगुले ।

कुछ लोग राजशेखर को शीर समग्र ग्रन्थों में प्रायः शीर का ही सम्स्कार। इनके शीर होने की प्रसिद्धि लोगों में फैल गयी। यशस्विलक नाम में राजशेखर के लिए प्रयत्न करने की बात लिखी है। सगर दूसरे हैं।

भयन्तीसुन्दरी नाम की घट्टमान कुम्हारोंने व्याह किया था। ये कान्यकुब्ज के रघु के गुरु थे। यह बात विशालमजिका में स्थित लिखी है—

रघुकुलतिलको महेन्द्रपालः
सकलकलानिलयः स यस्य शिष्यः।

महीपाल का शिलालेख प्राप्त हुआ है, जो संयत् का लिखा हुआ है। यह महीपाल माधव पुत्र था। इससे राजशेखर का समय नवीं सदी समझना चाहिए। दशरूपक, औचित्य विचार प्रयोगों में इनके श्लोक उद्धृत हुए हैं।

राजशेखर की कविता घड़ी ही मनोहर है। इनकी प्रशंसा में शङ्करवर्मा ने एक श्लोक लिखा है, लिखा जाता है—

पातुं श्रीप्रसादनं रचयितुं वाचः सतां सम्मता,
भ्युत्पत्तिं परमामवाप्नुमवधिं सन्धुं रसघोतसः
भोक्तुं स्वादुफलञ्च जीविततरोर्ययसि ते श्रीशेखर

इनके कुछ श्लोक सुनिये —

पर्व नागरखण्डमाद्रे'सुमर्गं पृगीकलैलासथा ।

कपूरस्य च तत्र कोऽपि चतुरस्तामूलयोगक्रमः ।

देशः केरल एष केलिसदनं देवस्य शृङ्गारिण-

स्तद् दृष्ट्वा कुरु कोमलाङ्गि सफलं हाधीयसी लोचने ॥१॥

हरा और अच्छा पान सुपारी और इलायची और इनमें कपूर की साधधानी से योग यहाँ होता है । यह केरल देश है, यह कामदेव का कीड़ास्थान है । हे कोमलाङ्गि, इसको देखकर अपनी आँखों को सफल करो ।

वाक्स्तम्बाङ्गसमुद्रचैरभिनयैर्नि'स्य रसेल्लासतो,

वामाङ्गयः प्रत्ययन्ति यत्र मदनकीडामहानाटकम् ।

भग्नान्धमास्तव दीप्तयेन त इमे गोदावरीः स्रोतसां

सप्तानामपि वार्तिप्रियण्विनां द्वीपान्तराणि भिताः ॥२॥

यद्यन मानसिक आघ और शरीर के द्वारा उत्पन्न होने वाले अभिनयों से जहाँ स्त्रियाँ हर्षपूर्णक कामदेव का महानाटक खेलती हैं, समुद्र में मिलनेवाली गोदावरी की सारी धाराओं से द्वीप के समान बना हुआ यह देश है ।

कावेरी कवरीव भामिनि सुको देव्यः पुरो दूरयता ।

पुनीर्नागलताधितैर्यदिशत्पारसेपविदुषामिव ।

कर्णादीजनममनेषु अवनैर्यस्याः पयः प्रवितं ।

पोम्वा भामिगुराभिराचरुचिभिः प्रार्थी दिशं नीयते ॥३॥

हे देवि, कावेरी नदी पृथ्वी देवी के केशपारा के समान मालूम होती है । यह आगे देखो, लताधित सुपारी के वृक्षों के द्वारा यह आलिङ्गन विद्या का उपदेश दे रही है । कर्णाट की स्त्रियों के स्नान के समय उनके जघनों से उछाले जल को पीकर पूर्व दिशा की ओर जा रही है ।

यत्सर्वं त्रिदिवाय वर्त्म निगमस्याहं च यत्पतमं
स्वादिष्टं यदैकवादि रसाच्चतुष्टयं यद्वाहमयम्
तद् यस्मिन् मधुरप्रसादि रसवत् कान्तञ्च काव्याष्टम्
सोऽयमुद्यु पुरोविदमंविषयः मारस्वतीजन्मभूः ॥

जो कल्याण है, जो स्वर्ग का मार्ग है, जो श
उत्तम भूत है, ईश्वर से भी जो स्यादिष्ट है जो य
चन्द्र है वह मधुर प्रसन्नकरनेवाला सरस और
काव्यामृत जिसमें है यह यह विदर्भ देश है । हे सु
विद्याओं की जन्मभूमि है ।

यद्युपोनिः किल संस्कृतरूपं सुहृतां मिहामु यमोदते
पत भोसपथावतारिणि कटुभाषाभराणां रसः ।

गद्यं शूर्पापदपद्मं रतिपतेस्तथाहृतं यद्वच-

लाटितादौल्लसिताङ्घ्रि पश्य शुद्धी दूष्येनि मेरुमतम् ॥५॥

जो संस्कृत भाषा का मूल कारण है, जिसे छियाँ घोल
हैं, जिसके सुनलेने पर अन्य भाषा के भक्षर कठोर मान्द
पड़ते हैं, जिसका असमस्त पद गद्य कामदेव का स्थान है, वा
प्राकृत जिनकी बोली है । हे लाटिताङ्घ्रि, उस लाट देश के
देखो, उसके देखने के लिए आँखों का निमेष ग्रन् भूल

सर्वं सुभ्रु पुराः कलिन्दतनयागीशं गङ्गिणीः मगो,
शामः कालियपञ्चगरं यमुना दूगोचरं वर्तते,
बभ्रुशार्पमणीमिमां दुहितं वैवस्वतस्यानुजां

परया स्वर्गपरीक्षितशमदूतत्वापी रवगा मोदती ॥६॥

हे सुभ्रु, यह गङ्गा की गङ्गी कलिन्दतनया यमुना ग
जहाँ कालिय मारा रहता है । इस गूर्य की कन्या ।
जिसकी छोटी बहिन को नगरकार करो, जिसकी गो

वहिन तापी है, जहाँ सुवर्ण की परीक्षा करने योग्य पत्थर होते हैं ।

यथाये' न तथानुरज्यति कविप्रामोदगीगु'ग्धने ।

शास्त्रीयासु च लौकिकीषु च यथामन्यासु नम्योक्तिषु,
पञ्चालास्तव पश्चिमेन न इसे नामा गिरां मात्रना-

मदुदूषेतिथी मवन्तु यमुनां त्रिस्रोतसं चान्तरा ॥७॥

आर्ये, जहाँ का कवि प्रामोद कविता करना नहीं चाहता, किन्तु शास्त्रीय लौकिक सुन्दर और नयो उक्तियों में ही वह अनुराग प्रकाशित करता है, तुम्हारे पश्चिम के ओर यही वह पाञ्चाल देश है, जहाँ यक उक्ति का बड़ा आदर है, उस यमुना और गङ्गा के बीचवाले पाञ्चाल देश को देखो ।

यो मार्गः परिधानकर्मणि गिरां वः सूक्तिमुद्राक्रमो

भङ्गीषां कवरोषयेषु रचनं यदुभूषणालीषु च
दृष्टं सुन्दरि काम्यकुम्भजललनालोदैतिहात्म्येष्व य-

ष्टिभ्रमते सकलान् दिक्षु तरसा तत्कौतुकानि स्त्रियः ॥८॥

काम्यकुम्भ स्त्रियों के कपड़े पहने की जो रीति है, धोलने का जो ढंग है और वेशभूष बनाने की तथा गहने पहनने की जो विधि है उसको काम्य देश की स्त्रियां कौतुक पूर्वक सीखती हैं ।

इन्द्रोर्लक्ष्म त्रिपुराजयिनः कण्ठमूलं सुरारं-

स्वप्नागानो मदजलमपीर्मात्रि मण्डस्थलानि,

भवाप्युर्वोचलवतिलक, श्यामलिङ्गानुलिता-

न्यामान्येवं यद् भवति किंशोभित्वदीर्घैः ॥

चन्द्रमा का कलङ्क शिव का कण्ठमूल, श्रीरुग्ण और तुम्हारे हाथियों के कपोल स्थल जिनमें काला मदजल

सगा हुआ है, हे पृथ्वीतन्मूयण ये सब मात्र भी काटे
फिर आपके यश ने किसको श्वेत बनाया ।

अदम्यविष्णु भूः सशतितरां योजनरानम्,
मदा वायुः पूषा गगनपरिमाणं कथयति ।
इतिपायो भावाः स्फुरदवचिमुद्रामुडुलिताः
सर्वा प्रजोन्मेवः पुनरपमयीमा विव्रपते ॥

पृथ्वी समुद्र से घिरी हुई है और वह समुद्र सौ योजन
परिमाण का है, आकाश में सदा परिभ्रमण करने वाला यह
अधिक सूर्य आकाश का भी परिमाण बतलाता ही है, इस
प्रकार जितने पदार्थ हैं, उन सब की कोई न कोई अवधि है,
पर सज्जनों के बुद्धिविकास की सीमा नहीं, वह असीम है ।

दातृर्षारिपरस्पृशनि तद्भिद्रगाङ्गेयशृङ्गारिता,
वृक्षेभ्यः फलपुष्पदायिनि मयी मत्तालितृन्दस्तुतिः ।
भीतगातरि वृत्तिदातरि गिरौ पूजाकरैश्चामरैः
सत्कारोऽयमचेतनेष्वपि विधेः किं दातृषु शातृषु ॥

देनैवाले मेघ के मस्तक पर सुवर्ण शृङ्गारित बिद्युत
होती है, वृक्षों को फलपुष्प देनेवाले वसन्त के मतवाले
भीरों का समूह स्तुति करता है, डरे हुएों की रक्षा करनेवाला
और वृत्ति देने वाला पर्यंत भरना रूपी चामरों से पूजा
होता है । अचेतनों में भी दाता का इस प्रकार का सम्म
देखा जाता है, फिर चेतन दाता के विषय की तो या
ही क्या ।

दाहोम्भः प्रस्तुतिपयः प्रचयवान् वायुः प्रणालोचिनः
शवासाः प्रोद्धितदोषदीपलतिकाः पाण्डिभि मग्नं वपुः ।

किञ्चान्यत् कथयामि रात्रिमखिलां स्वन्मार्गवातापने
इत्यन्त्यनिष्कन्दमहसस्रस्याः स्थितिर्वर्तते ।

जल गर्म मालूम पड़ता है, भोजन पस्तर भर होगया है, आसूँ चढ़ता जाता है, यह नालो में चढ़ने के योग्य होगया है, श्वास उज्ज्वल दीप ज्वाला के समान अविराम निकल रहे हैं, समस्त शरीर पीला होगया है, और क्या कर्हूँ, समूची रात तुम्हारा मार्ग देखने के लिए वातायन पर बैठी रहती है और हाथ को छाता बनाकर अपने पर पड़नेवाली चन्द्रमा की किरणों को रोकती है, ऐसी दशा उसकी हो रही है (यह दूती का नायक से कथन है)

लीलाशुकः ।

इस कवि का कुछ परिचय नहीं मिलता । इनके विषय में केवल इतनाही कहा जा सकता है कि यह दक्षिणी थे, शिव-भक्त थे और श्रीकृष्ण में इनकी अटल भक्ति थी ।

यह कोई महाकवि नहीं थे, किन्तु पण्डितराज जगन्नाथ कुलशेखर और भल्लट आदि के समान मधुर और भावपूर्ण श्लोकों के निमाता थे । इनके श्लोकों का संग्रह "कृष्णकर्णो-मृत" नाम से प्रसिद्ध है । यह तीन शतकों में विभक्त है । इनके प्रबन्ध से कुछ चुने हुए श्लोक नीचे दिये जाते हैं ।

मुकुटापमाननयनाम्बुजविभो मुरलीजितादमकरन्दनिर्भरम् ।

मुकुरापमायमृदु यण्डमण्डलं मुन्यर्कमं मनसि मे निद्राभृशम् ॥१॥

श्रीरूप का मुखकमल मेरे मन में प्रकाशित हो, जिस
आँखरूपी दो कोंदियाँ लगी हैं, बंसी का निनाद जिस
मकरन्द है, जिसका कोमल कपोलमण्डल दर्पण के सा-
थ चमकता है ।

मदशिलण्डिशिलण्डविभूषणं मदनमन्धरविग्धं मुक्ताम्बुजम् ।
मज्जघ्ननयनाद्यलयाश्रितं विजयतां मम बाहुभयनीयितम् ॥१॥

मस्त मयूर के पूँछ को जिसने भूषण बनाया
विलास के कारण जिसका मुखकमल सुन्दर होगया है, प्र-
की स्त्रियों के फटाक्ष से जो उगा गया है, उस मेरे माँझ
जीवित की जय हो, अर्थात् उसकी जय हो जिसका मैं वर्ण
करना चाहता हूँ ।

दुना प्रसन्नं मुखेन्दुतेजसा पुरोऽपतीर्णं हृदयामहामुखे ।
तदेव लीलामुरलीरपामृतं समाधिविप्राय कदा नु मे भवेत् ॥२॥

फय यह कृपासागर मेरे सामने उपस्थित होगा यह कब
अपने प्रसन्न मुखचन्द्र से मुरली बजावेगा और यह गुरली-
ध्वनि कब मेरी समाधि का विघ्न होगी । अर्थात् त्रिप्राय
लिख समाधि लगायी जाती है उसको मुरली ध्वनि सुनायी
पड़े तो समाधि की आवश्यकता ही क्या है ? यह विघ्न ही
समाधि की पूर्ति है ।

पतामूरयं दूरे परिचक्षुमनीनां मज्जघ्न-
दूशां वरदं शरवन्भिर्मुक्तामनोहारि वपुषम् ।
अनामूरयं वाचामनिदं मुदयानामनि कदा
दूरीदूरये देव दारुणिनीकोत्पन्नदिवम् ॥३॥

मुनियों की परिपन् जिसका केवल विचार करती है, प्रज की स्त्रियाँ जिसको अपनी आँखों से घरा में करती हैं, जिसका शरीर त्रिभुवन में सुन्दर है, वचनों से जिसका वर्णन नहीं होता, उस देव को मैं कब देखूँगा, जो थोड़ा विकसित नील-कमल के समान कान्तिवाला है ।

सुष्यान्मेतत्पुनरुत्कशीभमुज्ज्वेतरांशोरुदयं मुखेन ।

तृष्णाम्बुराशिं त्रिगुणोक्तोति कृष्णाद्वयं किंचन जीवितं मे ॥५॥

चन्द्रमा का उदय पुनरुत्क है; क्योंकि उसीके समान श्रीकृष्ण का मुख है, इस कारण चन्द्रोदय को अपने मुख की शोभा से अनर्थक घनानेवाला और जिसके दर्शन से तृष्णा (अतृप्ति) का समुद्र बढ़ जाता है, वह एक कृष्ण ही मेरा जीवन है ।

शुश्रुपसे यदि वचः नृणु मामकीनं पूर्वैरुत्कविभिर्न कदाक्षितं पत् ।

मीराजनकमधुरं भवदाननेन्दोनिर्भ्यान्ममहंति चिराय शशिप्रदीपः ॥६॥

यदि कुछ सुनना चाहते हो तो मेरी बात सुनो, जिसे पहले के महाकवियों ने भी नहीं कहा, जो एकदम नयी है । यह यह है—यह चन्द्रमारूपी दीपक आपके मुखचन्द्र की भाँती के ही योग्य है ।

यो दृष्ट्वा यमुनां पिपासुरनिशं भूहो यवां गाहते ।

विद्युन्वानिति नीलकण्ठनिबहो द्रष्टुं समुत्कण्ठते ॥

वर्षासाय समालपल्लवमिति स्थिन्दति यो गोपिकाः ।

कान्तिः कालियशासनस्य वपुषः सा पावनी पातु वः ॥७॥

प्यासे गीर्वाँ का समूह जिसको देखकर जमुना में पानी पीने जाता है । मेघ है, वह समझकर मयूर जिसको देखने के

लिए उरकण्ठित होते हैं, यह तमाल का पत्र है यह जा
गोपिकाएँ जिसको तोड़ना चाहती हैं, उस कालियदह
करनेवाले श्रीकृष्ण के शरीर को पवित्र कान्ति तुम्हा
रक्षा करे ।

भयि मुरलि मुकुन्दस्नेहकारविन्दरवमनमधुरसज्जं त्वां प्रणमाय पावे ।
भयमणिसमीपं प्राप्तवन्त्यां भवन्त्यां कथय रहसि कने' महुदशां न-

हे मुरलि, हे कृष्ण के हंसते मुखकमल के श्वास का ।
रस जानने वाली, तुमको प्रणाम कर मैं यह प्रार्थना क
हूँ । जय तुम नन्दपुत्र के मुँह के समीप जाना तो एकान्त
उनके कानों में मेरी दशा अवश्य कहना ।

भमुनालिलगोपगोपनार्थं यमुनारोषसि नन्दनन्दनेन ।
दमुनावनसंभवः पपे नः किमुनासौ शरणार्थिनां शरण्यः ॥१॥

इस नन्दनन्दन ने यमुना के तीर पर सब गोपों की रक्षा
करने के लिए कालियदह का मधन किया, क्या यह शरण
चाहने वालों को शरण न देगा ।

धृम्दावनदुमतलेपु गवां गलेपु वेदावसानसमवेपुष दूरयते पद ।
तद्वैशुनादनपरं शिशिविच्छिन्नं मद्य स्मरामि कमलैक्षणमभनीलम् ॥१॥

धृम्दावन के वृक्षों की छाया में, गीलों के समूह में, वेदों
की समाप्ति में, जा दिखायो पड़ता है, उस यशो वज्रानेवाले
मयूर पुच्छ धारण करने वाले कमल के समान आँसों
वाला भीरु मेघ के समान नीले ब्रह्म का मैं स्मरण
करता हूँ ।

देवकीतनयपूजनपूतः, पूतवारि-धरयोदक पूतः ।
ययद'स्यूतधनञ्जयपूतः, किं करिष्यति त मे वसपूतः ॥१॥

यदि हमने अपने को देवकी सनय के पूजन से पवित्र किया है, यदि हम पूजनादि के चरणोदक से प्रक्षालित हुए हैं, यदि हमने अर्जुन के समर्थि का स्मरण किया है तो वह यमदूत हमारा क्या कर सकता है ।

भाताग्रपाणिकमलं प्रथमि प्रतोदमालोलहारमणिकुण्डलहेममूत्रम् ।

भाविःश्रमाग्निकणमग्न्युदनीलमग्न्यादायं धनञ्जयरथाभरणमहोनः ॥१२॥

जिसका हस्तकमल लाल है, कीड़ा जिसको प्रिय है, हार तथा कुण्डल जिसके हिल रहे हैं, परिधम से जिसके पसीने निकल रहे हैं जो मेघ के समान नीलवर्ण का है वह अर्जुन के रथ का भूषण दिव्यप्रभा हम लोगों की रक्षा करे ।

कालिन्दीपुलिनाशरेपुमुसली यावद्गतः खेलिषु

तावत्कटुरिकापयः पिब हरे धर्षिष्यते ते शिक्षा ॥

इत्थं बालकया प्रतारयन्तः क्षुब्ध यशोदागिरः

पापाद्गः स्वशिक्षां स्पृशन्प्रमुदितः क्षीरेध्ववीते हरिः ॥१३॥

घलदेव जय तक यमुना के तीर खेलने गया है तब तक हे कृष्ण कलोर का दूध पीलो, तुम्हारी चोटी बढ़ेगी । कृष्ण बालक था इसलिए उसे ठगने के लिए यशोदा ने ये बातें कहीं । कृष्ण आधा दूध पीने पर अपनी खुदिया देखने लगा, वह कृष्ण तुम्हारी रक्षा करे ।

लावण्यवीचीललिताद्भूषां भूषापदारोपितपुण्यवर्हाम् ।

कारुण्यधाराण्डकटाक्षमालो वागी मयेवसुवर्षशलक्ष्मीम् ॥१४॥

लावण्य परम्परा ही जिसके शरीर का सुन्दर भूषण है जिसने भूषण के स्थान पर पवित्र चर्ह (मयूर पुच्छ) धारण किया है, जिसकी चितवन करुणा की सुन्दर धारा है, उस गोपकुल की लक्ष्मी, बाले को मैं भजता हूँ ।

प्रातःस्मरामि दधिघोषविभूतनिद्रं
निद्रावसानरमणीयमुत्तारविन्दम् ॥

इयानवद्यवपुषं नवनीतचोर-

म्नोलितादंजनघनं नयनाभिरामम् १५३

प्रातःकाल दही मथने की आवाज़ से जिसकी निद्रा खुल गयी है, निद्रा खुल जाने से जिसका मुग्धकमल गुम होगया है जिसका शरीर सुन्दर और मनोहर है जिसका कमलरूपी आँखें खुल गयी हैं उस नयनाभिराम को प्रातःकाल स्मरण करता हूँ ।

घररुचि

राजा विक्रमादित्य के समय में एक घररुचि का पत्र मिलता है । पत्रकीमुद्दी नाम की एक पुस्तक घररुचि को बनायी है, जिसमें पत्र लिखने की विधि बतलायी गयी है । उस पुस्तक के प्रारम्भ में लिखा है ।

विक्रमादित्यभूतस्य कीर्तिमिदं निर्वीणकः
धीमान् वररुचिर्धर्माग्नोति पत्रदीप्तदीप्तः
राज्ञां मन्त्रिणप्रवीणानां वञ्चिणानां तथैव च,
गुरुनां स्वामि भक्त्यानां तथैव चित् पुण्योः
मन्त्र्यानिमृष्यशत्रूणां तथैवाभ्यविषेकनाम्,
घनेनाग्निं सर्वेषां वररुचिर्वादिह मन्त्रे ।

इस पुस्तक में पत्र लिखने का प्रकार बतलाया गया है, जिसका किस प्रकार का पत्र लिखना चाहिए या नें इस पुस्तक में बतलाया गया है । इसके मन्त्रों का नाम पुण्य

था जिन्होंने घासवदत्ता नाम का गद्यकाव्य लिखा है । सुवन्धु ने वैद्यशतक नाम का एक और ग्रन्थ बनाया है ।

व्याकरणवाति ककार कात्यायन को भी घररुचि कहते हैं । पर वे इन घररुचि से भिन्न हैं । उनका समय लग-भग ६० सदी के चार सौ वर्ष पूर्व माना जाता है, जिस समय महानन्द का राज्य था । यह बात भविष्य पुराण में लिखी है । पतञ्जलि मुनि के पहले कात्यायन हुए थे और पतञ्जलि का समय ६० सदी से १५० सौ वर्ष पूर्व है । इसलिये घररुचि का पूर्वोक्त समय ठीक जान पड़ता है ।

मार्कटप्रकाश नामक एक मार्कट व्याकरण के कर्ता घररुचि का भी पता मिलता है । बहुत संभव है कि ये घररुचि धिकमादित्य के समय वाले हों और पालिव्याकरण के कर्ता कात्यायन हों, इसप्रकार घररुचि नामक दो पंडितों का पता मिलता है, कौन प्रथम किस का बनाया है, इसके निश्चय करने का इस समय कोई उपाय नहीं ।

सूक्तिमुक्तावाली में महाकवि राजगोखर ने इनके लिए एक श्लोक कहा है—

व्यथार्थता कथं नास्ति भाभूदररुचेरिद ।

व्यथत कण्ठाभरणं यः सदररोदययिवः ॥

इस श्लोक से भाहूम होता है कि कण्ठाभरण नामक एक और ग्रन्थ इन्होंने बनाया था ।

दानोपभोगवन्ध्या वा सुदृन्द्रिया म सुज्यते ।

पुंसां यदि हि सा लक्ष्मीलक्ष्मीः कतमा भवेत् ॥१॥

जो दान और उमोग के काम में न आवे, जिसका उमोग मित्रगण भी न कर सकें, वह यदि पुरुषों के लिए लाने है तो अलक्ष्मी कान पढ़ा जायगी ।

पाण्डुध्याय शर्म धरुभं कमलमुनि ललितमल्लं करे स्थितनाम
गुण्यालोका दीना दूष्टिः शिखराममिषतिनरयना तनुस्तनुतां गता
ध्यानैः प्राप्तामन्दा बुद्धिमंदवननि रहमि रममं करोपि न सत्कथां
को नामाद्यं रम्यो व्याधिरस्तु सुतनु कथय किमिदं न सन्निवृत्तिं वातु

हे कमलमुनि, तुम्हारा पीला मुख दुर्बल हो गया, हे केशपासवाला मुख तुमने हाथ पर रखा है, दुःखी नेत्र मानों देखने की शक्ति जाती रही, शरीर दुर्बल हो गया जिससे करधनी मस्तक की ओर चली गयी है । हे मद्भक्त तुम्हारी प्रखर बुद्धि सदा ध्यान में लगी रहती है, अकेले रहना तुम्हें पसन्द है, तुम यातचीत तक नहीं कष्ट सुतनु, तुम्हारा यह कौन सा विलक्षण रोग है, कहो यह क है, जिससे तुम आतुर नहीं हो ।

हस्ते कपोलममलं पथि चक्षुर्मनस्त्वपि ।

व्यस्यमास्ते चिरंतस्या मानस्यावसरः कुतः ॥३४॥

सुन्दर कपोल हाथ पर है, आँखें मार्ग की ओर ।
दुर्बल है और मन सदा तुममें लगा हुआ है, ऐसी दशा मान करने को अवसर कहाँ है ।

बहुनास किमुक्तेन दूति मरकार्यसिद्धये ।

स्वर्गाप्तान्यपि दत्तानि वस्तुष्वन्येषु का कथा ॥३५॥

हे दूति, अधिक क्या कहा जाय, मेरे कार्य की सिद्धि के लिए तुमने अपने मांस तक दे दिये, अन्य वस्तुओं की बात ही क्या ?

कविता-कीमुदी ।

इन्द्रगोपैर्वमौ भूमिर्निचितेन प्रवामिनाम् ।

अनङ्गवानैर्द्वहमेदस्तुतलोदितविन्दुभिः ॥५॥

इन्द्रगोप (इस नाम का एक कोड़ा) भूमि में
समय कामदेव के चाणों से छिदे प्रवासियों के हृदय
हुप रुधिरविन्दु मानो भूमि पर फैले हैं ऐसा मात्स्य

सान्द्रनीहारस्रवीततोषगर्भगुरुदण ।

सततस्तनिताभाली निपसाशमिसानुपु ॥६॥

सघन कुहरे से ढंकी हुई, गर्भ में जल रख
मारी पेटवाली और सदा घोलनेवाली मेघों की
के शिखर पर धेड़ी ।

न्योत्रि गीलाम्बुदृष्टं गुहृष्टिभयादिव ।

जमाह मीधमसतापो हृदयानि वियोगिनाम् ॥

आकाश में फाले काले बादल छा गये, यई
होगी, इसी भय से मीधम अस्तु का सन्ताप नि
हृदय में खला गया अर्थात् वर्षाकाल में आग
वियोगियों का हृदय जलने लगा ।

भालोदितमाकलयन्कदलमुत्कम्पितं मधुकरेण

संस्मरति, पथिषु पथिको दयिताङ्गुलितर्मनाल

थोड़ा लाल और झमर के द्वारा कपाया हुआ
पथिकों ने मार्ग में देखे और उससे उन्हे अपना
उन अंगुलियों का स्मरण हुआ, जो कि तज
समय भी सुन्दर मात्स्य पड़ती हैं ।

प्रसादपन्था शिरसा चन्द्रमन्तर्मलीमसम् ।

सीमतापः कृत्रो भास्वानुपेराक्षोदितपुतिः ॥७॥

कमलिनी सिर नया कर मोतर से काले चन्द्रमा को म
रही है, यह देखकर सूर्य क्रोध से लाल हो गया और उस
कड़ा ताप या क्रोध किया ।

कलमं कलमारातिगुह्यमूर्धतया शनैः ।

विननामान्तिकोदभूतं ममाग्रानुमिवोत्पलम् ॥१०॥

कलम नामक धान का मस्तक फूल के भार से बहुत
भारी हो गया था इस कारण यह मत गया मालूम होता था
मानों अपने पास ही फूले हुए कमल को सूँघने के ।
उसने थोड़ासा सिर नयाया है ।

मयेवाग्रमसम्पृद्यः संपन्नं कनु यास्यति ।

शालेर्वियोगभीत्येष क्षत्राग्रमःकृशतां वयी ॥११॥

हमहीं ने उसे जन्म दिया और बढ़ाया, अब तयार होकर
न मालूम कहाँ जायगा, मानों धान के वियोग होने के भय
से ही खेतों का जल सूखने लगा ।

मप्युनेव कृशां प्रीथी कर्णास्तु ददितामिव ।

शरदसादमनवच्छशाङ्कस्य निशाङ्कनाम् ॥१२॥

मानों क्रोध से प्रीप्त शत्रु में चन्द्रमा की रात्रि नाच की
जो खी हवा हाँगयी थी और धराकाल में जो रोनी थी, उसे
शरदशत्रु में प्रसन्न किया, अर्थात् शरदकाल के माने से
रात्रि सुन्दर हुई ।

व्यक्तातिथि विज्ञीने शयैः केदारवार्तिभिः ।

मानुषैःशतपा शाठिरभून्मानुषाङ्गुलान् ॥१३॥

अपने उपकार करने, वाले खेत के जल अब भीरे भीरे
खने लगे, तब बड़े दुःख से धान गीला हो गया और उसने
पना मुँह भीचा, कर लिया ।

वशावशाभिजायैव यदि दुःखाकुले कुले ।

तत्र तत्राक्षर्यमेऽस्तु नाघवाराधनधनम् ॥१४॥

जहाँ जहाँ मैं उत्पन्न होऊँ, चाहे दुःख से व्याकुल कुल मैं
ही मेरा जन्म क्यों न हो, वहाँ वहाँ मेरा माघव का आराधन
रूपी धन सदा बना रहे, उसका नाश न हो ।

वाल्मीकि (आदिकवि)

ये आदिकवि कहे जाते हैं । उन्होंने ही प्रसिद्ध रामायण
काव्य बनाया है, लौकिक छन्दों में इसी काव्य की रचना
पहले पहल हुई है, इस कारण यह काव्य भी आदिकाव्य
कहा जाता है ।

रामचन्द्र लड्डा विजय करके अयोध्या चले भाये, राज्य-
शासन करने लगे । किसी लोकापवाद के भय से उन्होंने
लक्ष्मण को आज्ञा दी कि सीता को कहीं जङ्गल में ले जाकर
छोड़ भागो । लक्ष्मण ने सीता को नर्मदा नदी के उस पार
जाकर छोड़ दिया । उसी समय वाल्मीकि ऋषि से सीता
की भेंट हुई । उसी समय वाल्मीकि ऋषि की कविता शक्ति
जाग उठी और ये वाल्मीकीय रामायण बनाने लगे, क्योंकि
रामचन्द्र के भादर्श पुण्य होने की बात वे पहले जारद ने सुन
चुके थे । रामायण के बनाने में ऋषि के १०, १२ वर्ष लगे । जब
रामचन्द्र ने मर्यमेघ यह प्राकम्भ किया था, उस समय राम-
चन्द्र के पुत्र लव और कुश ने वाल्मीकीय रामायण का गान
किया था । जब कुश को शत्रु भीरु शत्रु विद्या की शिक्षा

रामचन्द्र के बिना हमलोगों को लौटा देखकर
अयोध्यानगरी समी याल और वृद्धों के साथ आ
हो जायगी ।

निर्यातास्तेन वीरेण सद नित्यं महात्मना ।
विहीनास्तेन च पुनः कथं ब्रह्मण वा पुरीम् ।

हम लोग उस महात्मा के साथ नगरी से निकल
आये हैं, पर अब उस महात्मा के बिना हम लोग उस
को कैसे देख सकेंगे ।

इतीव बहुधा वाचो बाहुमुपयम्य ते जनाः ।
विलपन्तिस्म दुःखाताडितस्ता दृष्ट्वाग्रगाः ॥ ११ ॥

इसी प्रकार ये अयोध्यावासी हाथ उठा कर दिल
काटते थे, ये उस गी के समान दुःखी थे, जो अपने बछड़े
पिछुड़ गयी हों ।

ततो मार्गानुमारेण गत्वा द्विषितः शत्रुम् ।
मार्गनाशादिशत्रेण महता समभिप्लुताः ॥ १२ ॥

कुछ दूर तक तो ये टीक रास्ते से लौटे, पर भागे जाकर
ये मार्ग भूल गये और इससे उन्हें थड़ा कष्ट हुआ ।

रथमार्गानुमारेण व्यवर्तन्त मनश्चिन्तयन् ।
किमिदं किं कल्पिष्यामो ईवेनोपहता इति ॥ १३ ॥

जिस मार्ग से रथ लौटा था, उसी मार्ग में ये भी लौटे
यह क्या है समागी हमलोग क्या कर रहे हैं, यह बात उनकी
समझ में न आयी ।

तदा वषागतैर्नैव मार्गेण ह्यन्वयेन च ।
अयोध्यायगमयन्ते वीर्यं वीर्यवान् ॥ १४ ॥

उनका चित्त थक गया था, वे उसी मार्ग से लौटे, जिस मार्ग से आये थे, वे उस नगरी में लौट आये, जहाँ के वासी दुःखी थे ।

भालोरथ नगरीं तर्हि च क्षयव्याकुलमानसाः ।

आवर्तयन्त तेऽधूनि गणैः शोकपीडितैः ॥१६॥

अयोध्या नगरी की दशा देखकर वे बहुत व्याकुल हुए, शोक पीड़ित भाँसों से वे पुनः आसू घटाने लगे ।

एषा रामेण नगरी रक्षिता भातिशोभते ।

आपणा गच्छेनेव हृदादुःखेनरमणा ॥१७॥

राम के बिना आज इस नगरी की शोभा जाती रही, जिस प्रकार गच्छ के द्वार मरु के उठा ले जाने के पश्चात् किसी तालाब की शोभा नष्ट हो जाती है ।

चन्द्रहीनमिशाकाशं तोषहीनमिशर्चवम् ।

अपरब्रह्मलानन्दं नगरं ते दिषेनता ॥१८॥

चन्द्रमा के बिना आकाश की, जल के बिना समुद्र की जैसे शोभा नष्ट हो जाती है, उसी तरह राम के बिना आनन्द-पूर्ण शोभाहीन उस नगर को उन लोगों ने देखा ।

ते शानि बेरमानि महाधनानि दुःखेन दुःखीरहता विराम्तः ।

नैव प्रयत्नः स्वजनं परं वा निरोक्षमाथाः प्रविनददृषांः ॥१९॥

वे पुरवासी दुःख से पीड़ित थे, वे बड़े दुःख से अपने अपने पड़े पड़े मकानों में गए । उन लोगों ने स्वजन या परिजन की ओर देखकर भी उधर की ओर नहीं गये, क्योंकि उनमें उत्साह नहीं था, हर्ष नहीं था ।

तेषामेवंविषण्णानां पीडितानामतीव च ।

वाप्यविप्लवनेत्राणां सशोकानां मुमुर्षया ॥ २० ॥

इस प्रकार वे दुःखों थे, पीड़ित थे, उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे, शोक से वे मर रहे थे ।

अभिगम्य विवृत्तानां रामं नगरवासिनाम् ।

वह्मगतानीव सत्यानि वभूवुरमनस्विनाम् ॥ २१ ॥

रामचन्द्र को पहुँचा कर लाँटे हुए नगरवासी ऐसे मालूम पड़ते थे, भातों उनके प्राण ही निकल गये हों ।

एवं एवं निलयमागम्य पुनरारैः समावृताः ।

अभूनि मुमुक्षुः सद्ये' वाप्येव विदिताननाः ॥ २२ ॥

अपने अपने घर आकर स्त्री पुत्र आदि के साथ वे रोने लगे, उनका मुखमण्डल आँसू से भीग गया ।

न बाहुष्यन्न धामोदन्वयित्री न प्रसारयत् ।

न वाशोभन्तूपण्यानि नापचन्दमेधिनः ॥ २३ ॥

कोई हर्षित नहीं था, कोई प्रसन्न नहीं था, धनियों ने दूकानें नहीं खोलीं बाजार सूना मालूम पड़ता था और गृहस्थों के घर में खुन्हे नहीं जलाये गये ।

नष्टं दृष्ट्वा नाप्यनन्दन्निपुठं वा धनतममम् ।

पुत्रं प्रथमं लब्ध्वा जननी नाप्यनन्दत् ॥ २४ ॥

किसी भूली हुई चीज के मिलने पर भी कोई प्रसन्न न हुआ, अधिक धन मिलने का भी किसी को हर्ष नहीं हुआ और पहले पहल पुत्रप्रसव करने का भी आनन्द भागा को नहीं हुआ ।

गृहे गृहे दृश्यस्य भर्ता/ गृहमागतम् ।

अपहृष्टं दुःखार्ता चाम्भितोमैरिव द्विषान् ॥२५॥

प्रत्येक घर में रोती हुई स्त्रियाँ घर में आये हुए पति को दुःख के कारण यत्नों से कोसती थीं, जिस प्रकार अङ्गुश से हाथी कोसा जाता है ।

किं नु तेरां गृहेः कार्यं किं दारेः किं घनेन वा ।

पुत्रैर्वापि सुखैर्वापि ये न परयन्ति राघवम् ॥२६॥

उनको घर से क्या करना है, स्त्रियों से भी क्या प्रयोजन, पुत्र या सुख भी उनके जिस काम के, जहाँ रामचन्द्र को नहीं देख पाने ।

एकः सत्पुरुषः लोके लक्ष्मणः सह सीता ।

योऽनुगच्छति काकुत्स्थं रामं परिचरन्नेव ॥२७॥

संसार में एक लक्ष्मण ही सत्पुरुष हैं और सीता, जो रामचन्द्र की सेवा करने हुए वन में उनका अनुगमन करते हैं ।

आपणाः कृतपुण्यास्तः पवित्र्यश्च सतीति च ।

येषु पारयति काकुत्स्थो विगाद सक्तिं शुचि ॥२८॥

वे नदियाँ पुण्यवती हैं, वे कमलिनियाँ, वे तालाब पुण्य-यान् हैं, जिनका जल रामचन्द्र पीयेंगे ।

शोभन्ति काकुत्स्थनरन्ध्री सप्तशतशः ।

आपणश्च महातृपाः सानुमन्त्र्य पर्यताः ॥२९॥

वे भटायी जिनमें सुन्दरवन हैं, वे नदियाँ वे पर्यंत राम-चन्द्र को प्रसन्न करेंगे ।

काननं वापि शैलं वा यं रामोऽनुगमिष्यति ।

प्रियातिथिमिव प्राप्तं नैनं शङ्कन्मनश्चितुम् ॥३०॥

घन या पर्वत जिस किसोके पास रामचन्द्र जायेंगे,
प्रिय अतिथि के समान बिना उनकी पूजा किये नहीं
सकता ।

विविधकुसुमापीडा बहुमञ्जुरिधारिणः ।

राघवं दशं विष्वन्ति नगा भ्रमरशालिनः ॥३१॥

पुष्पों का विचित्र शिरोभूषण और अनेक प्रकार मञ्ज
धारण करनेवाले ये वृक्ष अपन को रामचन्द्र को दिरायें
जिन पर औरें शोभित हो रहे हैं ।

स्वकाले चापि मुपगतं पुष्पाणि च फलानि च ।

दशं विष्वग्नुकोशाद्विगतयो राममागमन् ॥३२॥

पर्यंत वृक्षों के द्वारा रामचन्द्र का स्वागत करेंगे, भनशत
का पुष्प और फल भायें हुए रामचन्द्र को समर्पित करेंगे ।

प्रसन्नविष्वन्ति तोषानि विमलानि महीधराः ।

विदुशंपन्तो विविधाभूषभिराभ्रनिर्मलम् ॥३३॥

रामचन्द्र के लिए पर्यंत विमल जल बहायेंगे और
अनेक बहुत करने उनको दिरायेंगे ।

सादृश्याः पर्वताग्रेषु समविद्यन्ति राघवम् ।

यत्र रामो भव्यं नात्र नालि तत्र पराजयः ॥३४॥

वृक्ष पर्वतों पर रामचन्द्र की प्रसन्नता सदादत्त करेंगे ।
जहां राम हैं वहां भय नहीं और वहां पराजय भी नहीं ।

सहि शूरो महाबाहुः पुत्रो दशपथ्य च ।

पुत्रा भवति कोऽदूरादनुगच्छाम राघवम् ॥३५॥

यह महाबाहु और शूर है, यह दशरथ का पुत्र है। यह हम लोगों से दूर चला जायगा, हम लोग उसका अनुगमन करें ।

वाङ्मयाया गुलमगुस्तादृशस्य महात्मनः ।

एहि बाधो जनस्थास्य स गतिः स परावणम् ॥१५॥

ऐसे महात्मा रक्षामी के चरणों का आश्रय यड़ा सुख है, ये ही हमारे रक्षामी हैं, ये ही गति हैं और ये ही हम लोगों की प्रतिष्ठा हैं ।

वप' पश्चिस्त्रिषामः सीतां द्रुव' च रापयम् ।

इति पौरुषियो मनु'न्दुःखतास्तत्तद्वद्व' ॥१६॥

हम लोग सीता की सेवा करेंगे और आप लोग राम की, इस प्रकार नगर को द्विषां युजित होकर अपने अपने पति से कहने लगीं ।

दुष्माक' रापयोऽन्ये योगक्षेम' विधास्यति ।

सीता नारीजनस्थास्य योगक्षेम' करिष्यति ॥१७॥

यन में तुम लोगों का योगक्षेम रामचन्द्र करेंगे और स्त्रियों का योगक्षेम सीता जी करेंगी ।

बोम्पेनामतीतेन सौकण्डिनमनेन च ।

संप्रोवेतामभोष्टे' च वासेन दानवेनसा ॥१८॥

उस पास को फौन चाहेगा, जिसमें पोरं सुख नहीं, उहाँ मनुष्य उच्छिष्ट हो जो असुन्दर और चित्त को नष्ट करने वाला हो ।

कैकेय्या एहि चेष्टास्य' एवाङ्मय'मनापयन् ।

एदि को जीविनेनार्यः कुतः पुनैःकुतो धरैः ॥१९॥

यदि यह राज्य कैकेयी का हो तो यहां अधर्म का राज्य होगा, और प्रजा अनाथ के समान हो जायगी, वैसी दशा में हम लोगों को जीना भी उचित नहीं है, फिर पुत्र और धन आदि लेकर क्या होगा ।

यथा पुत्रश्च भर्ता च न्यक्तावैश्वर्यं कारणात् ।

कं सा परिहरेदन्यं कैकेयी कुलपांसनो ॥४०॥

जिसने पुत्र और पति को वैश्वर्य के लिए छोड़ दिया, वह कुलनाशिनी कैकेयी और किसको छोड़ सकती है ।

कैकेय्या न वयं राज्ये भूतका हि वसेमहि ।

जीवन्त्या ज्ञातु जीवन्त्यः पुत्रैरपि शपामहे ॥४१॥

कैकेयी के जीवन्काल में उसके द्वारा पापित होने पर भी अपने जीवितकाल में उसके राज्य में हम लोग रहना नहीं चाहतीं, इस बात के लिए हम लोग अपने पुत्र की शपथ करती हैं ।

या पुत्रं पार्ष्णिभ्यश्च प्रवासयति निरृया ।

कस्तां प्राप्य सुतं जवेदधर्मां दुष्टचारिणीम् ॥४२॥

जिस निर्दयी ने महाराजा के पुत्र को धन में भेज दिया, उस दुष्ट और अधर्मों के माध्यम में कौन सुसूक्ष्म जी सकता है ।

वपुस्तमिदं सर्वमनालम्ब्यमावकम् ।

कैकेय्यास्तु कृते सर्वं विनाशमुरपात्यति ॥४३॥

इस राज्य में अब उपद्रव होंगे, यश न होंगे, इराका कोई हयामी भी नहीं है, इस राज्य का सब नाश होगा और इराका कारण कैकेयी ही है ।

नहि प्रव्रजिते रामे जीविष्यति महीपतिः ।

मृने दशरथे स्यन्दं विन्दोपसृजन्तरम् ॥४४॥

रामचन्द्र के घन जाने पर राजा जी नहीं सकते और
इनके मरने पर राज्य का नाश निश्चित है ।

ते विर पिबतालोक्य क्षीय पुण्याः सुदुःखिताः ।

रायचं धानुगच्छन्ममभुतिं वापि गच्छत ॥४५॥

अब हम स्त्री पुद्गलों के पुण्य क्षीण होगये हैं, हमारे दुष्टों
का ठिकाना नहीं, अब हम लोग विर घोलकर पीलें, मधवा
रामचन्द्र का अनुगमन करें ।

मिथ्या प्रव्रजितो रामः समापः सहस्रमयः ।

भरते संनिबद्धाः स्म सौमिके पशवो यथा ॥४६॥

ध्वंश ही लक्ष्मण और सोता के साथ रामचन्द्र घन में भेज
दिये गये, अब हम लोग भरत के हवाले किये गये, जैसे पशु
कसार्ह को लीप दिये जाने हैं ।

रामचन्द्राननः श्यामो गूढजगुरिदमः ।

भाजानुषाहुः पद्माक्षी रामो लक्ष्मणदूषजः ॥४७॥

रामचन्द्र का मुख पूर्णचन्द्र के समान है, चे श्याम हैं,
शत्रुओं के दमन करने वाले और गूढजगुर हैं भाजानुषाहु
और पद्माक्ष हैं, चे लक्ष्मण के बड़े भाई राम घन में घूमकर
उसे सुरोभित करेंगे ।

पृथाभिभावी मयुरः सम्बधारी महाबलः

सौम्यश्च सर्वलोकस्व चन्द्रश्चित्रदर्शनः ॥४८॥

वे पहले ही घोलनेवाले, सुन्दर, सत्यवादी, महापल, सौम्य और चन्द्रमा के समान सबके प्रिय हैं, वे घूमकर घन बं शोभा बढ़ावेंगे।

मूर्त पुरुषशब्दों को मतमातृविक्रमः

शोभयिष्यत्यारण्यानि विषाम्भ महारथः ३४९४

वे पुरुषसिंह मतवाले हाथी के समान पराक्रमवाले घन में घूमकर भयद्वय ही उसकी शोभा बढ़ावेंगे।

तात्प्रथा विलपय्यस्तु नगरे नागरधियः

पुङ्गुपुङ्गुःशयंक्ता गृध्रांश्च मयागमे ३५०४

गृध्रों के भागमन के भय से तिरा प्रकार मनुष्य बल होकर रोता है, उसी प्रकार ये नगर की स्त्रियाँ पुङ्गु से पीड़ित होकर रोती थीं।

इत्येवं विजयन्तीनां स्त्रीणां केरमनु राषयम्

अगामात्तं दिनकरोरप्रभो चाप्यवर्तत ३५१४

इस प्रकार रामचन्द्र के लिए विलाप करनेवाली उन स्त्रियों का पुनः देखकर शूर्य अलाबल को बला गया और रात भागयी।

महामहामयंताग प्रताप्ताध्यावयम्भथा

निर्मिंशानुलिखे नदाभा नगरी बनी ३५२४

होम आदि के लिए धारा नहीं जलायी गयी, अथवा नया संकथा बन्द रही, उस समय वह नगरी अन्धकार से ढोनी गयी के समान हो गयी थी।

उत्तमज्ज बलिहृतया महारथी विराजता

अर्धमहामयंताग प्रताप्ताध्यावयम्भथा ३५३४

धनियों की दूकानें बन्द थी, आनन्द चला गया था, धाधप नष्ट हो गया था, अयोध्यानगरी ताराहीन आकाश के समान होगयी थी ।

तदा द्विषे रामविमिश्रमातुरा यग मृने घ्रातरि वा विनासिते . .
पिलम्प दोना रुरुदुर्बिचेत्पः सुतेदिं तामामचिकोऽपि सोऽभवत् ॥५४॥

उस समय म्रियां राम के लिए भातुर होकर मानो उनका पुत्र या पति हो निर्घासित षया गया हो - ये दुःखित होकर घिलाप करने लगीं, रोने लगीं; क्योंकि रामचन्द्र उनके पुत्र से भी बढ़कर उन्हें प्रिय थे ।

प्रशान्तगीतीस्वनृत्तम वादना विशददर्पां विहिता वलीदृषा ।

तदा अयोध्यानगरी बभूव सा महापरिःसंक्षपितोदको यथा ॥५५॥

गीत उत्सव नृत्य और वाजा बन्द हो गये थे, हर्ष दूर हो गया था, दूकानें बन्द थीं, उस समय अयोध्यानगरी अल्प जल समुद्र के समान हो गई थी ।

वासुदेव ।

इन्होंने गुधिष्ठिर विजय नामक एक काव्य लिखा है, यह काव्य फड़ित है, उसके प्रत्येक श्लोक में यमक है । कविता की दृष्टि से न गहो शब्द धमाकार की दृष्टि से यह काव्य भोष्ठ है । प्रत्यकार ने भयना परिचय लिखा है जिससे मालूम होता है कि ये राजा कुलशेखर के समय में वर्तमान थे और इनके गुद पा नाम भारत गुह था ।

तरप च वमुषामवाः काले कुलशेखरस्य वमुषामवतः
वेदाभामावापी भारगुम्बरभट्टाज्जामरपापी,

ममजनि कश्चित्तस्य प्रवणः शिष्योऽनन्तरं कश्चित्तस्य,
कारयानामालोके पटुमनसो वासुदेवनामा लोके ।

वासुदेव का समय निर्णय करने के लिए अब राजा कुल-
शेखर का समय जानना चाहिए । एक राजा कुलशेखर सिंह
द्वीप से निकाले गये थे और उन्होंने भारत में आकर भाग्य
ग्रहण किया था, उनका मनव्य चारुंगी सही है, यदि वासु-
देव के कुलशेखर थे हो हैं तो इनका भी १२ वर्षी सही मानना
चाहिए ।

वासुदेव विजय नामक एक काव्य भी वासुदेव के नाम
से प्रसिद्ध है, ये दोनों वासुदेव एक हैं या दो इसका निर्णय
करना सद्यः नहीं है ।

अथ रामतेजानीकं शुद्ध सत्सिन्धुना सवेनानीकम् ॥

। कुरवा शीर्षमावासासहस्रपुंखापशब्दशीर्षमावासाः ॥ १ ॥

इसके पश्चात् मीमांसा में जेनाशक्ति के सहित सेना के
व्यूह बनाकर मजाया, शूर कुरुगज युद्ध के लिए तयार हुए,
उनका यह युद्ध इन्द्र भीर उगेन्द्र के रण के समान था ।

नामभिदुद्राव ततः शीर्षमावासासहस्रपुंखापशब्दशीर्षमावासाः ॥

महदुद्रावासी कुन्नीपुत्रवयोः शीर्षमावासी कुन्नी ॥ २ ॥

युधिष्ठिर की सेना में त्रिगके सेना भी भूतगुप्त थे और
त्रिगके जैरों का शत्रु मोरहा था । जैरों पर ताकमान
किया । युधिष्ठिर की सेना के संग जयम के प्रति जैरों
शत्रुओं का व्यवहार कर रहे थे, वाज मूर्खीर भीर भावेनार्थ
उम सेना में थे ।

आन्ध्रियेव कुन्नीपुत्रवयोः शीर्षमावासासहस्रपुंखापशब्दशीर्षमावासाः ॥

कौन्तेयान्ध्रियेवकुन्नीपुत्रवयोः शीर्षमावासासहस्रपुंखापशब्दशीर्षमावासाः ॥ ३ ॥

जिस प्रकार विभीषण रामचन्द्र के आश्रय में गया था, उसी प्रकार भाइयों से युद्ध करने की इच्छा रखनेवाले युयुत्सु ने (दुर्योधन का भाई) शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाले पाण्डवों के पास का आश्रय लिया, पर डर से नहीं किन्तु नीति से ।

दृष्ट्वा माम्पानमिताम्पाथेयौ योदधुं कुरुतमाम्पानमितान् ॥

अमुवचार्थं करतः कृष्णेकाश्चामिनः स चापट्टरतः ॥ ३ ॥

अर्जुन ने सपारी पर घड़े हुए पूज्य अनेक कीर्यों को युद्ध के लिए उपस्थित देखकर हाथ से धनुष छोड़ दिया, तब भीष्मण ने अर्जुन को समझाया कि तुम यह पाप नहीं कर रहे हो ।

युद्धारम्भेऽभीष्टं नादः सममुम्बद्म्बां भेरीणाम् ।

इवती वै धुर्वाणां सुरज्जम् रजोऽपि तदितवैर्धुर्वाणाम् ॥ ५ ॥

युद्ध के आरम्भ के समय शत्रुओं को भेरी का नाद हुआ जो आकाश तक फैल गया और घोर घोड़े आदि के चलने से उड़ी हुई धूलि भी आकाश में फैल गयी ।

अभितारणे शङ्खे चारथचक्राणि चक्रुरावेतसि ।

विबभावभामात्रः समर्द्धः सर्वदिशु बभ्राम रजः ॥ ६ ॥

युद्ध की घोषणा के लिए जब शङ्ख बजा, तब चारथों (देवयिगोव) का समूह आकाश में चला गया, आकाश में देवताओं की भीड़ एकट्ठी होगयी, और दिशाओं में धूलि फैल गयी ।

सुहृत्पुत्रशयानामाहत इव रज्जेन पट्टशायकम् ।

अनुगतवन्दिष्यन्नवः सन्तापमदं दृष्ट्वा मादवं दिष्यन्नवः ॥ ७ ॥

बड़े लोगों के द्वारा बजाये जानेवाले पणव आदि वाजों के शब्द से ताड़ित के समान देवगण युद्ध देखने के लिए आकाश में आये और वन्दि और चामर उनके साथ था ।

नागनागोऽऽधावदयिनं च रथो नरं च ना गोधावन् ।

तुरगध्वं च तुरङ्गः प्राप बलौघः परश्वरं चतुरङ्गः ॥ ८ ॥

हाथी हाथी से रथो रथो से पैदल पैदल से और घोड़े घोड़ों से मिले, अर्थात् उनमें युद्ध प्रारम्भ हुआ, इस प्रकार सेना के चारो अङ्ग आस में मिले ।

भवनिमृदाहवहोप्रपापारं जीवदग्वदाहवहोऽत्र ।

धुतपांसवल्गमदसिः स्फुटमग्निशिखैश्च वधमा बलमदसि ॥ ९ ॥

धूलिरहित सेनारथी समामें राजाओं का युद्धकरी भग्नि-होत्र प्रारम्भ हुआ, वहां जोषकरी आहुति के जलानेवाली तलवार तेज से भग्निशिखाके समान शोभने लगी ।

भजनि तु भूरिभराजी चञ्चिताया तत्क्षिमेन भूरिभराजी ।

लघुतां रथवाहान्गोमस्थितपामुपटिं करधवाहास ॥ १० ॥

रणके लिए हाथियों के चलने पर धृषिणी मारयती होगयी और रथ और घोड़ों के द्वारा आकाश में फंलायी गयी धूलि ने अपनी लघुता छोड़ दी अर्थात् आकाश में धूलि सघन जम गयी ।

तत्र विवेद न तावजोदा पतिनं भुजं विवेद मनावन् ।

भरिनिशितमहास्वप्नं प्रदत्तुं मर्त्यैश्च दधिकृतमदारयन् ॥ ११ ॥

शत्रु के तीक्ष्ण तलवार से कटी हुई अपनी भुजा घोंपा के तब तक मालूम न हुई, जब तक उसे घोड़ा मालूम न हुई और भुजा के कट जाने पर भी उसने शत्रु पर प्रहार करने

की इच्छा की जिससे उसकी चड़ी हँसी हुई, क्योंकि उसकी भुजा तो फट गयी थी ।

क्षिप्तेनोपरि करिष्या रयेन ययनादपानिना परिकरिष्या ।

वायुप नद्धे गलता धूसी तत्रान्ध एतन्मे खेङ्गलता ॥१२॥

हार्थी ने रथ ऊपर फेंक दिया, पर वह नीचे न गिर सका, क्योंकि आकाश में वायु था जिसपर वह रुका रहा, कम्युकण्ठी देवाङ्गनाथ' उस रथ को पाकर बहुत प्रसन्न हुए ।

तत्र ययनादपानिभुरिके रक्षोगमेन न प्रासारि ।

गतशङ्का येन स्थितमममक्षमेन काक्षयेन ॥१३॥

उस युद्ध में माले घक और छुरी आदि भयंकर शस्त्र चल रहे थे, जिनके डर से राक्षस वहाँ न आये, पर दण्डों का मयूह वहाँ निर्भय होकर स्थित रहा ।

न मृतं नामानेन प्राहि मृतं येन मुहतिना मानेन ।

नङ्गवनी क्षामासेतानभिरतिपाणिना प्रतीक्षामासे ॥१४॥

जो पुण्यात्मा सम्मान पूर्वक युद्ध में पहले मारा गया, भयंकर ही उसका मरना मरना नहीं है । एक घोड़ा की तलवार टूट गयी, उसके प्रतिद्वन्द्वी ने तबतक उसकी प्रतीक्षा की जबतक वह नयी तलवार लेकर न आया ।

गुरुमभासादरुणः वृत्तिताः क्षरिणाशुत्रञ्च सरमादरुणः ।

कुण्डः पादानयका दण्डादु भवति स्म कृतवपादाना इवा ॥१५॥

घोड़े मारी मत्सर कष्ट और क्रोधसे मरे हैं, रुधिर बह रहा है, कर्ष पाप के कारण ये गिर गये और घेर कैंकने लगे और कुत्ता खरी पाने के हर्ष से भूँक रहा है ।

विकटनितम्ब्या ।

ये संस्तरन की कवि हैं इन्होंने कोई ग्रन्थ बनाया है नहीं इसका पता नहीं । सुभाषित ग्रन्थों में इनकी कविता पायी जाती हैं । जिनसे इनकी कविता की सरसता प्रतीय होती है । महाकवि राजशेखर ने विकटनितम्ब्या के विषय में लिखा है ।

के वैकटनितम्बेन गिरा गुग्गेन इतिहाः
जिम्बुलि निजकाग्नावा न भौत्पमपुरवपः ।

विकटनितम्ब्या की चाली में प्रसन्न होकर कीमतनुय अपनी स्त्री की चाली की निन्दा नहीं करता, यह चाली मैं ही भौली हो, मधुर हो ।

ये गोविन्द स्वामी के नाथ कविता करती थीं । इनके समय के विषय में तथा इनके धीर परिचय के विषय में कुछ मालूम नहीं ।

अथानु नावपुमर्धमदामु भुव
कोन विवोदव ममः सुमनोन्तामु ।
मुद्रामजानरत्रय कलिकामकाले
शाली कर्द्वेवमि हि मममन्दिताया. ३ १ ॥

धूमर, मयनक, सुम दिगी, दूमरी भार गरने योग्य होता पर कविता प्रभावितोंद कर, इन मयमदिका की छंदी कोंदी को त्रिमय ममः वरगा मा उग्रत्र नहीं दूमा ई को दुःखी करती हो (इन शब्द के द्वारा धूमर के व्यात्र से विमो वाटिका पर भागद कानुज को उद्देश दिया गया है)

पाला तन्वी मृदुत्वमिति न्यजतामत्रशङ्का
 दृष्टा काचिद्व्यमरमरगो मञ्जरी भ्रमपुष्पा,
 तस्मादेवा रहसि भवता निर्दयं पीडनीया,
 मन्दाकान्ता विसृजति रसं नेत्रुषष्टिः कदाचिद् ॥ २ ॥

यह पाला है दुयल्ली है, कोमल है इस प्रकार की शङ्का
 छोड़ दो, क्या ऐसी कोई मञ्जरी देखी गयी है जिसका पुष्प
 झमरों के भार से टूट गया हो । इस कारण एकान्त में तुम
 इसको निर्दय होकर पद्याना, क्योंकि बिना जोर से दयाये
 रस से रस नहीं निकलता ।

अथपि सादमकारिणि किं तव यद्दृक्मणेन ।
 त्वमिति भङ्गमवापयति हृत्पुगभारभरेण ॥ ३ ॥

भरे सादस करनेवाली, तुम क्यों चक्कर लगा रही हो,
 सम्मल जा, नहीं तो स्तनों के भार से त्व से टूट-जाओगी ।

किं शरि रैवदितिके सहकारकेण संश्रितेन विषहृक्षक एव वापः ।
 पत्तिगमनागवि विकल्पविकारभाञ्जि घोमा भवन्ति मदवशरमनिपाताः ॥ ४ ॥

द्वार पर इस भ्रमों भ्रम के वृक्ष को बड़ा रक्तन से क्या
 लाभ, यह पारं। मिश्रय विष वृक्ष है, जिसके थोड़ा भी विक-
 सित रहने के समय काम का सप्रिपात उपर भयानक
 होजाना है ।

दिग्दृष्टद्वन्द्वगुणि केर्णवा बोधे तन्मनि दिक्ता भवचक्षः ।

रमिन्तः दृष्टुष्योचोद्वयमस्तेन गति परिदम्पने निला ॥ ५ ॥

बिम्बी राजा की स्तुति है - दिन में भी भावका यश
 दिशाकरी स्त्री का मुख चूमता है, इस बात से उसने भी
 रूपायुषंक मगने धड़े स्तन दिखला दिये (अर्थात् सूर्योदय

मा) पर भापके यश न उस समूची का भाटिङ्ग
पया ।

अभिहितान्यभियोगराज-मुन्नी प्रष्टमद्विद्यासनकुर्वन्ती ।
परि ने पुरुषारिमुमग्रना नवगृष्टि शत्रु पनाकिनो ॥६॥

कहने पर भी जो भाषमण करना नहीं चाहती जो प्रकार
से अपने धड़ों का धिलाम नहीं दिखाती, नई स्त्री के
गान तुम्हारे शत्रुओं की मेना तुमपर पुरुषार्थ नहीं
रता ।

विज्जका

ये संस्कृत की कवि हैं, संस्कृत साहित्य में इनकी बड़ी
प्राप्ति है । ये सरस्वती का अवतार समझी जाती हैं । इनका
नाम विजा भी है, इनकी कवितायें यहाँ मनोहर और
पूर्ण होती हैं ।

कवेरभिप्रायमशब्दगोचरं स्फुरन्तमात्रेषु पदेषु केवलम् ॥
नदद्वभिरङ्गैः कृतरोमविक्लिवैर्जनस्य तूष्णोम्भवतोपमश्रुतिः ॥ १ ॥

शब्दों के द्वारा प्रकाशित न किया जा सकनेवाला केवल
ल शब्दों में दिलायी पढ़ने वाला कवि के भाव को जो
रामाश्रित अङ्गों के द्वारा कहता है स्वयं श्रुत रहता है ।
पुरुष को यह अञ्जलि है अर्थात् उसको नमस्कार है ।

गते प्रेमावन्धे हृदयपद्मानेपि गलिते
निवृत्ते सद्भावे जन इव जने गच्छति पुरः ।
तथा चैवोत्प्रेक्ष्य प्रियसखि गतांस्त्रीं दिवसाञ्च
जाने को हेतुर्दन्ति भवता यच्च हृदयम् ॥ २ ॥

इष्टमण्य मधुकण्डमाभ्यं पुष्पानि त्रिवर्णमे हृदयान्वा
 ई ममेति बदन्तान्तरलीनं अग्निर्न ज्वलति मानवजीनाम् ॥

घालों को पकड़ कर मुंह ऊपर की ओर उठाकर ज
 पति धुंथन करता है, उस समय मुंह में ही धूमता हुआ "।
 नहीं" यह माननियों के घचन घड़े ही अच्छे मालूम होते हैं

विपत्तिरि विपद्दुष्टदाम्नाम्नदपातपर्यवसा-

परिचययत्ने चिन्ताचक्रे निषाय विधिःप्लवः ।

मृदुमिव बलात्पिचिहीकृत्वा प्रगल्भमुलालवद्

भ्रमयति मनो नो ज्ञानीमः किमश विधात्यति ॥१०

जो चिन्ताचक्र विपत्ति के दण्ड के घोर के अनघरत
 परिचित है, अर्थात् जो चिन्ताचक्र विपत्ति के दण्ड से
 थलाया जाता है, उस चक्र पर मिट्टी के समान पिण्डा बना
 कर वह कुछ भाग्य मेरे मन की रखता है और चतुर कुम्हार
 के समान उस चक्र को घुमाता है, मालूम नहीं मेरे मन को
 यह क्या बनाना चाहता है ।

विरम विफलापासादस्माद्दुस्त्ययमापतो

विपदि महता धैर्यभरं यदीक्षितुमीदृशे ।

अयि जइविधे कल्याणायपेतनितकमाः

कुलशिपरिचः क्षुद्रा नैते नवा जलराशयः ॥११

हे मूर्ख भाग्य, तुम विपत्ति के समय महान मनुष्यों की
 एता का नाश देखना चाहते हो. इस घुरी घात को मत
 । इस घुरे काम को छोड़ दो, क्योंकि इसका कोई फल
 , क्या प्रलय के समय जिन्होंने अपना क्रम बदल दिया
 वे कुलपर्वत छोटे नहीं हैं और न समुद्रही छोटे हैं ।

मीशोऽलङ्कारव्याप्तिं विमर्शं सामानाधिकरण्यात् ।

पूर्वतः दक्षिणा प्रोक्तं सर्वत्रापि सरस्वती ॥८॥

मैं विज्ञाता नोलकमल के समान श्यामहूँ इस बात को
न जान कर दण्डों ने यों ही सरस्वती को सर्वगुह्यता कह
दिया है, अर्थात् मैं भी तो एक सरस्वती हूँ ।

विष्णुः कश्चिद्विष्णुर्गन्धर्वमिन्द्रोऽप्यमरिषिर्केचन ।

एतन्निबोधन्निदिनं धनुर्विदं जनुमुद्रिनममङ्गलम् ॥९॥

पलाश की कल्लि के भीतर चन्द्रकला के समान चक-
केंदार लाल, चाली में रंगे हुए भीरु लाल से चन्द किये हुए
काम के धनुष के समान सोमना है ।

हेनात्र चन्द्रकलसो वनं रोपितंमि

कुसुमसामागत्रनामिन्द्रवाटिकायाम् ।

यमं प्रहृष्टवशात्तद्विदुःशिलोमा-

दुर्गोभयवात्प्राप्तोऽपिप्राप्तोमि ॥१०॥

हे शम्भु! पृथ, तुमको किसने वहाँ घुरे गाँव के मुख
मनुष्य की वाटिका के पास रोंगा है ? यह अच्छा नहीं
हुआ ! इस बात में तब नये गाँव उगेंगे तब उनके घड़ने के
तिर, उनकी रक्षा के तिर, बाद (गेरा) लगायी जायगी,
उन बाद को जब कोई भी भादि तोड़ देगा, तब मुझारे वहाँ
तोड़ कर यह बाद दृश्य की जायगी । यह सम्बोधि है ।
कौन कवि किसी भरीमरक व्याप्ति के यही था । उसीको
वाचक द्वारा चन्द्रकला के उद्देश्य दिये हैं । हे कवि !
आप यही क्यों भाये, आपका यही भाव अच्छा नहीं हुआ !
जिसके यही भाव हैं यह मुख है, यह भाव को कट्टर क्या
जानेगा ?

मायदुदिगाज्जदानलिप्तकरटप्रमालनशोभिता
 श्योभः सीति विवेकरनिहता यस्योर्मथो निर्मथाः ।
 कष्टं भाग्यविवर्धयेत् सरमः कृष्णान्तरम्यादिन-
 मभ्याल्येवकप्रचारकमुत्तं कासेन जानं जटम् ॥११॥

मतवाले दिग्माजों के मदलित कपोलम्वल के घोंने से
 क्षमिन जिस नदी को निर्मल तरङ्गों नियाँध होकर भाकता
 में पिचरती थी, दुःख है ! भाग्य भाग्य के दाँप से उमों
 कलरान्त तक स्थिर रहने वालों नदी का जल एक घण्टे के
 चलने से गँदला हो जाता है । यह भी भ्रमोक्ति है । इन्हीं
 किसी घनपात्र मनुष्य को घनिक और दूरिद्र दोनों भयम्
 का घर्षण है ।

विषामममृगोत्तममुगललोपदाः कन्दली-
 पारपरपरितप्तमूलवनिःशवावदुष्कृताः ।
 लमन्ति कन्दुदृष्टिप्रममकर्मिणोः मयल-
 बुद्धुःमकर्मकृताः कल्पकल्पदीपोनवः ॥१२॥

घान कूटनेशालियों का गान बड़ा ही मनोहर मादूम
 होता है ! यही मश के ग्राध गूगल हाथ में लिये हुए हैं,
 मूलत के उठाने तथा गिराने के कारण बूढ़ियाँ बज रही हैं,
 उन बूढ़ियों के शब्द से यह गान और भी मनोहर हो गया
 है । जब ये मूलत गिराना हैं उस समय उनके मुँह से दुःख
 निकलता है और हृदय कम्पित हो जाता है, वही गान का
 गमक बन रहा है ।

विशारस्य ।

इसका दूसरा नाम माधवाचार्य भी है, ये अपने समय के
सबसे विख्यात पण्डित थे । उन्होंने अनेक ग्रन्थ रचवाई हैं ।

- १ वैदिक ग्रन्थों का भाष्य,
- २ पराशर धर्मशास्त्र की टीका,
- ३ जैमिनीय स्मृत्यादिपरिचरण मान्दा,
- ४ वेदान्ताधिकरण ग्रन्थमान्दा,
- ५ शङ्कर विज्ञप्ति,
- ६ काण्ड माधव,
- ७ भाष्य माधव,
- ८ व्यवहार माधव,
- ९ माधवीय धातुपूर्ति,
- १० नव्यद्वयन संग्रह,
- ११ पंचदशी,
- १२ भाष्यार्त्ता,
- १३ शतशतशतशतशतिका,
- १४ ग्लान्तिना की टीका,

बीजापुर के राजा व्यास ने उन्होंने बड़ा प्रदत्त किया था,
ये नेहरू जी से मान जाते हैं । इनकी माना का नाम
धीमती, दिता का नाम माधव धीर भाएदों के नाम माधव
मया दीकमाध था । ये शङ्कराचार्य के अनुयायी मन्वादी थे ।

शङ्करादिद्वयन

अथ इत्येवमन्वयव्यासमाधवाचार्यः विद्वत्पण्डितः ।

मन्वयव्यासमाधवाचार्योऽपि विद्वत्पण्डितः सः ३१३

तदन्तर भगवान् उस मण्डन पण्डित को जीतने के लिए प्रयाग से शीघ्र प्रस्थित हुए, आकाश मार्ग से जाने हुए उन्होंने दूर ही से माहिष्मती नगरी देखी, जिसमें मण्डन निवास करते थे ।

भवातरदयत्रिचित्रवर्षां विलोच्य तां त्रिम्बितमानसाऽसौ ।

पुराणवन्द्युत्कृष्टवर्तनीतः पुरोवक्त्रम्यवने मनोज्ञे ॥१॥

जहाँ की घटारियों में अनेक प्रकार के रत्न जड़े हुए थे उस नगरी को देखकर ये विस्मित हुए, धीरे नगर के पास के एक सुन्दर उद्यान में आकाश मार्ग से उतरे ।

प्रकुलरात्रीवने विहारी तरङ्गरिङ्गल्लक्ष्मीकरादः ।

रेवामरुन्धितमालमालः भमारुद्रजापहृन् निषेवे ॥२॥

विकसित कमलवन में विहार करनेवाला, तरङ्ग के छोटे छोटे जलरुण से जो आर्द्र है और जिसने सालवन को काँपाया है, वह नर्मदा का वायु थकावट दूर करनेवाला भाग्यकार की सेवा करने लगा ।

तस्मिन् विधम्य कृताह्विकः सखस्वतिहारोद्वह्यशालिनीने ।

गण्डवती मण्डनपण्डितोक्तं दासोन्मदोवाः स ददाति मामे ॥३॥

उस उद्यान में रहकर उन्होंने दिन का हृत्य समाप्त किया धीरे मध्याह्न के समय मण्डन पण्डित के घर की ओर जाते हुए रास्ते में मण्डन पण्डित की दासियों को देखा ।

कुप्राऽऽरुषो मण्डनपण्डितस्येत्येताः स पश्य जलाय गन्त्रीः ।

तामापि दृष्ट्वाऽद्भुतशंकरं स वंत्तोपस्यो बहुदुःखरं एव ॥४॥

जल के लिए जानेवालों से उन्होंने पूछा कि मण्डन पण्डित का घर कहाँ है, ये भी उनको बहुत और सुरक्षा जानकर सन्तोष पूर्वक उत्तर देने लगीं ।

हरतः प्रमाणं परतः प्रमाणं कीराङ्गना यत्न गिरं गिरन्ति ।

हारस्यनीडान्तरमनिच्छा आनीहि तन्मण्डनपण्डितकः ॥१॥

येदं हरतः प्रमाणं है या परतः प्रमाणं है, वह बात जहाँ
हार पर विजड़े में घड़ी हुई शुकाङ्गना कहती है वही मण्डन
पण्डित का घर है ।

फलम् कर्म फलप्रदोऽयः कीराङ्गना यत्न गिरं गिरन्ति ।

हारस्यनीडान्तरमनिच्छा आनीहि तन्मण्डनपण्डितकः ॥७॥

कर्म स्वयं फल देनेवाले हैं या परमात्मा कर्म फल देता
है, जहाँ हार पर विजड़े में घड़ी हुई शुकाङ्गना यह बात
कहती है वही मण्डन पण्डित का घर है ।

जगद्भुवं स्वागच्छभुवं स्वात् कीराङ्गना यत्न गिरं गिरन्ति ।

हारस्यनीडान्तरमनिच्छा आनीहि तन्मण्डनपण्डितकः ॥८॥

जगत् निस्थ है या अनित्य जहाँ हार के विजड़े में घड़ी
हुई शुकाङ्गना यह बात कहती है वही मण्डन पण्डित का
घर है ।

• पीम्बा तदुक्तिरथ मय मेदाद् गम्बा वदिः सप्त क्वाटुसम् ।

दुपे'शमाश्लेष ॥ मोनशरया स्वीमाप्सनाऽरातरद्वयान्तः ॥९॥

उनकी घाते' गुनकर थे मण्डन मिश्र के घर के बाहर
पहुँचे, वहाँ उन्होंने कियाइन्द्र देने, घर में प्रवेश करना
कठिन बेराकर उन्होंने योगशक्ति के द्वारा आकाश मार्ग से
घर के भीतर प्रवेश किया ।

तदा ॥ लोकेन्दुनिर्देशा द्वात्मनस्त्वय्यथैक्यनामम् ।

ममममाश्लेषत मण्डनस्य निवेशनं भूतमण्डनस्य ॥१०॥

भीतर जाकर भगवान ने भूलोक के अलङ्कार
मिथ्र का समस्त घर देखा, यह घर इन्द्र के घर के सम
और वायु उस घर की पताका कंधा रहा था ।

मौघाग्र्यंउग्रनमोवकाशं प्रविश्य तत्प्राप्य कथेः सदाशम् ।
विद्याविशेषासयशःप्रकाशं ददतां तं पद्मग्रनिवासम् ॥१॥

आकाश से घाने करनेवाले घर में भगवान ने
मण्डन मिथ्र को देखा, जिसने अपनी विद्या की अधिष्
ठान का प्रकाश पाया है और जो ब्रह्मा के समान है ।

तथोमदिर्भैव तथोनिधानं सत्रैमिनिं गत्यवनीपशूतम् ।
यथाविधि भाद्रविधौ निमग्न्य तत्पाद पद्माग्रवनेत्रवत्तम् ॥

उस समय मण्डन मिथ्र धातु कराने के लिए
और जैमिनि को निमग्नित करके उनके चरण कमल
रहे थे ।

तनुस्मरिणाद्वरीयं कोविदयः समागम्यपादमेव ।
हृत्पादं त्रैमिनिमयुमागम्य तावदावर्त्तयतिन्द्रिःभूत् ॥१॥

यहां से यांगीराज आकाशमार्ग में आये और
और जैमिनि ने इनका हृत्पाद कवाचन किया ।

अथ यमुमागाद्वरीयं त्रैमिनिं, मुखाः विवर्त्तयतिन्द्रिःभूत् ।
सम्पादयतिन्द्रिःभूत् तदाऽवर्त्तयतिन्द्रिःभूत् ॥१॥

आकाशमार्ग में आये हुए और उन को मुनिगो
मर्माग्रवित्त इनको मन्त्रार्थ दिव में देना वह वह प्रार्थ
शास्त्रों का अनुयायी होने पर भी श्रुत हुआ ।

मन्त्रानिन्द्रिःभूत् तदाऽवर्त्तयतिन्द्रिःभूत् ॥१॥
मन्त्रानिन्द्रिःभूत् तदाऽवर्त्तयतिन्द्रिःभूत् ॥१॥

गृहस्थ मण्डन मिथ्य रुष्ट होगये थे और यतीश्वर को भी कौतूहल था इस कारण उन दोनों पंडितश्रेष्ठों में नीचे लिखे अनुसार प्रश्नोत्तर हुए ।

कुतोमुण्ड्यागलान्मुण्डी पन्थास्ते पृच्छयते मया ।

किमाह पन्थास्त्वन्माता मुण्डेत्याह तथैव ॥ ३१६ ॥

मण्डन—मुण्डी कहां से ? शङ्कर—रास्ते ने तुमसे क्या

शङ्कर—गले के उपर से । कहा ।

मंडन—मैं तुम्हारा रास्ता मण्डन—तुम्हारी माता मुण्डा है, पूछता हूँ । शङ्कर—ठीक है ।

पन्थानं त्वमपृच्छस्त्वां पन्थाः प्रत्याह मंडन ।

त्वन्मातेनैव शब्दोऽर्थं न मां मयादपृच्छकम् ॥ ३१७ ॥

शङ्कर रास्ते से तुमने पूछा, रास्ते ने तुम्हें उत्तर दिया । ऐसी वशा में नहीं पूछनेवाले “तुम्हारी माता” के तुम्हारी से मेरा याध नहीं हो सकता, क्योंकि मैं पूछनेवाला नहीं हूँ ।

मही पीता किमु सुरा नैव पीता यतः स्मर ।

॥ त्वं जानामि तद्गर्भमहं वर्णं भवान्सम ॥ ३१८ ॥

मण्डन—क्या तुमने सुरा (मद्य) पीता (पी है) ?

शङ्कर—नहीं वह पीता (पीली) नहीं, श्वेत है ।

मण्डन—क्या तुम उसका रङ्ग जानते हो ?

शङ्कर—मैं रङ्ग जानता हूँ और तुम एस ।

मत्तो जातः कलश्यामी विपरीताग्नि भाषते ।

सत्यं प्रवीति पितृव्यमत्तो जातः कलशमुक् ॥ ३१९ ॥

मण्डन—यह निषिद्धमांस खानेवाला मत्त हो गया है, क्योंकि भगवत्क बोले रहा है ।

शङ्कर—टांक है । पिता के समान चोल रहे हों, जैसे तुम निपिद्ध मांस खानेवाले हो उन्हीं तरह तुमसे निपिद्ध मांस खाने वाला उत्पन्न हुआ है ।

कन्यां वहमि दुर्बुद्धे गर्भेनापि दुर्बुद्धाम् ।

शिखायज्ञोपवीताभ्यां कस्ते भारो भविष्यति ॥२०॥

मण्डन—मूर्ख कचड़ी ढो रहा है, जो गधा भी कटिन्हा से ढो सकता है । पर शिखा और यज्ञोपवीत भार था, जिससे उसका त्याग किया ।

कन्यां वहमि दुर्बुद्धे सव पित्राऽपि दुर्भत्ताम् ।

शिखायज्ञोपवीताभ्यां धृतेभारो भविष्यति ॥२१॥

शङ्कर - मूर्ख, कन्या ढो रहा है, जिसे तुम्हारा पिता भी नहीं ढो सकता । शिखा और यज्ञोपवीत से धृति का भार होता ।

त्यक्त्वा पाणिगृहीतीं स्वामशक्या परिरक्षणे ।

शिष्यं पुस्तकभारेण्यो व्याख्याता ब्रह्मनिष्ठता ॥२२॥

मण्डन—रक्षा न कर सकने के कारण अपनी स्त्री को छोड़ दिया, अब शिष्य और पुस्तक का भार लिये फिरते हैं, इसीसे तुम्हारी ब्रह्मनिष्ठता मातृम पड़ती है ।

गुरुशुभं पणालस्यान्समाकर्ष्य गुरोः कुडाम् ।

द्विपः शुभं पणालस्य व्याख्याता कर्मनिष्ठता ॥२३॥

शङ्कर—गुरु की सेवा में पणाल के कारण गुरुगुल से समापन न कराकर द्विपों की सेवा करनेवाले को कर्म-निष्ठता मातृम पड़ती है ।

स्थितोऽसि योषितो गमे ताभिरेव विवर्धितः ।

अहो कृतघ्नता मूर्खं कथं ता ण्व निन्दसि ॥२४॥

मण्डन—स्त्रियों के गर्म में रहे हो, स्त्रियों ने ही तुम्हे घड़ाया है, मूर्ख यह कितनी कृतघ्नता है कि तुम उन्हींको निन्दा करते हो ।

यासां स्तन्यं ग्वया पीतं यासां जातोऽसि योजितः ।

तासु मूर्खेवम शोषु पञ्चपद्मसे, कथम् ॥२५॥

शङ्कर—जिनका दूध तुमने पीया, जिनसे तुम उत्पन्न हुए । मूर्ख, उन्हीं स्त्रियों से पशु के समान तुम रमण करी करते हो ?

धीरहत्यामकसोऽसि वग्रीमुद्रास्य यशतः ।

आत्महत्यामवाप्तस्त्वमविदित्वा परं पदम् ॥२६॥

मण्डन—जानबूझ कर अग्नि का त्याग करने के कारण तुमको धीर हत्या लगी है ।

शङ्कर--तुम्हे तो आत्महत्या का दोष लगा है, क्योंकि तुमने परमपद का ज्ञान नहीं पाया ।

दीवारिकाम्बजयित्वा कथं स्तेनवदागतः ।

भिक्षुभ्योऽन्नमदत्त्वा त्वं स्तेनवतोदपसे कथम् ॥२७॥

मण्डन—द्वार-रक्षकों को तुम दगकर चोर के समान कैसे चले आये ?

शङ्कर—भिक्षुकों को अन्न बिना दिये तुम चोर के समान या कैसे रहे हो ?

कर्मकाले न समाप्य अहं मूर्खेण संव्रति ।

अहो प्रकटितं ज्ञानं पतिघट्टेन भाषिष्या ॥२८॥

तं मण्डनं तस्मिन्तज्जैमिनीक्षितं, ध्यामोऽप्रवीञ्ज्यसि तत्तु दुर्वचः ।
आचारणा नेषमनिन्दितात्मनां, शातान्मतस्वं यमिनं धुतैषणम् ॥१३॥

मण्डन को जैमिनी स्मित पूर्वक देख रहे थे । उस समय ध्याम ने कहा कि तुम घुरे घबहन यह रहे हो । सज्जनों की यह रीति नहीं है कि वह आत्मतत्त्वम चासना-रहित योगी के प्रति ऐसे दुर्वचनों का प्रयोग करे ।

अध्यागतोऽसौ स्वयमेव विष्णुस्त्विवेक मन्वाऽऽशु निमन्त्रय त्वम् ।
इत्याभयं ज्ञाननिधिं प्रतीतं, सुखमयीः साध्यशिष्यमुनिस्तम् ॥१४॥

विद्वानों के अग्रणि मुनि ने अपनी बात माननेवाले तथा शास्त्रज्ञ अपने शिष्य से कहा — ये स्वयं विष्णु भाये हैं, ऐसा समझो और यही समझकर इनको निमन्त्रित करो ।

अधोपसंश्रुय जहं न शान्तः ससंभ्रमं मण्डनपण्डितोऽपि ।
ध्यामाज्ञया शास्त्रविद्बोधित्वा भ्यमन्त्रयद्भक्षकृते महर्षिम् ॥१५॥

अनन्तर आद्यमन करके शान्त मण्डन पण्डित ने भी ध्याम की आज्ञा से शङ्कराचार्य को भोजन के लिए निमन्त्रित किया ।

मन्वाधोपसंश्रुय विवाद्भिन्नामिच्छन्मन्वास्तनिधिमागतोऽस्मि ।
ताऽप्रवेष्टवश्चित्तव्यवस्थां प्रदेया, मास्त्वाद्दरः प्राकृतभक्तर्भक्ष्ये ॥१६॥

शङ्कर ने कहा — सौम्य, विवाद्भिन्ना की इच्छा से मैं आपके पास भाया हूँ । यही भाव है और उसकी शर्त यह रहे कि जो द्वार जाय वह अतिनेवाले का शिष्य बन जाय । इस साधारण भोजन में हमारा कुछ भी आश्चर्य नहीं है ।

मम न द्विचिदपि भुङ्क्षमीक्षितं, क्षुतिरितरन्ध्रवितृतिमन्तरा ।
अवहितेन मत्सेव्यवधीरितः समन्ता भवतामहिमपूतिः ॥१७॥

भवतु संप्रति वादक्याऽऽवयोः, फलतु पुष्कलशास्त्र परिश्रमः ।

उपनया स्वयमेव न शृण्वते, नवमुधा वसुधावसथेन किम् ॥४२॥

अब हम दोनों का शास्त्रार्थ हो, अनेक शास्त्रों का परिश्रम सफल हो । यदि स्वयं नहीं नवीन अमृत आवे तो क्या पृथिवी चासो उसे ग्रहण नहीं करता ।

व्यासदेव ।

ये कृष्णकृपायन व्यास के नाम से प्रसिद्ध हैं । इनके पिता का नाम पराशर था । इन्होंने ही वेदों का सम्पादन भीर विषय विभाग के अनुसार क्रमबद्ध किया है । महाभारत तथा हरिवंश आदि ग्रन्थों में इन्होंने पाण्डवों का इतिहास लिखा है । इनके अतिरिक्त इन्होंने अन्य १८ पुराणों का भी निर्माण किया है । वेदान्तसूत्र जो व्याससूत्र के नाम से प्रसिद्ध हैं वे भी इन्हींके बनाये हुए हैं । पाणिनि के एक सूत्र में ये सूत्र भिन्न-सूत्र के नाम से भी कह गये हैं । पाणिनि का यह सूत्र है "पाराशर्यशिलाहियां भिन्नद सूत्रयोः" । इनको धारदार्यण भी कहते हैं । इनका समय ई० सदी से १२६३ वर्ष पूर्व पतझड़ा जाता है । सब कवियों के ये उपजीव्य कहे जाते हैं अर्थात् अन्य कवियों ने इन्हें ही अपना आदर्श बनाया है । इन्हींकी कविता की सदायता से ये अपने काम में सफल हुए हैं ।

अनुगम्युं सतीं दत्ते हरत्वं यदि न शक्यते ।

एवमप्यनु मन्तव्यं मार्गस्यो नावपीदृति ॥४३॥

भवतु संप्रति वादक्याऽऽवयोः, फलतु पुष्कलशोख परिधमः ।

उपनया स्वयमेव न गृह्यते, नवसुधा वसुधावसथेन किम् ॥४२॥

अब हम दोनों का शास्त्रार्थ हो, अनेक शास्त्रों का परिधम सफल हो । यदि स्वयं नवीन अमृत आवे तो क्या पृथिवी पासो उसे ग्रहण नहीं करता ।

व्यासदेव ।

ये कृष्णद्वैपायन व्यास के नाम से प्रसिद्ध हैं । इनके पिता का नाम पराशर था । इन्होंने ही वेदों का सम्पादन और विषय विभाग के अनुसार क्रमबद्ध किया है । महाभारत तथा हरिवंश आदि ग्रन्थों में इन्होंने पाण्डवों का इतिहास लिखा है । इनके अतिरिक्त इन्होंने अन्य १८ पुराणों का भी निर्माण किया है । घंशान्तसूत्र जो व्याससूत्र के नाम से प्रसिद्ध हैं वे भी इन्हींके बनाये हुए हैं । पाणिनि के एक सूत्र में ये सूत्र भिन्न-सूत्र के नाम से भी कह गये हैं । पाणिनि का यह सूत्र है “पाराशर्यशिल्पाद्विषां भिन्नतर सूत्रयोः” । इनको पाराशर्य भी कहते हैं । इनका समय ई० सदी से १२६३ वर्ष पूर्व पतलाया जाता है । सब कवियों के वे उपजीव्य होते जाते हैं अर्थात् अन्य कवियों ने इन्हींको अपना आदर्श बनाया है । इन्हींकी कविता की सहायता से वे अपने काम में सफल हुए हैं ।

अनुगम्युं कर्ता कामं कृत्स्नं यदि न शक्यते ।

‘सर्वमप्यनु गन्तव्यं मार्गस्थो नावपीदति ॥१०

सज्जनों की राह पर यदि तुम पूरी तरह नहीं चल सके तो थोड़ा भी उस राह पर चलने का प्रयत्न करो । क्योंकि रास्ते का मनुष्य एक न एक दिन ठीक स्थान पर पहुँच ही जाता है ।

उपकारः परो धर्मः परोषेः कर्मैर्गुणम् ।

पात्रे दानं धरः कामः परो मोक्षो विनृप्यता ॥२॥

उपकार प्रधान धर्म है; कर्म—कुरालता प्रधान धन है; सुपात्र को दान देना प्रधान काम है और तृष्णाहीन होना प्रधान मोक्ष है । यहो ध्येष्ठ चतुर्गं है ।

स धर्मो यो निरुपधः सायेो यो न विरुप्यते ।

स कामः सद्गुहीनो यः स मोक्षो यो पुनर्मवः ॥३॥

धर्म यह है जिसमें छल न हो, धन यह है जिसमें प्रति योगिता न हो, काम यह है जो भासकरहित हो और मोक्ष यह है जिसमें पुनर्जन्म न हो ।

अविद्यानाशिनो विद्या भावना भवनाशिनो ।

दारिद्र्यनाशनं दानं शीलं दुर्गतिनाशनम् ॥४॥

अज्ञान को नष्ट करनेवाली विद्या है, संसार के दुःखों को नाश करनेवाली भावना है । दान दरिद्रता को नष्ट करने वाला है और दुःखों को दूर करनेवाला शील है ।

गतेषु वयसि प्राज्ञा विद्या सर्वात्मना बुधैः ।

इह चेत्तरपात्रं फलदाफलदा सान्य जन्मनि ॥५॥

अधिक उम्र के घाँत जाने पर भी बुद्धिमानों को विद्या ग्रहण करना चाहिए । यदि इस जन्म में उससे फल न हो सकेगा, तो आगे के जन्म में अवश्य वह फलदायिनी होगी ।

भर्यायमतिदातारमनिशुरमतिधनम् ।

प्रजाभिमानिनं चैव धीमंधान्नोपसर्पति ॥६॥

जो अत्यन्त सज्जन है, जो अत्यन्त दानी है, जो अधिक दान करने वाला है, जिसे अपनी बुद्धि का अभिमान है, लक्ष्मी इन लोगों के पास जाने से डरती है ।

माहताः प्राप्नुवन्भर्याश्च स्त्रीषा न च मानिनः ।

न च लोकरवादीता न च शरत्पत्नीक्षिणः ॥७॥

मालती धन नहीं पाने हैं, मधुसूदन और अभिमानियों को भी धन नहीं मिलता है । लोकरवादी से डरनेवाले और धन की संदा प्रतीक्षा करनेवालों को भी धन नहीं मिलता ।

वजरमुत्पन्नं कोपं मानं चावि विपद्यति ।

स भिषो भावनं पुनः समापनु न मुच्यति ॥८॥

जो उत्पन्न हुए कोप को रोक लेते हैं और विपत्तियों के समय में भी नहीं घबराने हैं, वेही लक्ष्मी के पास होते हैं ।

वश्येन्द्रियं भिगान्मानं धनं दद विपद्यति ।

पौरुष कर्मिणं धीमन्त्वर्ध्वं धीनिधेयने ॥९॥

जिसने अपनी इन्द्रियों को वश में कर रक्खा है, जिसने अपनी भावना जीत ली है, जो अपने विरोधियों को दंड देना जानता है, जो समस्त बुद्ध काम करता है और जो धीर है लक्ष्मी उसको मेधा करती है ।

अनागतविधागतमदमनमवेत्यम् ।

विताममदीनं च नरं धीरमिदति ॥१०॥

विपत्तियों के आने के पहिले ही उनके दूर करने के उपाय सोच रखनेवाले, सदा सावधान रहनेवाले, कोप न करने

काने, जल्दी किसी काम को न प्रारम्भ करनेवाले, अपनी
हीनता न दिखानेवाले मनुष्य की लक्ष्मी सेवा करती है ।

जीवन्मां दुर्जं वा देहे त्रिपञ्चगुरादयः ।

जितेषु तेषु लोकोप' ननु कृत्स्नस्त्वया त्रितः ॥११॥

भारत भादि इन्द्रियां शरीर में धर्तमान हैं, ये दुर्जय
हैं, उनके जीतो । उनके जीतने से तुम समस्त संसार
जीत सफोगे ।

यदीप्सति वशीकुरु' जगदेकेन कर्मणा ।

पतापवाद' शस्योम्यो मां चरन्तीं निवारय ॥१२॥

यदि तुम एक ही काम से समस्त संसार को अपने व
में करना चाहते हो तो दूसरों की निन्दा में लगी हुई अप
घाणी को रोको । अर्थात् यदि तुम दूसरों की निन्दा कर
छोड़ दो तो समस्त संसार तुम्हारे वश हो जाय ।

सुहृदप्यवस्तस्य यस्यात्मा दुरधिष्ठितः ।

अग्नीर्ण' पथ्यमप्यह' व्याधये मरणाय वा ॥१३॥

उस मनुष्य के मित्र भी शत्रु ही हैं, जिसकी आत्मा
अन्यवस्थित है । अग्नीर्ण में पथ्यान्न भी रोग उत्पन्न करता है,
या मार डालता है ।

भीरुः पलायमानोपि नाग्नेवेष्टस्यो वम्भीयमा ।

कवाधि' पूरतामेति मरणे कृतनिश्चयः ॥१४॥

डरपोक मनुष्य भी यदि सामने से भाग जाय तो बल
वान् को चाहिए कि उसका पीछा न करे क्योंकि सम्भव है,
वह अपनी मृत्यु निश्चित जान कर घैरी बन जाय ।

तेजस्विनि क्षमोपेते नातिकार्कश्यमाचरेत् ।

जायते ॥१५॥

तेजस्वी मनुष्य यदि अपने ऊपर किये गये अपराधों को क्षमा करता जाय तो उसको अधिक सुताना नहीं अच्छा, क्योंकि अधिक रगड़ से शीतल चन्दन में भी आग की लपटे निकलने लगती हैं ।

भसहापःसमर्थोपि तेजस्वी किं कर्त्तव्यति ।

निहाते अवलितोष्पमिः स्वयमेव प्रशाम्भति ॥१५॥

शक्तिमान् तेजस्वी मनुष्य भी यदि सहायहीन हो, तो यह क्या कर सकता है ? धधकती हुई भी आग यदि बिना हवा की जगह में रफली जाय तो यह आप ही आप बुझ जाती है ।

हृत्वा बलवता बौरमाग्मानं यो न रक्षति ।

अपथ्यमिषत्तदुक्तं तस्यानर्थाय केवलम् ॥१६॥

जो मनुष्य बलवान् से शत्रुता करके अपनी रक्षा का प्रयत्न नहीं करता, अपथ्य भोजन के समान उसके लिये यह बड़ा अनर्थ करता है ।

कारणाग्निप्रपत्तामेति द्वेषो भवति कारणात् ।

अर्थाधी जीबलीलोच' न कश्चित्कस्यचित्प्रियः ॥१७॥

कारण से मनुष्य मित्र होता है और कारण ही से शत्रु भी होता है । यह स्वार्थ का संसार है, यहाँ कोई किसी का मित्र नहीं ।

नास्ति ज्ञान्या रिपुर्नाम मित्रं चापि न विपत्ते ।

सामर्थ्ययोगाच्चायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा ॥१८॥

स्वभाव से कोई किसीका शत्रु नहीं और न कोई किसीका मित्र ही है । समय के अनुसार मित्र और शत्रु हुमा करते हैं ।

अहुरवा परमतापमगन्वा सन्तु ममताम् ।

अनुत्सृज्य सर्वं मार्गं पत्स्वप्नमपि तद्गु ॥१९॥

दूसरे को न सता कर, दूसरों के सामने दीन न बनकर
सज्जनों के मार्ग न छोड़कर यदि थोड़ा भी मिठे तो उ
यह न समझना चाहिये ।

अपार्थितानि दुःस्थानि यथैवापान्ति देहिनाम् ।

सुस्थानि च तथा मन्ये ह्यन्यमत्रानिरेष्यते ॥२१॥

जिस प्रकार पिना चाहें भी मनुष्यों के पास दुःख प्राप्त
करने हैं; उसी प्रकार सुख भी आयेगा ऐसा मैं समझता हूँ ।
फिर दुःख से घबड़ाना और सुख के लिए व्याकुल होना
केवल अपनी दोनता दिखाना है ।

यद्भावि न वद्भावि यद्भावि न तदुन्वयः ।

इति चिन्ता विप्रमोषमगदः किं प्रीयते ॥२२॥

जो नहीं होने वाला है वह न होगा, इस कारण क्या
औरधि नहीं पा जातो !

भागमिष्यन्ति ते भावा ये भावा मयि भाविनः ।

अहं तैः अनुगन्तव्यो न तेषामन्यतो गतिः ॥२३॥

जो घटनायें मेरे जीवन में होनेवाली हैं वे अवश्य
मेरे अनुसरण करेंगी, क्योंकि उनके लिए दूसरी कोई
नहीं है ।

धनमस्तीति वाणिज्यं किञ्चिदस्तीति कर्षणम् ।

सेवा न किञ्चिदस्तीति नाइमस्तीति साहसम् ॥२४॥

धन हो तो वाणिज्य करना चाहिये, कुछ थोड़ा सा
हो तो खेती, कुछ भी न हो तो नौकरी, और अपनी सच्चा
समझ कर साहस (चोरी आदि) ।

नोदन्वानभिर्तामेति नयाम्मोमिर्न पृथक्ते ।

आत्मा तु पात्रतां नैवः पात्रमापान्ति संपदः ॥२५॥

समुद्र किसी के यहाँ मॉगने नहीं जाता, पर वह जल से पूर्ण रहता है । मनुष्य को स्वयम् योग्य बनना चाहिए, क्योंकि योग्य को ही सम्पत्ति मिलती है ।

प्रजया मानसं दुःखं हन्याच्छारीरमौषधैः ।

एतद्विज्ञाय सामर्थ्यं न बालैः समतामिवाह ॥२६॥

युद्धि से मन के और दूरा से शरीर के दुःखों को दूर करे, इस प्रकार मानसिक और शरीरिक दुःखों को दूर करने की अपनी शक्ति समर्थ; बालकों की तरह धपड़ा न जाय ।

पुत्रैर्मित्रैर्दुर्दैवांश्च विपुकरय धनेन वा ।

ममरय ध्यमाने कृष्ये पुंसः श्वं वस्वरी पतिः ॥२७॥

पुत्रों से, मित्रों से, घर से, भयवा धन से यदि मनुष्य का विप्लव हो या वह किसी बड़ी विपत्ति में फँसे तो उस समय एक धैर्य ही उसका कल्याणकारी होता है ।

दुःखी दुःखाधिभारपर्येषमुखी परप्रेतसुराधिकार ।

आत्मानं हर्षतोकाभ्यां क्षन्त्यामिव नारपयेत् ॥२८॥

दुखी मनुष्य अपने से अधिक दुखी को देखे भीरु सुखी अपने से अधिक सुखी को दुख सुख से शोक व हर्ष करने की अक्रान्त नहीं । यह दोनों शत्रु हैं; इनके हार्यों आत्म-समर्पण करना पुरा है ।

एवमपि चेत्पुनरुद्दिमं हयते नमः ।

वत्समायः पुनः सर्वे नावैनीति मतिमम् ॥२९॥

बुद्धिमान और वीर मनुष्य को भी सम्पत्ति मोहित करती है । सुखी भी मनुष्य अपने को सुखी नहीं समझता, ऐसी ऐसी समझ है ।

येर्थाः ह्येतेन देहस्य धर्मस्पातिक्रमेण च ।

अरेर्वा प्रणिपातेन मास्म तेषु मनः कृपाः ॥३०॥

जो धन शरीर के कष्ट से मिले, धर्म के अतिक्रमण से मिले, अथवा शत्रु के पैरों पड़ने पर मिले तो उस धन । इच्छा मत करो ।

गुणेषु यत्नः क्रियतां किमादौर्ध्वः प्रयोजनम् ।

विश्रायन्ते न घटाभिर्गोवः क्षीरविर्भावाः ॥३१॥

गुणों के प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करो, भाइयों । लाल ही क्या ! घिना दूध की गाध घन्टा घोंघने से न पिकती ।

गुणाः शत्रु गुणा एव न गुणा धनदेवताः ।

अपेक्षयन्तुर्हि मायानि दृश्योव हि ॥३२॥

गुण गुण ही है, गुणों से धन नहीं मिलता । धन संघप करनेवाला माय्य भल्लग ही है ।

गुणाः शत्रु गुणा एव न गुणा वरुदेवताः ।

सगुणा निष्कलभायो निगुणः सामलः शराः ॥३३॥

गुण गुण ही है, उनसे फल का कोई सम्बन्ध नहीं । सगुण (धनुष की डोरी) धनुष निष्कल होता है । भीर निगुण (डोरी रहित) बाण सफल (बाण का अवसाग) होता है ।

आत्मापन्नं गुणादाने नैगुणं वचनीयता ।

दीपादानीं विष्णु पुंसः का माय मायता ॥३४॥

गुणों का भर्जन करना अपने अधीन है, इसलिए गुणों का भर्जन न करना निन्दा का भाग है । धनी होना माय्य के अधीन है, इसलिए धनहीन पुण्य निन्दा का पात्र नहीं है ।

अश्वनरस्य स्य दृष्टा चलीकस्य संवयम् ।

अवन्ध्य दिवसं कुर्याद्दृष्टान्ताभ्ययनकर्मभिः ॥३५॥

अश्वन का स्य देखकर और चाल्मीक का संवय देखकर मनुष्य को चाहिए कि दान अध्ययन आदि सब कर्म को प्रतिदिन किया करे, क्योंकि प्रतिदिन का थोड़ा थोड़ा भी सात्कर्म बहुत होता है ।

यो यमर्थं प्रार्थयते यमर्थं पठते च यः ।

सोऽवरयतेमवाप्नोति न चेष्टान्तो निवर्तते ॥३६॥

जो जिस बात की प्रार्थना करता है, और जिस बात के लिए प्रयत्न करता है, वह उसे अवश्य प्राप्त होती है । यदि प्राप्त न हुई तो वह मनुष्य पकित होकर अपने प्रयत्न से निवृत्त हो जाता है ।

गर्भप्रविर्णीलको वाति योजनार्त्तं शतान्वयि ।

भाग्यम्वैततेषोपि पदमेकं न गच्छति ॥३७॥

चलता हुआ चीटा भी सैकड़ों योजन चला जाता है, और पैठा हुआ गड़ड़ भी एक पैर नहीं जाता ।

चित्तनीया हि विपदाभादावेवपतिक्रिया ।

न कृपणननं पुनः प्रदीते बहिना घृहे ॥३८॥

विपत्ति के भाने के पहिले ही उसके प्रतिकार का उपाय निश्चित करना चाहिए । घर में भाग लगने पर कुर्मा खाने की तय्यारी अच्छी नहीं ।

मिमरवजनचन्धूनां बुद्धैर्धैर्यं च ध्यातव्यम् ।

विपत्तिकृपापापे नरो जानाति सारताम् ॥३९॥

मित्र, स्वजन, चन्धु, बुद्धि और अपनी धीरता पर परीक्षा मनुष्य अपनी विपत्ति की कसौटी पर करता है ।

अर्थात् विपत्ति के समय इनका सहायन मनुष्य को मा होता है ।

सर्वः पदस्थस्य मुहद्वन्धुरापदि दुर्लभः ।

ये यान्त्र्यापदि बन्धुत्वं मुहदो बन्धवश्च ते ॥४०॥

घने के सब साथी है, बिगड़े का कोई नहीं । जो बिगा का साथी है, वही मित्र बन्धु आदि हैं ।

स मुह्यो विपत्त्यर्थेदीनमभ्यवपद्यते ।

न तु दुश्चरितातीतकर्मोपाङ्गाम्पण्डितः ॥४१॥

वही मित्र है जो विपत्ति से दुःखित मनुष्य का साथ दे यह नहीं, जो बीती हुई धातों के उलहना देने में अप विद्वत्ता दिखावे ।

शिरसा विवृता नित्यं स्नेहेन परिपालिताः ।

केशा अपि विरज्यन्ते कोन्ते नयाति विक्रियाम् ॥४२॥

सदा सिर पर रखे हुए, और बड़े स्नेह से पालित बाल भी रङ्ग बदल हो देते हैं, एक रङ्ग कोई नहीं रहता । मन्त्र में सबही रंग पलट देते हैं

गृहोः परिमणो नित्यं वैरं तीक्ष्णस्य नित्यशः

अतृप्यैतद्वयं तस्मान्मर्ष्या वृत्तिं समाश्रयेत् ॥४३॥

कोमल मनुष्य सताये जाते हैं, और कठोरों के शत्रु बढ़ते हैं । इसलिए कोमलता और कठोरता छोड़कर धोच की वृत्ति का ग्रहण करना ही उचित है ।

शृद्धानां हि साध्वन्ते कर्मणा स्वार्थसिद्धयः ।

अगृह्यपितृत्वम्वह्नी जलीका स्वान्मनृषवे ॥४४॥

कोमल कर्मों के द्वारा भी अपने स्वार्थ की सिद्धि की जा सकती है । (कोमल) जोंक अपनी वृत्ति के लिए रुधिर पीती है ।

गहीदूशं संवननं शिषु लोकेषु विद्यते ।

दानं मैत्री च भूनेषु दया च मयुता च वाक् ॥४५॥

तीनों लोक में इससे बढ़कर मनुष्य को प्रसन्न करनेवाली भीर दूसरी बात नहीं है—दान, मित्रता, प्राणियों पर दया और मॉंठी बोलो ।

आतर्पितुं बलिना दुःखं शक्तिरिति गर्वदा ।

भक्तिपूतै न मनसा समर्पद्वं वैश्वमनि ॥४६॥

बलदान के साथ विरोध हो जाने पर मनुष्य सुखपूर्वक सो नहीं सकता । उसे बढ़े हुए दुःख से अपना समय व्यतीत करना होता है । यह हमेशा शक्तिन बना रहता है, जैसे सर्प घाले घर में रहने वाला मनुष्य ।

कर्मणा मनसा वाचा चतुषा च चतुर्विधम् ।

प्रमादवति चो लोढं नं ज्योरो न प्रसीदति ॥४७॥

कर्म, मन, वाचन और वास्तु के द्वारा जो लोगों को प्रसन्न करना चाहता है, उससे लोग प्रसन्न नहीं होते ।

संभोजनं संकथनं संप्रशनोच समागमः ।

शक्तिभिः सह कावोपि न विरोधः कथञ्चनः ॥४८॥

भजने जाति भाव्यों के साथ भोजन करना, प्रेमपूर्वक वार्तालाप करके कुशल—प्रश्न पूछना चाहिए । उनके साथ कभी विरोध करना उचित नहीं ।

अपने स्वजनों द्वारा सख्त मनुष्य का आदर दूसरे भी करते हैं, और स्वजनों के द्वारा तिरस्कृत मनुष्य का निरादर हमारे भी करते हैं ।

ज्ञातोऽपि वक्तुं कामानां कटूनि पलायि च ।

सद्योऽपि हृदयं वाचा रलक्षय रासपेदुषुषः ॥५५॥

जो अपने भाई यन्धुओं को कठोर और पक्ष्य पोलना चाहें तो बुद्धिमान मनुष्य उनके कुपित हृदय को फोमल पक्ष्यों से शान्त करे ।

वसोऽपि हितराज्यं न्युपेक्ष्य हितः परः ।

भक्षितो देहोऽपि व्याधिर्हि तमारण्यमौषधम् ॥५६॥

हित करनेवाला शत्रु भी मित्र है, और भक्षित करने वाला मित्र भी शत्रु है । शरीर से उत्पन्न व्याधि शत्रु होता है, और जङ्गल में उत्पन्न होनेवाला दवा मित्र ।

सुखी पृथु जातापि हन्ताया वपकारिणी ।

वृत्तवद्वानैर्मात्रांते हितकृत्याभ्यन्तेत्यतः ॥५७॥

पर में उत्पन्न हुई शूरी मार डाली जाती है, क्योंकि वह वृत्तवान् पट्ट्यानी है और हित करनेवाली बिल्ली भी देकर परचार्ज जाती है ।

मोक्षदेव वसिष्ठश्च विःश्वेदं ललमुत्पद्येत् ।

मोक्षं ध्यातामपि किमुत्तमं वृत्तजनम् ॥५८॥

- मीर्षाण्य (स्नेह रहित) शत्रु का त्याग करना उचित है । ऐसा सटोदर भाई भी हो तो भी उसे त्याग करना उचित है, दूसरों को बात क्या ।

पूर्वोपकारी यस्तुस्यादपकारे गरीयसि ।

अपकारेण तत्तस्य क्षन्तव्यमपराधिनः ॥१९॥

पहिले के उपकारी व्यक्ति द्वारा यदि अपकार होना पड़े तो
उपकार के बदले उसका अपराध क्षमा करना चाहिए ।

अथ चेद्वबुद्धिर्ब्रूयात् न युष्मेतद्वबुद्धिर्ब्रूयात् ।

पापान्स्वल्पेति तावद्व्यादयराधे तथानृजम् ॥२०॥

जो मनुष्य जान बूझ कर पाप करे और कहे कि गलत
मे होगया है, तो उसको मार डालना चाहिए और जो अप-
राध भी करे और अपनी गैली हाँके उसे भी मार डालना
चाहिए ।

अजातमृतसूक्ष्मांशो मृताजातौ वर्गं मुतौ ।

तौ किञ्चिन्मृदोः पितोर्मूर्खं स्वल्पेन शोकदः ॥२१॥

अजात, मृत और मूर्ख इन तीन प्रकार के पुरुषों में से
पहिले के दो अच्छे हैं, अन्तिम नहीं । पुत्र के न उत्पन्न होने से
या उत्पन्न होकर मर जाने से एक ही बार दुःख होता है और
मूर्ख पुत्र तो जीवन भर तक सताता रहता है ।

अपुत्रस्य भवेत्तेषो ननुस्वाद द्विगुणः सुतः ।

जीवन्मृत्युविनीतौ मो मृत एव नासंशयः ॥२२॥

बिना पुत्र का रहना ठीक है, पर निगुण पुत्र नहीं
अच्छा । यह अशिक्षित पुत्र जीवन मृत्यु के समान है ।

एकोपि गुणवान्पुत्रो निगुणेन शतेन किम् ।

एकरश्मिस्तमो हन्ति न च तारा सदृशः ॥२३॥

गुणी एक भी लड़का बहुत अच्छा है, और निगुण सी
भी अच्छे नहीं, एक चन्द्रमा अन्धकार का नाश करता है
दुष्टारों तारे नहीं ।

दाने तपसि शौच्ये वा यस्य न प्रयितं यशः ।

विद्यावाम्पेलाभे वा मानुष्यार एव सः ॥६४॥

दान, तपस्या और शूरता में जिसकी प्रसिद्धि न हुई,
यह अपनी माता का पुत्र केवल कहने के लिए है ।

पात्रीयं वा निरायानं स्वाहृन्न वा भयोत्तरम् ।

विचार्यं ननु पश्यामि ननुगं यत् निहृतिः ॥ ६५ ॥

बिना प्रयत्न के मिला हुआ जल और गयजनक स्वादु
भाजन इन दोनों के विषय में जब मैं विचार कर देखता हूँ
तब मालूम होता है कि अहाँ सृष्टि है वहाँ सुग्न है ।

दुःखेन क्षिप्यते मित्रं छिद्य दुःखेन मिषते ।

मित्रक्षिप्य तु वा प्रीतिर्न ना स्नेहेन दुःखते ॥६६॥

दुःख में मित्र (फटा हुआ) तुड़ जाता है, और दुःख से
तुड़ा हुआ फट भी जाता है, पर भेद पाकर तुड़ी हुई प्रीति
में स्नेह नहीं होता ।

द्वेषोपादुषननाः प्रतिज्ञाहीनमग्नयः ।

अकस्मादेव नश्यन्ति नलानामिव मज्जतम् ॥६७॥

भाग्य से मिली हुई सम्पत्ति अचानक ही मट हो जाती
है, जैसे दुर्जन की मंत्री ।

॥ द्वेषमिति संक्षिप्य त्वेकेदुषोगमाययाम् ।

अनुपयोगेन कस्मैच नितेभ्यः प्राप्तुमर्हति ॥६८॥

हमारे प्रयत्नों का फल भाग्यपूर्ण है, इसलिये उद्योगों
को छोड़ देना नहीं भज्या । बिना उद्योग से कोई भी मनुष्य
तित से मिल नहीं पा सकता ।

यद्वो यत्त नेतारः सर्वे पण्डितमानिनः ।

सर्वे महत्त्वमिच्छन्ति तद् नन्दनवमीदृति ॥६९॥

जिस दल में बहुत नेता हों, सभी अपने को पण्डित होनेवाले हों, और सभी बड़ा धनना चाहते हों तो शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ।

अपेक्षो ज्ञाता पितृममो मृने पितरि भारत ।

स ह्येषा वृत्तिदात्रास्यात्सम्यक्तान्परि पालयेत् ॥७०॥

पिता के मरने पर बड़ा भाई पिता के समान ही अपने छोटे भाइयों की देख रेख रखता है और करता है ।

कनिष्ठास्त्वनमस्येत्सर्वेऽन्यानुवर्तिनः ।

तमेव चोपजीवेपुर्नपि पितरं तथा ॥७१॥

छोटे भाई बड़े भाई का आदर करें, उनके कहने के सार चले और उन्हीं के अधीन रहे, बड़े भाई के साथ पिता के समान धरताच करें ।

तथा गवा किं क्रियते या न दोग्ध्री न गर्भिणी ।

कोपः पुत्रेण यातेन यो न विद्वान् धार्मिकः ॥७२॥

उस गाय को लेकर क्या होगा जो न दूध देती है, और न बच्चे? उस लड़के से क्या लाभ जो न धार्मिक हो और न विद्वान् ?

किंनु मेत्यादिर्द कृत्वा किंनु मे स्यादकुर्वतः ।

इति संचित्त मनसा प्राज्ञः कुर्वीत वा न वा ॥७३॥

इस कार्य के करने से क्या होगा और न करने से क्या होगा ? इस बात का विचार कर लेने पर मनुष्य को चाहिए कि काम करे या न करे ।

कार्यमालोचितशायं मतिमद्विविक्तेचितम् ।

न केवलं हि सम्पत्तौ विपत्तायपि शोभते ॥२४॥

जिस कार्य की घुराइयां भालूम हो चुकी हैं और जिस कार्य के विषय में बुद्धिमानों ने अपनी सम्मति प्रकाशित कर दी है वह कार्य अच्छे समयों में ही नहीं, किन्तु विपत्ति के समय में भी लाभदायक होता है ।

पटुर्ज्ञेनो विपत्ते मन्त्रप्रनुक्तं स्य आनुचितम् । —

द्विकारोऽप्य तुम्हस्य प्रज्ञाप्यन्तां न गच्छति ॥२५॥

कौई गुप्त बात छः कानों में पहुँचने पर फैल जाती है, शर कानों में पहुँचने पर कमी कमी फैलती है, पर जो सलाह तो कानों में ही रहती है उसका पता प्रज्ञा को भा नहीं मेलता ।

सुमङ्गिते सुप्रियाभ्ये मुरुते सुविचारिते ।

मार्गभ्ये ह्यनुदीना सिद्धिरप्यविचारिणी ॥२६॥

उस काम में बुद्धिमानों को भयश्च हो सिद्धि मिलती है जिसी प्रारम्भ करने के पहिले गूँथ सेच विचार लिया जाता है, जिसके साधन में तत्परता दिग्दर्श आती है जो अच्छी तरह किया जाता है ।

अच्छानि दुर्नानि समव्यवधानि च ।

अशक्तानि च यत्नानि नार्थमेत विचारकाः ॥२७॥

बुद्धिमान उन कामों का प्रारम्भ न करे जिनका कुछ फल न हो, जिनका परिणाम दुर्गर्श हो जिनमें क्षानि लाभ बराबर हो और जो अपने किये अशक्य हो ।

सन्दर्भं पुरचेनेह व्यवसायवता सता ।

तन्मार्गमभिगम्येति सिद्धिरिव प्रतिज्ञा ॥२८॥

उद्योगो सज्जन पुरुष का जो कर्तव्य है, उसका पाठ निर्भय होकर करना चाहिए सिद्धि मायाधीन है ।

अणुपूर्वं वृद्धत्यश्नाद्वन्यायेषु संगतम् ।

विपरीतमनायेषु ययेच्छमि तथा कुह ॥३९॥

सज्जनों की मैत्री पहिले छोटी पीछे बड़ी होती है ।
दुर्जनो की मैत्री इससे विपरीत होती है ।

सद्भिरेव सदासीत सद्भिः कुर्वीत संगतम् ।

सद्भिः विवाद् मैत्री च संसद्भिः किं विदाचरेत् ॥४०॥

सज्जनों के साथ घेड़ना चाहिए और उन्हीं का करना चाहिए, यदि विवाद हो तो सज्जनों के साथ मैत्री हो तो भी उन्हीं के साथ । दुर्जनों से कुछ भी सम्बन्ध रखना चाहिए ।

विरुद्धैरपि बलात्वं साधुभिर्धर्मदंष्ट्रिभिः ।

दोषा अपि हि साधूनामसतां च गुणैः समाः ॥४१॥

अपने से मतभेद रखनेवाले धर्मात्मा सज्जनों के साथ रहना उचित है, क्योंकि धर्मात्मा के दुर्गुण भी दुर्जनों के गुणों से बढ़कर होते हैं ।

प्रेक्षणीयः प्रयत्नेन स्वभावो नेतरे गुणाः ।

भतीत्यदि गुणान्सर्वान्स्वभावो भूभिः तिष्ठति ॥४२॥

बड़ी तत्परता के साथ अपने स्वभाव की देखरेख रखनी चाहिए, दूसरे गुणों की नहीं । क्योंकि स्वभाव सब गुणों का अपना प्रभाव जमा लेता है ।

मिथं प्रयादरूपणः शूरः स्याद्विकृत्यनः ।

दाता नापाप्रवर्षी स्यात्प्रयादः स्यादन्धधुरः ॥४३॥

उदारता के साथ प्रिय बोलना चाहिए, शूर होना चाहिए,
पर आत्मश्लाघी नहीं । दाता होना चाहिए पर अपात्र को दान
देना ठीक नहीं । प्रगल्भ होना अच्छा है, पर कूर नहीं ।

न विशस्वेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेव ।

विश्वासाद्दुर्मयमुत्पन्नं मूलाभ्यपि निकृन्तति ॥ ८५ ॥

अविश्वासी पर विश्वास न करे और विश्वासी पर भी
अधिक विश्वास न करे । क्योंकि विश्वासी से जो भय
उत्पन्न होता है, वह जड़-मूल से नाश कर देता है ।

प्रहाशीर्षविश्वेदेषु भृत्येषु शङ्कुपितु ।

स्थामी विश्वासनिद्राग्लः प्रतारयति तप्यते ॥ ८६ ॥

सुखि और घल से घड़े हुए शङ्कु भृत्य पर जो स्थामी
विश्वास करता है वह ठगा जाता है, और दुख उठाता है ।

परम कार्यमकार्यं का सममेव भवत्युत ।

कस्तस्य विश्वसेप्राप्तो दुर्मेनेरकृतात्मनः ॥ ८७ ॥

जिसके लिए अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कार्य बराबर
हैं, उस मूर्ख और हताशी का विश्वास कौन सुखिमान् कर
सकता है ?

भरराधो न मेस्तीति नैवविश्वासकारणम् ।

विद्यते हि नृभस्तेभ्यो भयं गुणवतामपि ॥ ८८ ॥

मेरा अपराध नहीं है, इसी विश्वास से निर्मय नहीं हो
जाना चाहिए । क्योंकि कूर मनुष्यों द्वारा गुणवान् भी सताये
जाते हैं ।

केचिन्मनुजानां व्याघ्राः केचिद् व्याघ्रमुक्ता मृगाः ।

तस्वरूपविपर्ययाद्विश्वस्तो ह्यापदो यदम् ॥ ८९ ॥

कोई मनुष्य भृगुमुख व्याघ्र होते हैं कोई व्याघ्रमुख म
होते हैं। अर्थात् कोई तो ऊपर से अच्छे दीखते हैं पर
भीतर के क्रूर होते हैं, और कोई ऊपर से क्रूर दीखते हैं, औ
भीतर से अच्छे होते हैं। इस स्वरूप भेद के घांसे में आक
जो अपना विश्वास स्थापित करते हैं, ये विपत्ति में फँसने हैं।

परनिन्दाषु पाण्डित्यं स्वपु कारेण्यनुपमः ।

प्रदेषश्च गुणश्रेष्ठु पम्पानो ह्यापदां वपः ॥ ९० ॥

दूसरों की निन्दा में अपनी निपुणता दिखाना, अप
कार्यों में उदासीन रहना और गुण के भादर करने वाले।
हैप रखना, ये तीन आपत्ति के मार्ग हैं।

वशङ्क्यं प्रसितुं प्राप्तं प्रक्षं च परिणामि यत् ।

हितं च परिणामे यत्तदाद्यं भूतिमिच्छता ॥ ९१ ॥

जो प्राप्त निगला जा सके, पच सके और जिससे परिणाम
में लाभ हो, अपना कल्याण चाहने वाले को उसी वस्तु का
सेवन करना चाहिए।

तिष्ठत्येकेन पादेन चलत्येकेन पाण्डितः ।

नापरीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत् ॥ ९२ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य एक पैर से चलता है और एक पैर से
खड़ा रहता है। दूसरा नया स्थान बिना देखे पहिला स्थान
नहीं छोड़ना चाहिये।

यदुनामप्यसाराशां समवाये हि दुर्जयः ।

मृणरावेष्टयते रज्जुमया नागोपि यद्यपते ॥ ९३ ॥

यद्युत सी दुर्बल वस्तुओं का समूह दुर्जय होता है, तृणां
से रस्सी घटी जाती है, जिससे हाथी भी घँघ सकता है।

बहुनामप्यभिप्रायां न इच्छेत्कर्तुमप्रियम् ।

आत्मातेन गुणैर्भोग्यस्ततोर्वा महदप्रियम् ॥ ९४ ॥

जो अपने शत्रु मंडल को दुख पहुँचाना चाहता हो, तो उसे चाहिए कि अपनी आत्मा को गुणवान बनावे । क्योंकि उसके शत्रुओं के लिए इससे बढ़कर अन्य दुखदाई कार्य नहीं है ।

प्रशान्तशरीरस्य किं कर्तव्यमिति संहताः ।

गृहीतच्छत्रदस्तास्य वारिधारा इवारयः ॥ ९५ ॥

युद्धि के द्वारा जिसने अपने शरीर को सुरक्षित कर रखा है, उसकी सम्मिलित शत्रुओं के दल द्वारा कोई हानि नहीं हो सकती । जिसने छाता लिया, उसका घृष्टि क्या कर सकती है ?

यत्र शक्यं न तच्छक्यं सुशीघ्रमपि धावता ।

मन्दबुद्धिस्तु जानाते मुहूर्तं नास्मि वंचितः ॥ ९६ ॥

जो काम अशक्य है, वह अशक्य ही है, चाहे उसके लिए कितना ही क्यों न प्रयत्न किया जाए । पर मूर्ख मनुष्य समझता है, कि मेरी धोड़ी गलती से वह कार्य नहीं हुआ ।

अक्षिपद्म कदा सुप्तं छिप्यन्ते हि शिरोरुदाः ।

वर्धमानात्मनामेव भवन्ति हि विपत्तयः ॥ ९७ ॥

आँख के पार कभी नहीं काटे जाते, पर माथे के पार हमेशा काटे जाते हैं । बात यह है कि विपत्तियों का सामना उम्होंको करना पड़ता है जिनकी घृद्धि होती है ।

भा तात सादसं कार्पाविमयैर्विप्रलम्बितः ।

रक्ताश्रवपि आरुण्य भवन्ति हि विपत्तये ॥ ९८ ॥

भाई, घन मद से भूल कर बहुत साइस मन क
क्योंकि अपने अहं भी भार होजाते हैं और वे विपत्ति
समान मालूम होते हैं ।

मा तात प्रमथामीति वाधिप्राः कृपणं जनम् । —

मा त्वां कृपणचक्षुषि चाधुरग्निरिवेन्धनम् ॥ १९ ॥

भाई ! तुम प्रमाथशाली हो, इसलिए दुर्बलों को दु
मत दो । नहीं तो तुम दुर्बलों को आँखों से जल जाओगे
जैसा अग्नि लकड़ी को जलाती है ।

मा तात सम्पदामप्रथमारुद्रोऽस्मोति विश्वतीः ।

दुरारोहपरिभ्रंशविनिपातो हि दारुणः ॥ १०० ॥

भाई ! तुम सम्पत्तियों के शिखर पर चढ़े हो, इस बात
का विश्वास मत करो । क्योंकि अधिक ऊँचे चढ़ने वालों का
पतन बड़ा भयानक होता है ।

यं प्रशंसन्ति कित्वा यं प्रशंसन्ति चारणाः ।

यं प्रशंसन्ति बन्धक्यो न त्व जीवति मानवः ॥ १०१ ॥

धूर्त लोग जिसकी प्रशंसा करें, खुशामदी चारण जिसकी
प्रशंसा करें और रंड़ियाँ जिसकी प्रशंसा करें, वह मनुष्य
अधिक काल तक नहीं जीता ।

वैरमादी समुत्पाद्य यः कश्चित्संघिमिच्छति ।

शून्यमपत्येवमप्राप्य संधिस्तस्य न विप्रते ॥ १०२ ॥

जो मनुष्य पहिले शत्रुता करके पुनः संधि करना चाहता

मिट्टी के घड़े के समान उसको संधि नहीं होती ।

कीमत्तकोषमादाय प्रहारात्तपि मर्पयेत् ।

काले काले तु मतिमानातिष्ठेत्कृष्णमर्पयन् ॥ १०३ ॥

कहनु के समान गम्रता धारण कर भारों को भी सह
लेना चाहिए । पर समय माने पर बुद्धिमान को चाहिए कि
यह सप के समान उठ खड़ा हो ।

बहेदमित्रं रक्षन्धेन पावत्कालस्य वर्षधः ।

भयैवमागने काले भिन्द्यादमिवाश्मनि ॥१०५॥

शत्रु को तब तक बन्धे पर रखना चाहिए जब तक
मृत्यु समयार न भाये । समय माने पर इसका पदक कर
तोड़ डाले, जैसे राखर पर पदक कर घड़ा फोड़ दिया
जाता है ।

तावन्नवस्य भेतात् पावन्नयमनागतम् ।

भागवन्तु मय दृष्टा ग्रहणंभ्यमभीनवन् ॥१०६॥

मय से तभी तक डरना चाहिये जब तक यह सामने न
भाये । मय के समीप माने पर निर्मय होकर उसका सामना
करना चाहिए ।

बोहिता तद संधाय तुल्यं स्वर्णिनि विधमम् ।

त दृष्टामे तुल्यं च निजः मनिबुध्यते ॥१०७॥

जो शत्रुओं से नीच करने के विभागपूर्वक तुल्य से सेता
है, वह पैद के भग्नभाग में साथे हुए के समान, सरर
पाहाम हा के सेतना है ।

तद्वदुद्वेगः कः कश्चिदुद्वेगः संधायमिच्छति ।

त दृष्टुमुद्वेगः कश्चिदुद्वेगः संधायमिच्छति ॥१०८॥

एक बार निमने विरोध हो गया है, जो मनुष्य पुनः
उत्तरे नीच करने को इच्छा करता है, वह अपनी शत्रु हो
के बुझता है । जिस प्रकार राखरी गम धारण करती है ।

आत्यन्तमरलैर्मांसं ग्रन्था पर्य वने तहन ।

उद्यन्तेमरलास्तत्र कुञ्जाः सन्ति पदे पदे ॥१०९॥

अत्यन्त सरल नहीं होना चाहिए, यदि अत्यन्त सरलता के दोषों को देखना चाहते हो तो वन में जाकर वृक्षों को देखो । वहाँ सरल वृक्ष काटे जाने हैं और टेढ़े-मेढ़े फँसे हुए हैं ।

यस्य चाप्रियमान्तिच्छेदुषू यामस्य सदा प्रियम् ।

व्याधा मृगवधं कर्तुं सदा गायन्ति मुस्वरम् ॥११०॥

यदि तुम किसी को अप्रिय करने की इच्छा रखते हो, तो सदा उससे मीठी बातें बोला करो । क्योंकि हिरनों के मारने के लिए व्याध घंशी यज्ञाया करते हैं ।

मृगशेपोऽग्निशेपरश्च शत्रुशेपस्तथैव च ।

पुनः पुनः प्रवर्तन्ते तस्माग्निःशेपमाचरेत् ॥१११॥

शृण का शेप, अग्नि का शेप और शत्रु का शेप यह पुनः पुनः पढ़ा करते हैं । अतएव इनका शेप न छोड़ें ।

नहि कश्चित् कृतेकार्ये कर्तारं समवेक्षते ।

तस्मात्सर्पाणि कार्याणि सावशेषाणि कारयेत् ॥११२॥

काम फे हो जाने पर कोई भी कर्ता की ओर नहीं देखता । अतएव कार्यों को समाप्त न करना चाहिए, कुछ छोड़ा भी रखना चाहिए ।

शोपेक्षितयो विद्वद्भिः शत्रुरण्योऽप्यवज्ञया ।

वहिरण्योपि स'वृद्धः कुर्वन्मत्समाद्रवम् ॥११३॥

तिरस्कार की दृष्टि से छोटे शत्रु की भी उपेक्षा विद्वानों को नहीं करनी चाहिए । याग की एक चिनगारी भी बढ़कर समूचे जंगल को जला देती है ।

भादरात्मगृहीतेन शत्रुणा शत्रुमुदरेव ।

पादलग्नं करस्थेन कण्ठकेनेव कण्ठकम् ॥११४॥

आदर पूर्वक अपने शत्रु को वश में करके उसके द्वारा दूसरे शत्रु का नाश करना चाहिए । जिस प्रकार पैर में गड़े काँटे को, निकालने के लिये दूसरा काँटा हाथ में लिया जाता है ।

केचिदज्ञानतो नष्टाः केचिज्ज्ञाः प्रमादतः ।

केचिज्ज्ञानावलेपेन केचिलप्यैस्तु नाशिताः ॥११५॥

कुछ लोग अज्ञान से नष्ट हुए और कुछ लोग प्रमाद से, और कुछ लोगों को नहीं ने नष्ट किया ।

पण्डिते न विद्वद्भ्यः सन्दूरेस्मीति न विद्यसेव ।

दीर्घैर्बुद्धिमतोवाहू पाश्यां दूरे दिवन्ति सः ॥११६॥

पंडितों से विरोध करके इस बात के विश्वास से नहीं भूलना चाहिए कि मैं अपने विरोधी से दूर रहता हूँ, क्योंकि बुद्धिमानों की धाँह लम्बी होती है जिनसे वे दूर से भी मार गिराते हैं ।

चतुरः सृजताराग्रनुपायोलेन वेधसा ।

न सृष्टः पंचमः कोपि गृह्णते येनवोपितः ॥११७॥

महाराज ग्रन्था ने केशव चारही उपाय बनाये हैं । उसने पाँचवाँ कोई उपाय नहीं बनाया जिससे खियां धरा में की जाँय ।

अपि दुर्गरकणांमादपि विप्लवप्लुवात् ।

अपि विद्युद्विलसितादिलोलं ललनामवः ॥११८॥

हाथी के कानों से, पीपल के पत्तों से और चिजली की चमक से भी बद कर खियां का मन चञ्चल होता है ।

सा भावां या प्रियं द्यूते स पुत्रो यत्र निवृत्तिः ।
तन्मित्रं यमविश्वामः स देशो यम जीवति ॥११९॥

मायां यह है जो प्रिय बोलती है, पुत्र यह है जिस
कायों से पिता को सन्तोष हो, मित्र यह है जिस
विश्वास हो और देश यहाँ है जहाँ जीविका हो ।

नित्यं ग्रहण्या भाग्यं गृहकार्यं च दक्षया ।

सुसंस्कृतोपतेकरया नित्यं चामुक्तहस्तया ॥१२०॥

स्त्रियों को सदा प्रसन्न रहना चाहिए, अपने गृहकार्य
साधधान रहना चाहिए, अपने घर की वस्तुओं को स्व
रक्षता चाहिए और समझबूझ कर खर्च करना चाहिए ।

स्त्रियः सेवेत नात्यन्तं मिष्टं गुञ्जीत नाहिनम् ।

अलाब्धः पूत्रमेष्मान्यान्सेवेतामायया गुरुन् ॥१२१॥

स्त्रियों का अधिक सङ्ग नहीं करना चाहिए, अधिक
मिठाई खाना भी हितकारी नहीं, तत्पर होकर माननीयों
सेवा करे और छल, रहित होकर गुरुओं की सेवा करे ।

नचेत्प्यां स्त्रीषु कर्तव्या दारारस्याः प्रयत्नः ।

भनायुत्प्या भवेदीक्ष्यां तस्मानां परिवर्जयेत् ॥१२२॥

स्त्रियों से ईर्ष्या न रखे, बड़े प्रयत्न से उनकी रक्षा करे
ईर्ष्या से आयु क्षय होता है, इसलिए ईर्ष्या छोड़ देना चाहिए

सूक्ष्मेभ्योपि प्रसङ्गैर्भ्यः स्त्रियो रक्षहि सर्वदा ।

द्वयोर्हि कुलयोर्दोषमावहेयुररक्षिताः ॥१२३॥

थोड़ी थोड़ी बातों को ओर से भी स्त्रियों की रक्षा करना
चाहिए, क्योंकि बिना रक्षा किये ये दोनों कुलों को कलङ्कित
कर देती हैं ।

यदैव भर्ता जानीयान्मन्त्रमूलपतां स्त्रियम् ।

रद्विषेत्त तदैवास्याः सप्तोद्वेगमगतादिव ॥१३३॥

पति को जिस समय यह मालूम होता है कि मेरी स्त्री मेरे वश करने के लिए मन्त्र और औषधियों का प्रयोग करती है, उसी समय वह घबड़ा जाता है, जैसे घर में के साँप से गृध्रासो घबड़ा जाते हैं ।

नास्ति वशः स्त्रियः कश्चिन्न वसन् भोपवासकः ।

पतिं शुभ्रपते वसता तेन स्वर्गे महीयते ॥१३४॥

स्त्रियों के लिए कोई यज्ञ नहीं, कोई व्रत नहीं और न कोई उपवास ही है । स्त्रियाँ अपने पति की सेवा करती हैं इसलिए उन्हें स्वर्ग मिलता है ।

पानप्रश्नास्तथा भाषां मृगयागीतवादित्रे ।

एतानि युक्त्या सेवेत प्रसङ्गो ह्यत्र शेषवाग् ॥१३५॥

शराव, जूआ, स्त्रियाँ, शिकार, गाना, बजाना, बुद्धिपूर्वक इनका उपयोग करे, क्योंकि इनमें अधिक आसक्ति से हानि होती है ।

प्रसादो निष्कलो मत्स्य क्रोधश्चापि निरर्थकः ।

न ते भर्तारमिच्छन्ति पण्ड' पतिमिव स्त्रियः ॥१३६॥

जिसकी प्रसन्नता का कोई फल न हो और जिसका क्रोध भी निरर्थक हो; उसको कोई भी अपना प्रभु नहीं बना सकता । जिस प्रकार स्त्रियाँ नपुंसक को पति बनाना नहीं चाहती ।

मज्जनघोषो वास्तुचैनरः स्वैरैव कर्मभिः ।

एनित्रैव हि कूपस्य प्रसादस्येव कारकः ॥१३७॥

मनुष्य भाने कर्मों में ऊँचे चढ़ता है और नीचे जाता है, तुमों सोचने वाला नीचे और अटारों बनाने व ऊपर जाता है

महासहस्रं कथं ब्रह्मनिर्गुणम् ।

ममने दुष्टज्ञानमामानं च कंचनम् ॥१३८॥

पिता भयंकर की पान यदि ब्रह्मरूपि भी कहे तो लोग उ को भूमं समझने हैं और उनका तिरस्कार करते हैं ।

किं कतिपरपराशास्त्रासुरदेहा मुनागमि ।

तद्व्यगोचरः दुष्टतोषि दुर्दांशि विद्वन्मते ॥ १३९॥

सुन्दर यवन पोलनेवाला भी उपदेशक, मनपिकाषियों के सामने क्या कर सकता है ? बहुत तेजमी कुठार लकड़ियों को नहीं काट सकता ।

बद्धतार्थधर्मा वै प्रमाद्यति न तच्छलम् ।

धर्म प्रदायमन्धानां यन्तस्तन्ति शलेष्वपि ॥१४०॥

धर्म ताय न जाननेवाला आदमी यदि चलती कं यह उसका छल नहीं, क्योंकि न देखता ही भँधों का ध

७

शिवस्वामी ।

ये कवि काश्मीरस्वामी थे । कश्मीर के राजा प्रवर्धमा के राज्य-समय में थे थे ।

मुक्तावणः शिवस्वामी कचिरानन्दवर्धनः ।

प्रयां रत्नाकरश्वागात् माघाज्येऽवन्तिवर्मणः ॥

राजा अवन्ति चर्मा के समय में भुकाकण, शिवदशमी, तानन्दवर्धन और रत्नाकर ये कवि वर्तमान थे । राजा अवन्ति चर्मा ने ८५५ ई० से ८८५ ई० तक काश्मीर का राज्य किया था । राज-तरङ्गिणी से इसका पता मिलता है । शिवदशमी का भी यह समय मिलता है ।

शिवदशमी के किसी ग्रन्थ का पता नहीं मिलता, पर इनका कोई ग्रन्थ होगा भवश्य । इनको कविता बड़ी अच्छी है, उसमें काव्य के गुण वर्तमान हैं । सुमायित ग्रन्थों से उद्धृत कर शिवदशमी के कुछ पद्य यहाँ लिखे जाने हैं ।

रसं विरोधि परिकुण्पति निनिमिषे

रसो न दूषयति वाययति प्रवेशम् ।

राजः करं ददाति नैव च दूष्यतीति

कौटिल्यकथं च सुलस्य च को विरोधः ॥१॥

कुसा भीरु बल इनमें क्या भेद है ? दोनों की योद्धे कठोर हैं, दोनों ही बिना कारण काय्य करने हैं, दोनों के स्वर्श करने से दाँप हाना है, दोनों ही रास्ता रोकने हैं, घुसे तरह काटने हैं और रुत नहीं हाने ।

सुप्ताग्निनि पयानि भद्रविलम्बदुग्धा विमयगन्धः

स्तीतास्ताम्रमासवा विहरयतीदृमहं सैकवम् ॥

सम्येव प्रविशेशमग विषमे हे हंस पट्टादिते

पटंगकुट्टके अरम्भरणि ने-कोप निवासाग्रह ॥२॥

हे हंस, प्रत्येक दिशा में मुक्ता के समान स्वच्छ जल है, तोड़ने पर दूध के समान कमल नाल है, उत्तम कमल का मधु है, विहाज्येड़ा के लिए स्तीला मदन है, किर हंस,

सूर्य अस्त हो गया, अब तुम भी अपनी सहचरी के पास
प्रो । भाई आनन्द पूर्वक सोचो, हे काम, तुमने सज्जन का
न किया । जब मैं रो रही थी स्नेह से मेरी आंखें जब
आधी थीं, उस समय जो निर्दय चला गया वह तुम्हारे
शप के समय कैसे आ सकता है ।

वहायवन्त्या दयितस्य दुर्तां यच्चा विमृषां च निवेशयन्त्याः ॥

प्रसन्नता क्वापि मुखस्य यजे वेषधिया मु प्रिय वार्त्तवा मु ॥१॥

प्रिय की दूरी से घाते भी फरती थी और अपना शृङ्गार
कर रही थी, उस समय उसके मुख पर प्रसन्नता दिखायी
ती, वह प्रसन्नता शृङ्गार के कारण हुई या प्रिय की वार्त्ता के
रण हुई, मालूम नहीं ।

मौक्तुं भङ्ग्या मुक्ते कुटिलविमलताकोटिमिन्दोर्वितर्का

ताराकारस्फुपातेन न विवर्धित पयमः स्थूलविम्बुन्दरस्वान् ॥

छायां सप्यास्तसम्प्येम्पलिकुनशावली वेत्ति चाम्भोरहायां

काम्ता विश्लेषणीर्द्धनमपि रत्ननी मन्वते चक्रवाकः ॥२॥

देही कमलजुही को खाने के लिए तोड़ता है, पर
दूमा समझ कर उसे छोड़ देता है, यद्यपि प्यासा है तथापि
मल पत्र पर पड़े हुए जल के बड़े बड़े बिन्दुओं को तारा
मझकर नहीं पीता है, समर समूह युक्त फजल की छाया
। अन्धकारमयी सन्ध्या समझता है, रसी प्रकार काम्ता के
योग से हरनेवाला चक्रवाक दिन को भी रात समझता है ।

समन्त्रि न तामेव म्यक्तं यद्वद्रीष्यं वा

स्मरसुखमयी मामावीर्ष्या विना कन्देन वा,

नमस्तु कलहः प्रोद्योभ्यं यः प्रसादनवर्जितः

प्रवदन्विधिर्नामौ बाला न येन विनिश्चिरे ॥३॥

शोला महारिका ।

ये खो कवि हैं । उन्होंने कोई ग्रन्थ बनाया है कि नहीं, इसका पता नहीं । पर इनकी प्रशंसा में राजशेखर ने जो श्लोक कहा है उससे ये कवि थीं, इनकी कविता उत्तम होती थी, यह बात मालूम होती है । राजशेखर ने लिखा है—

शब्दार्थयोः समो गुणः पाञ्चाली रीतिरुच्यते ।

शिला महारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि ॥

शब्द और अर्थ दोनों का बराबरी विन्यास करना पाञ्चाली रीति कहा जाता है, यह यदि शिला महारिका के बचन में या बाणभट्ट की उक्ति में हो । इस श्लोक से मालूम होता है कि महाकवि राजशेखर इनको किस दृष्टि से देखते थे ।

शाङ्गधर पद्धति में एक श्लोक इनके और भोजराज के नाम से उद्धृत है, यह श्लोक इस प्रकार है—

इदमनुधिनमकमरच पुंसां

यदि इ जरावति माम्मया विहारा,

यदपि च न कृतं निजमिहनीनां

स्मनयतनावधि जीवितं त्वं वा ।

इस श्लोक के पहलें दो चरण शोलामहारिका के हैं और दूसरे दो चरण भोजदेव के । इनसे ये भोजराज के समय में थीं, यह निश्चित होता है ।

इनका नाम केवल शोला है । किसी राजकुल में उत्पन्न होने के कारण या राजोचित सम्मान पाने के कारण महारिका

१ स्वर्यविचार प्रकरण, २ विनयप्रशस्ति, ३ सण्ड खण्ड साय, ४ गौडोर्वाशकुल प्रशस्ति, ५ भर्गव, वर्णन ६ छन्द प्रशस्ति, ७ शिवशक्तिसिद्धि, ८ नवसाहसार्कचरित च आदि ।

ड० व्यूलरने श्रीहर्ष का समय ११६३ से, ११७४ तक बताया है । यह बात ठीक भी मालूम पड़ती है, क्योंकि इन्होंने गौडराज विशेषकर विजयसेन की प्रशस्ति लिखी है, इनका भी यही समय है ।

श्रीहर्ष के पिता का नाम श्रीहीर और माता का नाम मामलदेवी था । नैपथीयचरित के अन्त में इन्होंने अपने विषय में "ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्" लिखा है, अर्थात् जो कान्यकुब्जेश्वर से दो घोंडा पान और आसन पाता था । यह इनकी प्रतिष्ठा की बात थी । राजशेखर कहते हैं कि श्रीहर्ष जयन्तचन्द्र के समकालीन थे ।

ये थड़े ही बुद्धिमान् और विद्वान् कवि थे । भाषा पर इनका एकच्छत्र अधिकार था । इनका नैपथीयचरित एक मान्य काव्य समझा जाता है, इसका संस्कृतज्ञों में अच्छा आदर है ।

द्विजपतिप्रसन्नादितपातकप्रभवकुष्ठसिक्तीकृतविग्रहः ।

विरहिणीवदनेन्दुजिघन्सया स्फुरति राहुर्व न निशाकरः ॥१॥

विरहिणी का प्रलाप । दमयन्ती चन्द्रमा को देखकर कहती है, यह चन्द्रमा नहीं है, यह राहु है । चन्द्रमा का घात करके जो पाप इसने अर्जन किया है, उसीसे इसके समस्त शरीर में कुष्ठ रोग उत्पन्न हो गया है, जिससे इसका शरीर

श्वेत हो गया है । अब यह वियोगिनी स्त्रियों के मुखचन्द्र को प्रसन्ना चाहता है ।

यद् विभुस्तुदमालि मदीस्तैस्त्वग्रसि किं द्विजराजमिषा रिपुम् ।

किमु दिव' पुनरेति यदीदृशाः पतित एष निषेज्य हि वारुणीम् ॥२॥

हे सखी, मेरी धोर से जाकर तुम राहु से कहो कि तुम शत्रु को द्विजराज सम्मूह कर क्यों छोड़ते हो ? क्या यह पुनः स्वर्ग में जा सकता है ? क्योंकि यह वारुणी के सेवन से पतित हो रहा है । वारुणी शत्रु को कहते हैं और पच्छिम दिशा को । चन्द्रमा पच्छिम दिशा में भस्म होता है, इसी बात को कवि ने वारुणी के साथ से चन्द्रमा का पतित होना बतलाया है । पतित के मारने में डर क्या ? दमयन्ती ने इन उक्तियों से चन्द्रमा को मारने के योग्य सिद्ध किया ।

स्वरिपुटीदण्डुदश'नविभ्रमाङ्किमु विभु' भवते स विभु'तुदः ।

निपतित' बदने कथममया बलिहरम्भविर्न निजमुगमति ॥३॥

मालूम होता है कि राहु विष्णु के सुदर्शन चक्र के छोखे में भाकर चन्द्रमा को नहीं निगलता बतएव । यह अपने मुँह में भाये हुए को भी छोड़ देता है ।

बुद्ध करे गुल्मेकमयोधन' बहिरितो मुहुर' च कुरन्त्य मे ।

विशति तत्रैव दैव विभुमश सति मुलादहित' अहित' हुवम् ॥४॥

हे सखि अपने हाथ में हथौड़ा लो और सामने एक शीशा रखो । जब उस शीशे में चन्द्रमा घुसे तब उसको रूख माओ, क्योंकि यह शत्रु है ।

इदमका च धृषुदेव धुष्यथा विरहजैव धृषुयेदि नेहृशम् ।

इदमामु विशन्ति कथञ्चिच्चः निवमराधुमुरासिदुमुदराः ॥५॥



नी धाँखों को प्रसन्न करो, अर्थात् खज्जन के समान सुन्दर
हरे नेत्रों को पेसी हो अच्छी चीज़ देखनी चाहिये ।

पुत्रस्य सावनिभुवः कुलराजधानी

काशी मवीक्षरणधर्मतरिः स्मरारेः ।

यामागता दुरितपूरितचेतसोऽपि

पाप' निरस्य चित्रं विरजीमयन्ति ॥१०॥

इतकी कुल - राजधानी काशी है, जो महादेव की संसार-
ने के लिए धर्मनौका है, जहाँ पापपूरित मनुष्य आकर
पाप-रहित होकर रजोगुण-रहित हो जाता है ।

भाळोव्य भाषिषिषिकृ'कलोकसृष्टि-

कहानि रोदिति पुरा रूपयैव रुदः ।

नामेष्टयेति विषमागमधत्त यत्तां

संसारतारणतीममृज्जपुरीं सः ॥१८॥

पहले के समय महादेव ने प्रक्षा की लोकसृष्टि में होनेवाले
खों का विचार करके रोदन किया था—रुद्र नाम प्राप्ति की
छा से उन्होंने रोदन किया था, यह केवल यद्नाम है, क्योंकि
नेहने संसार से तारण करने वाली नौकारूपी पुरी उन्होंने
नायी ।

वा राणसी निविशते न वसु'धरायां

तस्य स्थितिर्मत्तमुज्जं मुचने निवासः ।

तत्तीर्थमुक्तवपुःशमत पृथ मुक्तिः

स्वर्गात्परं पदमुदेतु मुदे तु कीदृक् ॥१९॥

काशी में रहनेवालों का निवास पृथिवी में नहीं, किन्तु
देवताओं के लोक में उनका वास है; अतएव यहाँ शरीर
छाड़नेवालों की मुक्ति होती है, यदि स्वर्ग से बढ़कर पद
मिलता है, तो इससे बढ़कर प्रसन्नता की बात क्या होगी ।

सायुज्यमृच्छति मयस्य मवादिधयाद्-

मां पश्युरेत्य नगरीं नगरात्रपुष्पाः

भूताभिधानपदमघतनीमवाप्य

भोमोद्धवे भवति मावमिवाक्षधनुः ॥२०॥

हे भूमि, संसार समुद्र का जन्तु पारंगती के पनि महादेव की नगरी में आकर उनमें मिल जाना है, क्योंकि यह तारक ब्रह्म का उपदेश देती है, जिस प्रकार भूतकाल कहनेवालों विभक्ति में अष्ट धातु का रूप भव हो जाता है ।

निर्विंश्व निर्विंशति काशनिवासिमोगा-

चिमोयं नमं च मिपो मियुनं मयेच्छम ।

गौरीगिरीशपदनाधिक्रमेकमाव

शमोमिंकषु कितमयति पञ्चतायाम् ॥२१॥

काशी में रहनेवाला दम्पती परस्पर इच्छापूर्वक भोगों को भोगकर और प्येच्छ क्रीड़ा करके देहान्त के समय गौरी और महादेव के एकीभाव से भी अधिक कल्याण परम्परा से युक्त अभेद भाव का अनुभव करता है ।

न भद्रदधासि यदि तन्मम मौनमसु

कम्पा निज्राप्तमयैव तवानुभूत्या ।

न ख्यात्कनीयसितरा यदि माम काश्या

रात्रन्वती मुदिमण्डनधन्वना भूः ॥२२॥

यदि तुम मेरी बातों पर विश्वास नहीं करती हो तो मैं क्षुप हो जाती हूँ, तुम्हारा अपना अनुभव ही तुम्हें कहे, ईश्वर के द्वारा पालित होनेवाली अमरग्वती काशी से छोटी है कि नहीं ।

ज्ञानाधिकामि सुकृतान्प्रविक्षाणि कुर्याः
कार्यं किमन्यकथनैरपि यम मृत्योः
एकजनाय सतनाभयदानमन्य-
द्वये बह्व्यमृतमभयवारितारिणि ॥ २३ ॥

तुम जानी हो, तुम्हारा ज्ञान अधिक है, तुम काशो में
एक कर्मों को करो । अधिक क्या कहा जाय जहाँ मृत्यु से
दा मनुष्यों के लिए भयदानरूपी मोक्षसत्र (दानशाला)
लता है, और दूसरा जहाँ से मर्त्यों विमुक्त होकर नहीं
देने वैसे भयान जल को गङ्गा पहनी है ।

सुवन्धु ।

वासवदत्ता नाम की एक आख्यायिका इन्होंने गद्य में
रखी है । संस्कृत में गद्यकाव्य लिखनेवाले कवियों का बड़ा
समाय है । वे ही तीन गद्यकाव्य लेखक संस्कृत में पाये
जाते हैं, उन्हींमें एक सुवन्धु भी हैं । सुवन्धु बाणभट्ट से पहले
कवि हैं । भाष्य होना है इस कवि के साहस पर, क्योंकि
एवम्भु जिस समय थे, उस समय गद्यलेखकों का बिलकुल
भाव ही था । उस समय संस्कृत काव्य बनाये जाते थे,
ए पद्य में, गद्य में नहीं । ऐसे समय में गद्य लिखना
पर्य ही नादम की धार है । महाकवि सुवन्धु सरस्वती
बड़े भक्त थे । इनकी समझ थी कि मेरी कविताशक्ति
सरस्वती के प्रसाद से उत्पन्न हुई है । यह ध्यान इन्होंने रच्य
परी वासवदत्ता की प्रस्तावना में लिखा है—

वासनातीक्ष्णान्तरमाद्यन्ते सुगन्धुः सुजनैश्चरन्तुः ।

प्रत्यक्षान्तरमेवमप्यव्यभिचारात्मनैश्चरन्ति विचिन्ति चरन्ति ॥

सुजनो के मित्र सुगन्धु ने मरम्यती के दिये हुए परम
हो एक नियन्ध बनाया जिसका प्रत्येक मन्त्र श्लेषमय
राघमुच सुगन्धु ने भगने नियन्ध के लिए जैसा लिखा है
यैसाही है । इनके विषय में याज्ञभट्ट ने भगने हर्षवर्ति
नामक गद्यकाव्य में लिखा है -

कपीनानगनददोर्न वृत्त वायवदत्ता,

शङ्खेषु शङ्खुगुणानां गतया कण्ठगोचरम् ॥१॥

वासवदत्ता से भवश्य ही कवियों का भविमान नष्ट हो
गया, जिस प्रकार शक्ति के कर्ण के अधीन होने पर पाण्डवों
का गर्व नष्ट हो गया था । सुगन्धु ने अपनी वासवदत्ता में
बौद्धसंगति नामक ग्रन्थ का उल्लेख किया है, इस ग्रन्थ के
कर्ता धर्मकीर्ति नामक एक बौद्ध पण्डित थे । ये धर्मकीर्ति
५५० ई० के लगभग हुए थे, इससे इनका समय भी पाँच
सदीका प्रारम्भ भाग मानना चाहिए । पर इस विषय में
भेद है, कुछ लोगों का कहना है कि वासवदत्ता की
पुस्तक में "वररुचिभागिनेय महाकवि सुगन्धु विरचिता
लिखा है । इससे यह सिद्ध होता है कि ये कवि वररुचि
भांजे थे । ये वररुचि विक्रमादित्य के समकालीन थे । वास
वदत्ता में विक्रमादित्य का उल्लेख भी मिलता है । इनके
कुछ श्लोक सुनिये ।

“भवति सुमगन्धमधिकं विस्तारितपरगुणस्य सुजनस्य ।

“भवति विकामितकुमुदो द्विगुणरुचिं हिमकरोद्योतः ॥१॥

जो दूसरों के गुणों को फैलाते हैं, जो खुलकर परगुण
कीर्तन करते हैं, वे सुजन हैं, उनकी रमणीयता और भी

धेरु होता है, इस कारण—दूसरों के गुण वर्णन करने के कारण अपनी छोटाई होगी इस प्रकार की शङ्का निर्मूल है।
द्रुमा को किरणें फमलों (कुमर) को विकसित करती
रमसे उनकी शोभा और बढ़ती ही है ।

गुणिनामवि निरुपप्रतिपत्तिः परम एव संभवति ।
स्वमदिमदर्शनमद्योषु कुरतले आवते यस्मात् ॥२४॥

गुणियों को भी भवने रूप का ज्ञान दूसरों के द्वारा होता है। ये स्वयं भवने गुणा को नहीं जान सकते, नेत्र भवने गौरव का अनुभव तब तक नहीं कर सकते, जब तक उनके सामने दर्पण न रखा जाय ।

विषयतोऽप्यतिविषयः स्रज इति न सृषा वदन्ति विद्वान् ।
पश्यं नकुलद्वेषो सकुलद्वेषो सदा विद्युनः ॥२५॥

विद्वानों का यह कहना झूठ नहीं है कि सब सर से भी इकर भवानरु हैं। क्योंकि सर नकुल द्वेषो है (कुलसे नय करनेवाला, भयया नेवले से द्वेष करनेवाला है) पर सुगल-र कुल द्वेषो है। यह भवने कुल का ही नाश करता है ।

अतिमल्लिने कर्षणे भवति सज्जानामतीव विपुला धीः ।
तिमिरे हि कौशिकानां कर्ष प्रतिपद्यते इतिः ॥२६॥

मौखकर्म करने में रातों की बुद्धि यही ही तेज हुआ करती है। देखिए न उल्लुओं की आँखें मँचेरे में ही रूप खा करती हैं ।

विष्णुभरणुजानां भवति स्वयानामतीव मलिनम्बम् ।
मल्लिरित्यतिशयमपि मल्लिकमुच्यते मलिनमागच्छतिः ॥२७॥

यह बड़े ही मन्त्रिन् होंगे हैं, ये दूसरों के गुणों पर कान्तिम पोता करने हैं। मेरा चन्द्रमा को भरने पेट में छिपानिपा करता है, पर इसमें उसको कान्तिमा घटती नहीं किन्तु बढ़ती ही है।

इत्य इत् भूमिमन्त्रिन् भवपति यथा यथा भवः सुवनम् ।

इदंशमिष तं कुम्भं तथा तथा निर्मयव्यायम् ॥१॥

दुर्जन मनुष्य मन्त्रियों को घटनाम करने का—उन्हें नीचा दिग्राने का ज्यों ज्यों प्रयत्न करता है त्यों त्यों ये अधिक उज्ज्वल होने जाते हैं, जिस प्रकार दर्पण पर राम लिरदा हुआ हाथ ज्यों ज्यों फेरा जाय, त्यों त्यों वह अधिक उज्ज्वल हो जाता है।

सुराणां पातामी त पुनरतिपुण्यैकरमिको,

प्रहस्तस्याम्याने गुरुचिन्माते म निरतः

करस्तस्याम्यन्तं स्पृशनिगतकोटिप्रणयितां

स सर्वस्य दाता नृणामिष सुरेभं विप्रपते ॥२॥

यह देवताओं की रक्षा करता है, यह नितान्त पुण्य का प्रेमी है, उसकी सभा में बृहस्पति हैं, वह सदा उचित मार्ग में निरत है, उसके हाथ करोड़ों से प्रेम करनेवाले हैं, वह अपना सर्वस्वदान करता है। इस प्रकार वह इन्द्र को भी जीत लेता है।

सोमदेव भट्ट

इन्होंने "कथासरित्सागर" नाम की एक पुस्तक लिखी है। यह कथासरित्सागर गुणाद्य को बृहत्कथा के आधार

पर लिखा गया है । गुणान्वय की वृद्धकथा वैशाखी भाषा में लिखी गयी थी और वह सान लक्ष श्लोकों में समाप्त थी । उसका पढ़ना और समझना कठिन था । इसलिये सोमदेव ने संस्कृत भाषा में कथासरित्सागर बनाया । अनुष्टुप छन्द में यह ग्रन्थ लिखा गया है, बड़ा है, यह कथा-ग्रन्थ है, काव्य के लक्षण इसमें नहीं मिलते । अतएव संस्कृत के कवियों की श्रेणी में इनका कोई ऊँचा स्थान नहीं है ।

ये कश्मीर के निवासी थे और कश्मीर के राजा अनन्त देव के दरबार में रहते थे, अनन्तदेव की रानी का नाम सूर्य-वती था और सूर्यवती की प्रसन्नता के लिए ही उन्होंने कथा-सरित्सागर का निर्माण किया है । राजतरङ्गिणी से मालूम होता है कि १५५ शक के पश्चात् अनन्तदेव कश्मीर का राजा हुआ अतएव सोमदेव का भी यही समय मानना सुकियुक्त प्रतीत होता है । इनके कुछ श्लोक नीचे उद्धृत किये जाते हैं ।

उभुक्तमानककहा रम्यं दयितान्विता

हतीव मधुगलया कीकिला जगदुज्ज्वला ।

‘मात्र कलह का छोड़कर प्रिय के साथ रमण करो, यही बात कीकिल मधुर शब्दों में लोगों से कह रही है ।

विशुरप्यर्कति चन्दनमनलति मिश्राप्यपि रिपवन्ति ।

विधुरे वेधसि क्षिप्त्वे चेत्तसि विपरीतानि भवन्ति ॥

भाम्य के विपरीत होने पर, हृदय के खिन्न होने पर चन्द्रमा सूर्य के समान हो जाता है, चन्दन अग्नि के समान हो जाता है और मित्र शत्रु के समान हो जाते हैं ।

पूरा नदीनी शुष्पाणि वृक्षमक्षि शशिनः कलाः

क्षीणानि पुनरायान्ति यौवनानि न देहिनाम् ।

नहीं को धारा पुनः भागों है, मृत्तों में फूल भी उठते हैं, मृत्तमा की पत्ता शांति होकर पुनः बढ़ती है, पशरीर धारियों को मर्त्य जगती नहीं लौटती ।

वचमं बीजमुपैवेन पुरा निमिर्न, म तद् मुह्यते ।

पुनरुत्पत्तिरपि भावो विधिनानि न कर्तुं शक्यमात्रः ।

पूर्व जन्म में मिगने जैसा कर्म किया है मरने पर उसको उसका फल भोगना पड़ता है, पूर्व जन्म के कर्मों के फल भी उलट नहीं सकते ।

अतो वक्रकंशा स्वप्नाः दिस्तेत्रं नुभिरावृता

पुराराधाम विममा ईधराः पर्वता इव ।

धनी पर्वत के समान होने हैं, दोनों ही बड़े कठिन और स्थिर (अचल) होने हैं, दोनों ही दिक्ष प्राणियों (कूर मनुष्य या पशु) से युक्त होने हैं और इनकी आराधना भी वही कठिन होती है ।

भागवत्सूचितो येन येनानीनो गृहं प्रति

प्रथमं सति कः पूज्यः किं काकः किं मेलकः ।

हे सखि, घतलाओ, पहले किसकी पूजा की जाय, कौर की या ऊँट की, क्योंकि कौए ने पहले घोलकर पति के भाव को सूचना दी है, और ऊँट उन्हें ले आया है। अब सूचना देनेवाले की पूजा की जाय या घर पर ले आनेवाले की ।

हर्षदेव

ये राजा थे और कवि थे । नागानन्द, प्रियदर्शिका और रत्नावली ये ग्रन्थ इनके बनाये हुए हैं । बाण मयूर और

मातङ्ग दियाकर इनके समा—पण्डित ये यह बात रात्ररोखर के नीचे लिखे श्लोक से प्रमाणित होती है ।

भरो प्रभातो वाग्देव्या कमानकुदिवारः

धीहर्षस्याभवन्मन्यः समो वाणमयूरयोः ॥

वाग्देवी का प्रभाव विचित्र है, मातङ्ग (चाण्डाल) दियाकर धीहर्ष की समा का सभ्य हुआ सो भी वाण और मयूर की पराधरो का ।

राज्ञा धीहर्षदेव के विषय में कहा जाता है कि ये स्वयं कवि नहीं थे, किन्तु अन्य कवियों से ग्रन्थ घनघाकर इन्होंने अपने नाम से प्रकाशित किया है । इसके प्रमाण के विषय में एक श्लोक उद्धृत किया जाता है ।

हेतोभारशानानि वा मरमुषी वृन्दानि वा रम्भितान्,

धीहर्षेण नमस्वितानि मुनिने वागाव कुत्ताव तनू

वा वागेन तु तनू मुनिनिष्ठरेहद्विज्ञाः कीर्तय-

स्ताः कल्पयन्त्येऽपि वाणि न मनात् मन्ये परिष्कानताम् ।

अर्थात् राजा धीहर्ष ने जो वाण की संज्ञा के सी भार दिये अथवा मतवाले हाथियों का दल दिया वह भात कहाँ है, पर वाण ने सुन्दर उक्तियों से धीहर्ष का कीर्तिमान किया है वह तो प्रलय तक भी स्थान नहीं होगा ।

एक और श्लोक है जो इन बात के प्रमाण में उपस्थित किया जाता है, वह श्लोक यह है ।

हास्योत्पन्नप्रकाशविरुद्धाधीराजिनी जालिनः

क्यादि कायदि कानिद्वयवचनो भीमाः शक्यराजिना

ओहर्षे विनयार गच्छन्त्ये कश्चात् वायोदतम्,

तद्वत् तद्विषयार्थमनन्द च मति ओहर्षवर्षेऽप्यहोत् ।

इस श्लोक में भी गणपति याण को श्रीहर्ष के द्वारा कविता का कल प्राप्त होने का उल्लेख है। इन श्लोकों के आधार पर धीहर्ष पर यह भविष्यम् लगाया जाता है कि उन्होंने कवियों द्वारा प्रग्य बनवाकर उनका प्रचार करने का न किया, पर जिन प्रमाणों के आधार पर यह निश्चित लगाया जाता है, वे प्रमाण इनके पुष्ट नहीं हैं, जिनमें इस प्रतिपाद की पुष्टि हो। ऊपर लिखे श्लोकों में केवल यही बात लिखी गई है कि याणभट्ट का राजा धीहर्षदेव ने अपने कीर्तिमान के उपलक्ष में पारिमोषिक दिये बात ठीक है। यह भट्ट ने धीहर्षचरित नामक गद्य काव्य बनाया है जिसे धीहर्ष का गुणमान है और उसीके उपलक्ष में उनको पारिमोषिक भी मिला।

डा० श्युलर ने राजा धीहर्षदेव को याण और मयूर का भाद्रपदाता लिखा है। इनकी रत्नावली नाटिका का एक श्लोक—

शुद्धामोक्तलिङ्गं विद्यादुरक्षं प्रारब्धवृत्तमां क्षणा-
दापासं श्वसमोदुगमैरविरलैस्तत्त्वतोमान्मनः
अघोषानलतामिसां समदनां नारीमिवान्यां प्रुवम्
पश्यन् कोपविन्दुरष्टुति मुञ्च तस्याः करिष्याम्यहम् ।

भानन्दवर्धन ने अपने ध्यन्यालोक नामक ग्रन्थ में उद्धृत किया है। इससे ये भानन्दवर्धन से पहले के सिद्ध होते हैं। ६०८ से ६५० के बीच इनका राज्यकाल है। हुएन-संग और यूरोपियन मिशनरी इनसे मिलने आये थे। दक्षिण-प्रान्त की इन्होंने यात्रा की थी और द्वितीय पुलकेशी को जीता था।

कुल लोग कहते हैं कि धायक नाम के कवि से इन्होंने रत्नाचली आदि ग्रन्थ बनवाये थे । पर यह कहना नितास्त भ्रशुद्ध है, क्योंकि धायक कालिदास से भी प्राचीन हैं । कालिदास ने अपने मालाविकाग्निमित्र नाटक में धायक कवि का नाम लिया है । ऐसी दशा में धायक का श्रीहर्ष के लिए ग्रन्थ बनाना कैसे सम्भव हो सकता है ?

भराटमलोलमज्जितं न्यायिनमनुरागिणं विशेषज्ञम् ।

यदि भाभयति नरं श्रीः श्रीदेवहि वञ्चिता तम ॥१॥

जो शट नहीं, चञ्चल नहीं, कुटिल नहीं, जो दाता है, अनुरागी है और विशेषज्ञ है, उस मनुष्य का यदि लक्ष्मी भाभय न करे, तो समझना चाहिए कि यह लक्ष्मी का ही दुर्भाग्य है ।

विद्यापाशूव'पूणे'न्दु यस्यामुलमभूद्भुवम् ।

पाता निवासनाम्नोऽविनिमीलनदुःस्थितः ॥२॥

प्रज्ञा इस नायिका का मुख अपूर्ण पूर्णचन्द्र के समान बनाकर यही दुःखी हुआ, क्योंकि उसे भय था कि कहीं यह कमल जिस पर मैं बैठा हूँ चन्द न हो जाय । चन्द्रमा के उदय से कमलों का चन्द होना ससार में प्रसिद्ध है ।

प्रसीदेतिव यामिदमसति कोपे न धत्ते

कल्पिष्याम्येवं नो पुनरपि भवेद्दुःखपणमः ।

न मे दोषोऽस्तीति न्यामिदमपि हि शास्त्रात् पुनः

किमेतस्मिन्वन्दुं समर्पितं न चेदि प्रियतमे ॥३॥

भामिनी नायिका के प्रति फाई यह रहा है—यदि मैं कहूँ कि तुम पुरा हो जाओ तो यह अनुचित है क्योंकि तुमने तो कोप नहीं किया है । बिना कोप के क्या कहना अच्छा नहीं ।

विरहिणी स्त्रियों ने धरने कटाक्षरूपी अंगारों से चन्द्रमा को जलाया है और उसो प्रज का यह चिन्ह है ।

अमुन्मै चौराव प्रतिनिवतमृन्मुप्रतिमिये

प्रमुः प्रीतः प्रादादुररितपपाददृषकृते ।

गुणगानो कोटीदंशदशनकोशितगिरी

भरीगहनज्यही मदगुहिनगुञ्जन् मधुलिहः ॥३॥

इस चोर को— जिसके लिए मृन्मृण्ड नियम था—श्लोक के दो शरण बनाने के कारण प्रथम हाँकर महाराज ने इस कोटि गुण, भाठ हाथी दिये । (ये श्लोक भोज प्रथम में भोजदेव और चोर के कथोरकथन में उद्धृत है, पर सुमा-दिनावली में धोद्वंद्व और चोर के नाम से लिखे गये हैं) ।

मुग्धे चानुत्पन्ना वेपथुर्वा नर दृश्यते ।

वया निष्पन्नि वेगानि गुमेदेव न सायकैः ॥४॥

मुग्धे, चतुष चलाने की मुग्धारी यह निपुणता अपूर्व है । जिसके गुणों (होरी, या उत्तम गुण) से दो चित्त विध जाता है, सायकों से नहीं ।

मुग्धे न वाचमे दानुमदन् कोरमिहनि ।

अस्माननु धौवमिह वपनेनहसिपनि ॥५॥

मुग्धे, मुम देना नहीं चाहती, और बिना दिये प्राप्त नहीं लेता । यह धौवन भी अशुल है, यह बने होगा ।

विरिणमि किदमेनु अवती निगतानि किम् ।

विंलगनहन्वादि न जाने कवादि किन् ॥६॥

वया मुग्धारे धर्मों में मैं प्रविष्ट होजाऊँ या मुमको निगल जाऊँ ! बहुत दिनों पर मुम मिली दो, मान्य नहीं पड़ता कि मैं क्या करूँ ।

कौमुदी-कुञ्ज

(वक्रोक्ति)

कौमुदी श्रुती मृगय मित्रं नीलकण्ठः त्रिषेदं
केदामेकी वद पशुपतिर्नय दूरये विपत्ते ।
गुप्ते श्वाणुः न चरति कथं जीवितेराः शिवाया
गण्डादभ्यामिति हतवचाः वायु बभ्रवद्वृक्षः ॥१॥

शिव भीरु पार्यंती की उक्ति प्रत्युक्ति । शिव जी की पार्यंती का प्रपरीत अर्थ समझ कर पार्यंती जी उनको उत्तर देती है । पार्यंती ने पूछा, तुम कौन हो ? शिव ने कहा, मैं शूली हूँ (शूल धारण करनेवाला) । पार्यंती ने शूलरोगवाला अर्थ समझ कर के कहा, फिर घेघ का हूँ दिष्ट । शिव ने कहा, त्रिषे मैं नीलकण्ठ हूँ । पार्यंती ने नीलकण्ठ का मयूर अर्थ समझकर कहा, एक बेका (मोर की घोंली) घोलिय । शिव ने कहा, मैं पशुपति हूँ, पार्यंती ने पशुपति का घेह अर्थ समझकर कहा, हाँग तो दिखायी नहीं पड़ती । शिव ने कहा मैं श्वाणु हूँ । पार्यंती ने श्वाणु का अर्थ पिना डालगान का कुश समझकर कहा, वह खालन कथं भुञ्जते । शिव ने कहा मैं शिरा (पार्यंती) का पति हूँ । पार्यंती ने शिरा का निवारित अर्थ समझकर कहा, फिर अंगल में आएँ । इस उत्तर में शिव जी मुग्ध हो गये । देखें शिव भाषकी रत्ना करे ।

उदयगिरिमूर्धगोर्ध्वं त्वद्ददनापहतकान्तितवंशः ।

पृष्ठकनुमिवोर्ध्वकरः स्थितः पुरस्ताद्विशानायः ॥

तुम्हारे मुखमण्डल से कान्ति चुरा कर या
उदय गिरि के मस्तक पर बैठा है और आगे से फूल
के लिए ही मानो इसने अपने कर (किरणें या हाथ
किये हैं ।

प्रययविनादां दृष्टिं वक्ष्ये वदति न शङ्किता

घटयति घनघण्टाश्लेषं न साग्रपयोधरा ।

वदति बहुशो गण्डामीति प्रयययताप्यहो ।

रमयन्तिरां संकेतस्था तथापि हि कामिनी ॥१२॥

शङ्किता होने के कारण प्रेमपूर्वक सामने नहीं
और न दृढ़ आलिङ्गन ही करती है, प्रयय पूर्वक ि
जाने पर भी धारधार "जाती हूँ, जाती हूँ" कहा व
फिर भी सङ्केत स्थान में आयी हुई कामिनी प्रस
उत्पन्न करती है ।

दृष्ट्वा दृष्टिमधोददाति कुलं नाशायमाभाविता ।

शम्भायां परितुल्यतिष्ठति बलादालिङ्गिता येन ॥

निर्वाण्तीषु मन्वीषु वासमरनामिगंभुमेवेहने ।

जाता वामतवेव मेऽथ सुतरां प्रीत्यै नधोदा वयः ॥१३॥

देखने पर आँखें नीची कर लेती है, घाने कर
खोलती नहीं, शयन में करघट पदल कर सोमों है, बल
आलिङ्गन करने पर कांपने लगती है, जब उसकी ल
घर से बाहर जाने लगती हैं, तो वह भी उनके साथ
जाना चाहती है, इस प्रकार नयी दधु अपनी प्रतिबुद्ध
ही मेरी प्रसन्नता बढ़ा रही है ।

कौमुदी-कुञ्ज

(चक्रोक्ति)

इत्येवं शूली मृगस्य भिषज्जं नीलकण्ठः प्रियेह
केकामेकी बद्ध पशुपतिर्वैव दूरये दिग्गजे ।
मृगये म्याशुः स परति कथं जीवितेशः सिवाया
गच्छात्तन्मामिति हनयकाः पानु वल्लभ्यशूः ॥१॥

शिव और पार्यंती की उक्ति प्रत्युक्ति । शिव जी की बातों का प्यारीत भर्ष समझ कर पार्यंती जी उनकी उत्तर देती हैं । पार्यंती ने पूछा, तुम कौन हो ! शिव ने कहा, मैं शूली हूँ (शूल धारण करनेवाला) । पार्यंती ने शूलरोगवाला भर्ष समझ कर ये कहा, फिर घेद को हूँदिए । शिव ने कहा, प्रिये मैं नीलकण्ठ हूँ । पार्यंती ने नीलकण्ठ का मयूर भर्ष समझकर कहा, एक घेका (मीर की घोंगी) बोलिए । शिव ने कहा, मैं पशुपति हूँ, पार्यंती ने पशुपति का घेद भर्ष समझकर कहा, मीर तो दिग्गजी नहीं पड़ती । शिव ने कहा मैं म्याशु हूँ । पार्यंती ने म्याशु का भर्ष दिग्ग जीवायान का घेद समझकर कहा, वह खल्लन कथं नु लगा । शिव ने कहा मैं शिवा (पार्यंती) का पति हूँ । पार्यंती ने शिवा का निवारित भर्ष समझकर कहा, फिर जंगल में जाइए । इस उत्तर से शिव जी चुप हो गये । देखें शिव भावकी रसता करें ।

घात है यदि तुम ईश्वर हो तो नरो क्यों रहते हो और धूलि में सने हुए क्यों रहते हो !

पण्डितवादस्तत्र यदि लोकेदं श्यम्बको विदित एवः ।

भम्बा ह्येकापि न ते प्रवक्ष्यति त्वं कुतश्चिज्जः ॥५॥

यदि तुम पण्डितों के समान बोलती हो, प्रकृति प्रत्यय के विभाग से अर्थ करती हो, तो समझ लो मैं श्यम्बक हूँ । पार्यती ने समझा कि श्यम्बक का अर्थ है तीन श्यम्बक (माता) वाला, और यही समझकर उन्होंने कहा, क्या बकते हो, तुम्हारी तो एक भी माँ नहीं है, और तुम कहते हो तीन, यह कैसी बात !

किं मे दुरोदरेण प्रयानु यदि गणपतिर्न वेभिमतः ।

का प्रवेष्टि विनायकमदिलोकः किं न जानासि ॥६॥

शिव ने कहा, मुझे दुरोदर (जूया) से कोई मतलब नहीं । पार्यती ने दुरोदर का अर्थ समझा, घुरे पेटवाला अर्थात् गणेश और यही समझकर उन्होंने कहा, गणपति पसन्द न हो, तो यह यहाँ से बहटा आय । शिव ने कहा, अजी, विनायक (गणेश) से कौन द्वेष करता है ? पार्यती ने विनायक का अर्थ समझा गरड़ और उन्होंने कहा, गरड़ से द्वेष करनेवाले सर्प हैं, क्या यह भी मालूम नहीं है ?

चन्द्रमदमेन विना नास्ति रमे किं प्रयतयस्वेषम् ।

देव्यै यदि स्वचित्रमिदं नन्दिद्यादृषतां राहुः ॥७॥

शिव और पार्यती जूया खेल रहे थे । शिवने चन्द्रमा को पाली पर रखा, पार्यती जीत गयी । शिवने कहा, फिर खेलो । तब पार्यती ने कहा, विना चन्द्रमा को लिए मैं न खेलूंगी,

बोद्धारो मत्सरप्रस्ता विमथः स्मपदुषिताः ।

भयोघोषदत्ताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम् ॥२४॥

समझदार मनुष्य मत्सर से मरे जाते हैं, वे दूसरे को प्रशंसा सुन नहीं सकते और धनो दर्प से चूर हो रहे हैं, भय्य मनुष्य भयानी हैं, उनको समझ नहीं है, ऐसी दशा में सुभाषित सूक्तियों को शरीर में ही पच जाना चाहिये, इनके उपयोग का कोई स्थान नहीं है ।

पटूनि नरशोषाणि लोमशानि दूरन्ति च ।

प्रीक्षामु प्रतिबद्धानि किञ्चिदेषु मकरपङ्कजम् ॥२५॥

बड़े बड़े और घालघाले भनेक मस्तक लोगों के गले से जड़े हुए हैं । पर उनमें धाड़ हो ऐसे हैं जिनमें शक-पकता हो ।

ते दग्धास्ते महान्मानस्तेषां लोकं स्थिरं यशः ।

प्रीतिवद्धानि बाष्पानि ये वा कायेषु कीर्तिताः ॥२६॥

ये दग्धीय हैं, ये महान्मा हैं और संसार में उम्ह्रीका यश स्थिर है, एक तो ये जिन लोगों ने काव्य बनाये हैं और दूसरे ये जिनका वर्णन काव्यों में किया गया है ।

.पापवति सप्रमदस्मै रमयिष्यति न भवेद्य निदीया ।

कथादितपावि कविस्ताम्रानि कथया दुहितेव ॥२७॥

ममज्ञनों के हाथ में जायगी, उनको प्रसन्न करेगी, और निदीय साधिन होंगी, इसी प्रकार की चिन्ताओं से कविता करनेवाला कवि कन्या के पिता के समान सदा घुला करता है ।

दुर्मेनदुनासातस्तं बाष्पमुक्त्वा विमुञ्चिमुपधाति ।

. एशोवितर्क्य लक्ष्मणभक्त्यतिमनसः प्रवर्त्तनेन ॥२८॥

शब्दों से प्रकट होनेवाला अभिप्राय—जो केवल केवल पदों में स्फुरित होता है उस अभिप्राय को शरीर के रोमांच के द्वारा जो कहते हैं पर शब्द के द्वारा नहीं, मुँह से एक शब्द तक नहीं निकालते ऐसी को केवल हाथ ही जोड़ना चाहिए ।

चेतः प्रणादजननं विबुधोत्तमाना—
मानन्दि सर्वरसयुक्तमतिप्रसन्नम् ।
काव्यं व्यक्तस्य न करोति हृदि प्रतिष्ठां
पीयूषपात्रमिव वक्रविवर्ति राहोः ॥१०७॥

सब रसों से युक्त और प्रसादगुणपूर्ण काव्य उत्तम विद्वानों को प्रसन्न करता है तथा आनन्दित करता है । पर दुर्जनों के हृदय में उस काव्य का स्थान नहीं मिलता, जिस प्रकार समुद्र राहु के मुँह हो तक जाता है और मुँह ही में घूमा करता है । शरीर नहीं इसलिए और जाम कहाँ ।

हे राजानसमस्त सुखविशेषमन्त्रे विरोधं
छुड़ा कीर्तिः स्फुरति भवतां गूढमेतत्प्रसादात् ।
तुष्टैर्बद्धं तदलघु रघुस्वामिनः सचरित्रं
दृष्टैर्नीलकिमुवनउषी हास्यमानं दशास्यः ॥११७॥

हे राजागण, कवियों की प्रेमपूर्ण कविता के प्रति आप लोग अपना विरोध छोड़ दें । आप लोगों की यह उज्ज्वल कीर्ति जो फैल रही है, वह कवियों ही की कृपा है । देखिए प्रसन्न होकर कवियों ने एक छोटे रसकुल के स्वामी का बड़ा भारी चरित्र निर्माण किया और क्रोध करके त्रिभुवन को जीतनेवाले रावण को तुच्छ बना दिया है ।

शब्दों से प्रकट होनेवाला अभिप्राय—जो केवल कोमल पदों में स्फुरित होता है उस अभिप्राय को शरीर के रोमांच के द्वारा जो कहते हैं पर शब्द के द्वारा नहीं, मुँह से एक शब्द तक नहीं निकालते वैसे को केवल हाथ ही जोड़ना चाहिए ।

चेतः प्रसादजननं विबुधोत्तमाना-
मानन्दि सर्वरसयुक्तमतिप्रसन्नम् ।
काव्यं खलस्य न करोति हृदि प्रतिष्ठां
पीपूषणमिषवक्रचिचर्ति राहोः ॥१०॥

सब रसों से युक्त और प्रसादगुणपूर्ण काव्य उत्तम विद्वानों को प्रसन्न करता है तथा आनन्दित करता है । पर बुजुर्गों के हृदय में उस काव्य का स्थान नहीं मिलता, जिस प्रकार अमृत राहु के मुँह हो तक जाता है और मुँह ही में धूमा करता है । शरीर नहीं इसलिये और जाय कहाँ ।

हे राजाजस्यस्त मुकविप्रेमबन्धे विरोधं
गुदा कीर्तिः स्फुरति भवता नूनमेतत्प्रसादात् ।
तुष्टैर्बद्धं तदलघु रघुस्वामिनः सचरित्रं
हृष्टैर्नीतश्चिमुवनजयी हास्यमार्गं दशस्यः ॥११॥

हे राजाजस्य, कवियों की प्रेमपूर्ण कविता के प्रति आप लोग अपना विरोध छोड़ दें । आप लोगों की यह उज्ज्वल कीर्ति जो फैल रही है, वह कवियों ही की रूपा है । देखिए प्रसन्न होकर कवियों ने एक छोटे रघुकुल के स्वामी का बड़ा भारी चरित्र निर्माण किया और क्रोध करके त्रिभुवन को जीतनेवाले रावण को तुच्छ बना दिया है ।

परसोऽन्तोऽकाननुदिवपमभ्यस्य ननु ये
 घटुपादौ कुपुंर्यहव इह ते सन्नि कवयः ।
 अविच्छिन्नोद्गच्छन्नलधिःपदरीतिमुद्धतः
 मुद्रया वैराग्यं दधति किल केषांचन गिरः ॥३२॥

दूसरों के कतिपय श्लोकों को कण्ठस्थ करके बार-बार
 के श्लोक घनानेवाले कवियों की कमी नहीं, योंसे कवि का
 बहुत है । निरन्तर निफलनेवालों समुद्र की लहरियाँ ।
 समान हृदय का घश करनेवालों और स्वच्छ वाणी किसे
 किसी को ही होती है ।

हेमा भारशतानि वा मद्मुखां धृन्दानि वा इन्तिनां
 श्रीहर्षेण समर्पितानि गुणिने याथाय कुत्रापि तत् ।
 या वाणेन तु तस्य सूक्तिविसरैरुद्धृताः कीर्तय-
 स्ताः कल्पप्रलयेऽपि यान्ति न मनाद्-मन्ये परिम्लानताम् ॥३॥

राजा श्रीहर्ष ने गुणी वाण कवि को सैंकड़ों तोले सुवर्ण,
 मतवाले हाथियों का समूह दिया था, पर ये सब भाज नहीं
 हैं, उनका पता नहीं । पर वाणभट्ट ने अपना वाणो के द्वारा
 उनकी कीर्तियाँ गुंफित की हैं ये तो प्रलय होने पर भी
 मलिन नहीं हो सकती । धनियों को अपने धन दान का गर्व
 नहीं करना चाहिए, क्योंकि उनका धन कुछ हो दिनों के तिर
 है और कवियों की कविता बिरथायी है ।

बभ्रुमिहमवेण रामनृपतिभ्यांसेन धर्मात्मजो
 भ्याक्यानः किल कान्दिदापकविना श्रीविक्रमादौ नृपः ।
 भोजक्षित्तपिल्लशत्रभृतिभिः कर्जोपि विचारनेः
 क्पाति यान्ति मरेधराः कविरैः स्फारैर्ध मेरीरैः ॥३॥

यादमीक कवि ने रामचन्द्र का वर्णन किया है, व्यासदेव ने युधिष्ठिर का वर्णन किया है, कालिदास कवि ने राजा विक्रमदेव का वर्णन किया है चित्तप और धिल्लूज आदि कवियों ने भोजदेव का वर्णन किया है, विद्यापति ने राजा कर्णदेव का वर्णन किया है । इस प्रकार राजाओं की प्रसिद्धि कवियों के द्वारा होती है, अगारा पोटने से नहीं ।

परिभ्रमज्जनमन्तरेण
मीनघातं विभ्रति पामिनोपि ।
वार्धवमाः तस्मिन् विना नतस्तं
पुंस्कोकिलाः पञ्चमधयवोपि ॥१५॥

परिभ्रम समझनेवाला मनुष्य यदि न मिले तो पका भी मीन घारण कर लेने हैं । देखिए पंचमराग गानेवाली कोयल भी जब तक यसमन नहीं आता तब तक चुप रहती हैं ।

सुभाषितेन मीतेन सुवनीतो च लीलया ।
मनो न भिद्यते वरप स योगी हृष्यता पशुः ॥१६॥

सुभाषित से, गान से, स्त्रियों के हावभाव से जिसका मन खंचल नहीं होता, वह योगी है या पशु ।

भिक्षं चापि सुभाषितेन स्मरे स्वीयः मयं सर्वदा
ब्रूयाद्वरप सुभाषितं तत्तु मनः श्रोतुं पुनर्वाञ्छति ।
अज्ञानज्ञानवतोऽयनेन दिवशीकृतं समर्थो मये-
नकतं स्पृष्टि सुभाषितस्य मनुजैरावश्यकः संशयः ॥१७॥

मन सुखी हो नौ भी यह सुभाषित से प्रसन्न हो जाता है । दूसरों का सुभाषित सुन पुनः मन सुनना चाहता है, मूर्ख और परिहृत दोनों इसके द्वारा परा किये जा सकते हैं ।

अयो गिरानपिहितः पिहितश्च कश्चि-
 त्सौभाग्यमेति मरुद्वन्युक्चामः ।
 नान्ध्रीपयोधर इवानितरां प्रकाशो
 नो गुजंरीस्तन इवानितरां निगूढः ॥१८॥

शब्दों का अर्थ कुछ छिपा और प्रकाशित होने पर
 राष्ट्र स्त्रियों के कुच के समान प्रशंसा पाता है । मान्य
 के स्तन के समान बिलकुल प्रकाशित रहना भी अच्छा
 और न गुजंरी स्त्रियों के समान निताम छिपा ही हुआ

मिश्र ।

हेमकार मुषिये नमोस्तु ते
 दुस्तोषु बहुशः परीक्षितम् ।
 कायनामरुदमरुतना नमः
 यत्तद्वैतदधिरोषते गुह्यम् ॥१॥

हे स्वर्णकार, सोने के भाभूषणों की परीक्षा करना कठिन
 था, इस कारण भागने उसे परस्पर के साथ तराजू पर रख
 दिया, भागको इस बुद्धिमानी के लिए भागको नमस्कार ।

मुक्ताकार भव्योविभानि
 वस्तूनि दिक्कुमिहागनानि ।
 अघाति नाघाति बहुत्र वज्रपा
 पञ्चदीपतिभू नमविद्वर्गः ॥२॥

हे सुवर्णकार, तुम जानों में पहनने के गहने लेकर यहाँ
 चेंचने आये हो। मालूम होता है कि तुमने आज तक यह
 बात नहीं सुनी है कि इस गाँव के ठाकुर के कान अभी तक
 नहीं छेदे गये हैं।

काकः स्वभावचपलः परिशुद्धवृत्ति-
 संस्था बलिं स्वजनमाहूयने परीधः ।
 चर्मास्थिमांसवति हन्तिस्त्रेवरं वि
 श्वा इति हन्ति च परान्कूपस्वभावः ॥१॥

कौआ स्वभावतः चञ्चल होता है पर उसका स्वभाव
 अच्छा होता है, यह जब थोड़ी सी बलि पाता है तब अपनी
 जातियाँ तथा दूसरों को बुलाकर उसमें शामिल कर लेता
 है। पर कुत्ता यदि हाथि का शरीर भी पाये, जिसमें चमड़ा
 हड्डियाँ भीर काफी मांस हो, तो भी यह अपने भाई बंधुओं
 को नहीं बुलाता, यदि वे धागाँव तो उनसे छेप करता है
 उन्हें मारता है। इसका कारण है स्वभाव की कृपणता।

गृहं शमशानं गजधर्मं चाम्बरं
 विलेपनं भस्म वृषश्च वाहनम् ।
 कुपेर दे विलपते न लज्जते
 विषस्य ते मन्त्रुरियं दृष्टिता ॥४॥

कुपेर, तुम्हें लज्जित होना चाहिए कि तुम्हारे मित्र शि
 जी ऐसी दृष्टिता भोग रहे हैं। शमशान को उन्होंने अपने
 घर बनाया है, हाथी के चमड़े का वे घर धारण करते हैं
 शरीर में भस्म छपेटते हैं और घट की सपायी करते हैं
 किन्ती दयनीय दृष्टिमा है और तुम धनपाति कहे जाते ॥॥

भावदकृत्रिमसटाजटिलां सभित्ति-
रातोप्यते मृगपतेः पदवीं यदि वा ।

मत्तेभकुम्भतटपाटनलम्पटस्य

नादं करिष्यति कथं हरिषाधिपस्य ॥५॥

यदि कुत्ते के गले पर घनाचटी सटा घनाकर लगा जाय और वह सिंह के आसन पर बैठा दिया जाय तो घाले हाथियों के मस्तक फाड़नेवाले सिंह के समान कैसे कर सकता है ?

किंतेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा

यस्याभयेण तरवन्तस्यस्त एव ।

मन्यामहे मलयमेव यदाभयेण

शाहोदनिम्बकुटजाम्बपि चन्दनानि ॥६॥

उन सुवर्ण और चांदी के पर्यंतों से क्या लाम, क्यों इनके आश्रय में रहनेवाले वृक्ष, वृक्ष ही बने रहते हैं, उनको कोई परिवर्तन नहीं होता । हम लोग तो चन्दन वृक्ष को सर्वश्रेष्ठ समझते हैं, जिसके आश्रय में रहनेवाले निम्ब कुज भादि वृक्ष भी चन्दन हो जाते हैं ।

शुद्धार

वा विम्बीवृक्षचिनं विदुममणिः स्वप्नं वि तो दूष्टवा-

भ्रामधीः गृहशरनयोभिरपि किं मुक्ताफलैः प्राप्यते ।

तत्कान्तिः शतशोपि वद्विषमनैर्हेमः कुतः मेवप्यति

म्यज्ज्वा रथमपीं प्रयासि दयितां कर्म धनापायवग ॥७॥

कोई धन के लिए विदेश जा रहा है, उससे कोई गूठन है कि किन्तु धन के लिए तुम विदेश जाने हो । शुद्धारो को के मोठों की कान्ति, स्वप्न में भी मूर्खों को नहीं मिल सकती

उसकी हँसो की शोभा तपस्या करने पर भी मुकाफल नहीं पा सकते, सोना चाहे हजारों बार आग में कूदे पर उसे वैसी शरीरकान्ति नहीं मिल सकती, फिर ऐसी रत्नमयी दयिता को घर में छोड़कर तुम किस धन के लिए जा रहे हो ।

विरहिणी का प्रलाप

भवापि हि नृशंसस्य पितुर्द्वे दिवसे गतः ।

तमसा विहितः पन्था एहि पुत्रक सेवहे ॥१७॥

विरहिणी पुत्र को संबोधन करके कहती है, भाज का भी दिन घोन गया और तुम्हारे निदुर पिता नहीं भाये, मार्ग भ्रमकार से छिप गये, भय क्या भायेंगे, आलें भी होंगे लां कहीं ठहर गये होंगे, बेटा, अब चलो हम लोग सेा रहे ।

पशुः किं कर्ममे मृद स्वयि दीनेऽश्रुवाहिनी ।

ये मा स्वकथा गनः नोऽप्य कथमेवमिति सत्कुरे ॥१८॥

भरी मूर्ख भाँल, तुम क्यों काँप रही है, जिस समय तुम दीन थी, भाँसू बरमा रही थी, उस समय जो मुझे छोड़कर चला गया, वह क्या भाज तुम्हारे करकने में चला भायेगा ।

स्वपमजात दुःखोषद्गुनीतीति न विस्मयः ।

न्य पुनः प्राप्तदाहो यद्वरसीति किमुप्यनाम् ॥१९॥

विरहिणी कामदेव को संबोधित करके कहती है—
जिसने कभी दुःख नहीं उठाया है, वह यदि दुःख दे तो इसमें कुछ भाध्य नहीं होता । पर कामदेव तुम्हारा शरीर तो जलाया आ चुका है, फिर मुझे क्यों जलाने दो ।

स्वचारजोऽनित्यं प्रपत्तिनादुषटे

कश्चित्पुनः स्वयमि पुनक निदुःखीति ।

वस्तुचैवमद्रुगनमर्भकमायतादया
पान्पस्त्रिया प्रसदितं करणं दिनान्ते ॥४॥

सन्ध्या का समय था, पनि विदेश था सामने ही धूलि
धाकर सं लिपटा हुआ उसका पुत्र था, उसने कहा, क्यों
बेटा तुम्हें अपने निष्ठुर पिता की याद आती है? गोदी में बैठे
बालक से इस प्रकार कहकर सन्ध्या के समय पथिक की
छी फूटकर रो पड़ी।

सखि न सुभगो मन्दस्नेहो ममेति न मे व्यथा
विधिर्विरचितं यस्मात्सर्वो जनः सुखमश्नुते ।
मम तु सततं सन्तापोऽनेने विमुक्तोऽपि य-
त्फलमपि हस्तोऽहं चेन्न न याति विरागताम् ॥५॥

सखि, मेरे प्रिय मुझ पर कम प्रेम करते हैं इसका मुझे
तनिक भी कष्ट नहीं है, क्योंकि सभी मनुष्य अपने भाग्य के
अनुसार सुख भोगा करने हैं, मुझे सबसे बड़ा कष्ट यदि कुछ
है तो यही कि वे तो मुझसे इतने विमुख रहते हैं, पर मेरा
निलज्ज मन उनकी ओर से तनिक भी विरक्त नहीं होता।

तैलकागलकान्कपोलपतितानुत्सिख्य कर्णांस्तु
वखाधेन विलम्बिता सारभसं प्रच्छाद्य पीनौ स्तनौ ।
बाला वायसमेऽमाह रुदतो दास्थामि यो प्रियं
भूतात्केमपादपं मय शनैर्वदेमि मे बहुमः ॥६॥

तेल से चुपड़े केशों को जो उसके गाल पर आ गये थे -
समेट कर कानों के पीछे उसने कर दिया, लटकते हुए आँचर
से अपने मोटे स्तनों को उसने शीघ्रता पूर्वक छिपा लिया, फिर
वह रोती हुई कीप से बोली, काक, तुमको जो प्रिय है यही
तुमको मैं दूँगी, यदि तुम आम के पेड़ से धीरे से पेड़ के

पेड़ पर चले जाओ और इस प्रकार मेरे पति के आने की मुझे सूचना दो ।

प्रस्थानं बल्यैः कृतं प्रियसौत्राण्यैराजन्तं गतं
एतथा न क्षणमासितं स्वयमिदं चित्तेन गन्तुं पुरः ।
गन्तुं निश्चितं चेन्नसि प्रियतमे सर्वेभ्यो प्रस्थिता
गन्तव्ये सति जीवितप्रियमुद्धत्सायैः किमु न्यज्यते ॥७॥

पति विदेश जा रहा है, नायिका अपने प्राणों से कह रही है, कंकणों ने प्रस्थान किया अर्थात् चिरद्वेदना के कारण हाथ पनले हो गये और इससे कंकण गिर पड़े, प्रिय मित्र भाँसू भी चले गये अर्थात् रोने रोने भाँगे सूख गयीं । प्रिय ने एक क्षण भी टरना उचित नहीं समझा, वह मन के साथ ही चला गया, इस प्रकार जब प्रिय ने प्रस्थान करना निश्चित किया, तब सभी ने साथ ही प्रस्थान किया, प्राण, तुमको भी तो जाना ही है, फिर इनका साथ क्यों छाड़ते हो ।

निधासाः वदनं ददन्ति हृदयं किमु न्यज्यते
किदा कैति न दूषयते प्रियमुत्थं नक्तं त्रिं नयते ।
भङ्गं शोणमुपैति पादपतितः प्रेक्षास्तरोपेक्षितः
सक्यः कं गुणमाकलय्य दयिते मानं वयं कारिनाः ॥ ८॥

साँस मुँह को उला रही है, हृदय मानों पक रहा है, भीद नहीं भाती, प्रिय का मुख भी कहीं दिखान्यो नहीं पड़ता, रात दिन रो रही है, शरीर सूख रहे हैं । उस समय प्रिय हमारे पैरों पर पड़ा था और हमने उपेक्षा की थी । सन्तियो, किम गुण के भरोसे तुम लोगों ने हमें प्रिय पर मान करने के लिए कहा है । प्रय तो यह भाता नहीं, हमारे यह दरा है, अथ उपाय ?

यावज्जी सखि गोचरं नयनयोतायाति सावदुर्दुतं
 गत्वा यद्दि यथाय ते दयितयां मानः समालम्बितः ।
 दृष्टे धूत विवेष्टिते तु दयिते तस्मिन्नवश्यं मम
 स्वेदाम्भः प्रतिरोधनिभंस्तनोः स्मेरं मुग्धं जायते ॥९॥

सखी ने नायिका से कहा था कि आज तुम अपने प्रिय के
 विषय में मान करो। उसी का उत्तर नायिका इस प्रकार देती
 है। जब तक वे (नायक) मेरी आंखों के सामने न आवें तभी
 तक जाकर तुम उनसे कहो कि तुम्हारी खो ने आज मान
 किया है, क्योंकि जब मैं उनको सामने देख लूंगी, जब वे
 तरह तरह के मजाक करने लगेंगे उस समय मेरा समस्त
 शरीर पसीना पसीना हो जायगा और हँसी भा जायगी।

इदानीं क्षीयामिर्द्वय इव भाभिः परिप्लुतो
 ममाश्रयं सूर्यः किमु सखि रज्ज्वामुदयते,
 भवं मुग्धे चन्द्रः, किमिति मयि तापं प्रकटय-
 त्वनाधानां बाले किमिव विपरीतं न भवति ॥१०॥

सखि, मुझे यड़ा आश्चर्य है कि अग्नि के समान तीली
 किरणों से युक्त यह सूर्य रात को उदित होने लगा है।
 सखी ने कहा, भरे भोली, यह सूर्य नहीं चन्द्रमा है। नायिका
 ने कहा, फिर यह मुझे तपाता क्यों है। सखी ने कहा घेरी,
 अनार्यों के लिए सभी विपरीत ही होता है।

यात्रामङ्गलमविधानरचनास्यमे मनीनां जने,
 वाप्याम्भःविहितेक्षणे गुह्यने तदनमुदम्भले ।
 प्राणेशस्य महीक्षलापितहृशः कृष्णद्वि कामनः ।
 किं श्रीवाहनया मया भुवकनापाशो न कष्टेऽपितः ॥११॥

जिस समय ससियाँ यात्रा के लिए मङ्गल वस्तुओं को एकत्र कर रही थीं, बड़े लोगों को आँखें आँसू से ढँक गयी थीं, मित्रों की भी वही दशा थी, प्राणेश भी पृथिवी की ओर देख रहे थे, उस समय अमाग्नित लज्जा के कारण मैंने क्यों नहीं अपनी लनारूपी भुजाओं को उनके गले में डाल दिया ।

दूतीप्रेषण ।

जीवार्माति वियोगिनी यदि लिखेदत्रैव वृत्ताः कथाः

अथ घोष मरिष्यतीति मरणे कालात्ययः किंकृतः ।

आगन्तव्यमिदं संप्रति सखे संभावना निष्फला

भ्रातः सम्प्रति यदि नास्ति लिखितं तद्वद्बुद्धि परीक्षमम् ॥१॥

नायिका अपने विदेशी पति को सम्देश भेज रही है, पर क्या कहना चाहिये यही उसकी समस्या में नहीं आता । मैं क्या कहूँ, यदि कहूँ कि मैं अभी तक जीती हूँ तो यह बात वियोगिनी के कहने योग्य नहीं, यदि वियोगिनी ऐसी बात कहे तो सम्झिए सब बात ही खतम हो चुकी । यदि यह कहूँ कि एक दो दिनों में मर आऊँगी, तो मुझसे पूछा जा सकता है कि मरने में इतना विलम्ब क्यों किया । यदि कहूँ कि माय यहाँ आये, तो यह बात झूठी ही होगी, इसकी तो संभावना भी नहीं है । फिर माई अब आप जायें, मैं क्या लिखूँ सो कुछ समझ में नहीं आता, जो आप उचित समझें वह कह दीजियेगा ।

अपूजितैवास्ति गितोन्द्रकन्या किं पक्षपातेन मनोभवस्य ।
यद्यस्ति दूती मरमोक्तिदशा दासः पतिः पादतले वधूनाम् ॥२॥

पार्वती की पूजा न भी की जाय तो कोई हानि नहीं,
कामदेय पर अनुराग करने की भी आवश्यकता नहीं है। यदि
दूती मधुर वचन बोलने में निपुण है तो पति स्त्रियों के चरणों
के पास दास के समान हो सकता है।

वृषागायाश्चैरन्मलमलीका मम स्त्रं ।
कदाचिद् धृतांऽसौ कविवचनमिष्याकलयति,
इदं पारश्वे तस्य ग्रहिणु परिलम्बाग्नवच-
नवद्वाप्योप्योद्भयगितलिपि तादृगुगतम् ॥३॥

स्तुति के श्लोक घना कर भेजने से क्या लाभ ? मेरे दुःख
की चर्चा से भी कोई लाभ नहीं, सम्भव है वह धूर्त इन सब
बातों को कचिकलना समझे। उसके पास ये ही वीरों
कर्णफूल भेज दो, जिस पर के अक्षर भजनयुक्त भाँसू से
भोगने के कारण मिट गये हैं।

वाप्यं तस्मै मदवरि भवद्भूरिविधं पवद्भी,
स्नेहेतिर्दं मम वपुरिदं कामहोता जुहोति ।
प्राणा तस्मै तदिहमुचितां दक्षिणां दातुमीहे,
सत्रादेशो भवतु भवतो वनस्पतेषामधीशः ॥४॥

सखि, उससे कहना कि आपकी वियोगरूपी अग्नि में
उसके शरीर का कामरूपीहोता दहन करता है, यह अग्नि
स्नेह के द्वारा खूब बढ़ायी गयी है। भय में उस दहन का
पाले को अपने प्राण दक्षिणा में देना चाहती है, एता
भाप माछा दें, क्योंकि आप इन सबके स्वामी हैं।

उल्लङ्घ्यापि सस्तीवचः समुचितंमुल्लङ्घ्य लज्जामलं
भिन्वामीतिभरं निरस्य च निन्नं सौभाग्यगर्वं मनाक् ।
भाशां केवलमेव मन्मथगुरोरादाय नूनंमया
नन्द निःशेषविलामिवमङ्गलनाशूद्यमणिः संभृतः ॥५॥

सखियों की बात न मानकर लज्जा का त्याग कर भय
छोड़कर अपने सौभाग्य के गर्व को भी हटाकर केवल काम-
देवगुरु की आज्ञा को ही मानकर मैंने तुमको सध विला-
सियों का चूड़ामणि पनाया है ।

दूति त्वं तरुणी युवा स चपलः श्यामास्तमोभिर्दिशः।
सन्देशः सरहस्य एव विपिने सङ्कृतकावासकः।
भूयो भूय इमे वसन्तमकरच्येतो दाम्पत्यगतौ
गण्ड श्रेमसमागमाय निपुणे रक्षन्तु ने देवताः ॥६॥

दूति, तुम युवती हो, जिसके पास जाती हो वह भी युवा
और चञ्चल है, दिशाएँ अन्धकार से छिप गयी हैं, सन्देश
भी शून्य है, घन में जाना है जो सङ्कृत-स्थान के समान है,
यह वसन्त की हवा धारधार चित्त को पींच लेती है, अच्छा
मङ्गल-समागम के लिए जाओ, तुम स्वयं चतुर हो, देवता
तुम्हारी रक्षा करें ।

न च मेऽवगच्छति यथा लघुतां
कह्यां यथा च कुस्तौ स मयि ।
निपुणं तर्धनमभिगम्य वदे-
रभिदूति काचिदिति सन्दिदिशो ॥७॥

किसी नायिका ने दूती से कहा, जिससे मेरी लघुता
प्रकट न हो और वह मुझ पर दया भी करे, इस प्रकार चतु-
रता पूर्वक जाकर उससे कहना ।

विरही का प्रलाप ।

हारोपि नार्पितः कण्ठे संमोगस्पर्शमीहया ।
आवयोऽन्तरे जाताः पर्वताः सरितो दुमाः ॥

विरही कहता है पहले मैंने गले में एक हार भी नहीं
रहने दिया था, क्योंकि उसके और मेरे शरीर के मध्य में
थोड़ा भी अन्तर मुझे असह्य था । आज मेरे और उसके
बीच में बड़े बड़े पर्वत नदियाँ और वृक्ष हैं, आज हम उससे
बहुत दूर हैं ।

प्राणानां च प्रियायाश्च मूढाः सादृश्यकारिणः ।
प्रिया कण्ठगता रम्यै प्राणा मरणहेतवः ॥

प्राण और प्रिया इन दोनों में जो समानता करते हैं वे मूर्ख
हैं । उनको मालूम नहीं कि प्रिया जब कण्ठ में लगती है तो
उससे आनन्द होता है और प्राण जब कण्ठ में आते हैं तो
मृत्यु हो जाती है । फिर इनका सादृश्य कैसा ?

द्वारस्था यस्य दधिता नवा पीनपयोधरा ।
सस्य संतापशमने न वापी न पयोधरा ॥

नवीन और पीन पयोधर (स्तन) वाली जिसकी दूर
उसके ताप शान्त करने के लिए न तो वापी (तालाब)
न पयोधर मेघ ही समर्थ होते हैं ।

नपुंसकमिति ज्ञात्वा त्वां प्रति प्रेयिनं नवा ।
मनस्यैव रमते इताः पाणिनिना वयम् ॥

धियाकरण पाणिनि ने मन शब्द को नपुंसक धन
है, मैंने इसे सच समझा और नपुंसक समझ कर हँस

उसे प्रिया के पास भेज दिया, पर मन तो वहाँ रम गया ।
हाथ, पाणिनि ने मुझे धोखा दिया ।

मुखेन चन्द्रकान्तेन मदानोलेः शितोरहेः ।

पाणिन्या पद्मरागम्भा रेजे रत्नमयीव सा ॥

यह तो रत्नमयी के समान मादूम पड़ती है, उसका मुँह
चन्द्रकान्त है । चन्द्रमा के समान सुन्दर है, केश नीलमणि के
समान मध्यात् काले हैं, उसके दोनों हाथ पद्मराग मणि के
समान लाल हैं ।

तावदेवाष्टमयी पाचस्मोचनगोचरे ।

चक्षुष्यथादतीता नु विषादप्यतिरिष्यते ॥

दयिता सभी तक अमृतमयी रहती है, जब तक भाँखों के
सामने है, भाँखों के धोक्ल होने पर तो वह विष से भी
बढ़कर हो जाती है ।

सृष्टाः संयोगमिष्यन्ति विषोगस्तु मयेष्यते ।

एकैव संगमे बाला विषोगे तन्मयं जगत् ॥

जो मूर्ख हैं ये दयिता के साथ संयोग चाहते हैं, मैं तो
विषोग चाहता हूँ । क्योंकि संयोग के समय वह केवल एक
ही रहती है, पर विषोग के समय समस्त जगत् उसके रूप
का हो जाता है ।

एकैव संगमे बाला विषोगे तन्मयं जगत् ।

कृणोतकार एवायं विषोगः केन निष्यते ॥

सङ्गम के समय केवल एक यही दयिता रहती है, पर
विषोग के समय समस्त संसार तन्मय हो जाता है । इस
प्रकार विषोग उपकार ही करता है, फिर उसकी निन्दा
क्यों की जाती है ?

त मे समामयो मागो ना मे नाथममा यमा ।

यो धानवा मया धानि वा धान्वाधानता तया ॥

उमके माग में मेरा धर्म धानता है यह महीने के सम
है और उमके धाना में महीना धानता है यह धर्म के सम
है ।

अदि प्रियात्रिगोमेति मयते हीनर्शनम् ।

तदिदं दम्भमनमुत्पन्नं क वाच्यमिति ॥

यदि प्रिया के वियोग के समय भी हीनतापूर्ण क रो
जाय तो इस ममाने मरण का उपयोग कहाँ होगा । प्रिया
वियोग के व्यागन के लिए मृत्यु ही उपयुक्त है ।

कामिनीकापकान्तारे कुचपत्रं दुर्गमे ।

मा सञ्चर मनः शम्य वप्राप्ति स्मरतस्करः ॥

कामिनो का शरीर एक वन है, वहाँ स्तनरूपी दुर्गम
पर्यंत है । हे पथिक मन, तुम उस वन में विचरण मत करो,
क्योंकि वहाँ कामदेव नाम का एक चोर है ।

मनः शुक्ल निवर्तस्व कामिनीगण्डादिमाद ।

कामध्यायेन विन्यस्तं वप्रास्त्वलवज्जालकम् ॥

हे मनरूपी शुक, कामिनी के कपोलरूपी दाढ़िम (बनार)
से तुम हट जाओ, क्योंकि कामरूपी व्याध ने वहाँ केशों का
जाल फैला रखा है ।

त्यागोहि सर्वं ध्यस्तवानि हन्ती-

न्यलीकमेतदुवि संप्रतीतम् ।

जातानि सर्वं ध्यमनानि तस्या-

स्वभागेन मे मुग्धविलोचनायाः ॥

लोग कहते हैं कि त्याग करने से सब दुःख दूर हो जाते हैं । पर मुझे मालूम होता है कि यह झूठी बात है । मैंने तो जिस दिन से उस सुन्दर नेत्रवाली का त्याग किया है उसी दिन से सभी दुःख मेरे सिर आपड़े हैं ।

निद्रार्थमीलितदृशो मदमन्धराणा
नाप्यर्थवन्ति न च यानि निरर्थकानि ।
अद्यापि मे मृगदृशो मधुराणितस्या-
न्नाप्यक्षराणि हृदये किमपि स्वनन्ति ॥

निद्रा के कारण जिसकी आंख मँपी हुई हैं, जो मद के कारण अलसायी हुई है, उस मृगनयनी के ये मधुर वचन—
‘जनके न तो कुछ अर्थ हो हैं और न जो निरर्थक ही हैं—
मात्र भी हृदय में गूँज रहे हैं ।

हर हर कल्याणराष्ट्रमुखोर्ध्व
गणयति ताम्बपि वासराणि वेधाः ।
कुक्षलजनयनास्तनाम्बरेशु
क्षममपि वेषु न शेरते पुषावः ॥

शिव, शिव, यह प्रज्ञा बड़ा ही निर्दय है जो यह उन दिनों को भी आयु में शामिल करता है जिन दिनों मैं युवक एक क्षण के लिए भी कमलनेत्रा दयिता के स्तनों के मध्य में नहीं सोते ।

केशीः केसत्माकिकामपि चिरं वा विभ्रती सिधति
वा गात्रेषु धनं विलेपनमपि न्यस्तं न सोढुं क्षमा ।
दीप्यमापि शिलां न वासमयने शक्नोति वा बीक्षितुं
वा तार्य विरहान्नक्षय मद्रुतः सोढुं कथं शक्नोति ॥

जो भी-ही मे मरणांगी चेहरा को माया में ली दुर्लभ होनी है, जो शरीर पर लगे विनेहार को भी धारण नहीं कर सकने, जो घर में ही-रक की ली देन नहीं सकने, वह विरह-मित्र के इस विचार तथा को कैसे मन लगेगी ?

सा वल्गु वदन्मनममन-सा भी वच' कायाः ।

सा विलोचनितमनी-धरम' वच' लोचन वचम् ।

साकामा मन्मथाने-व दृष्टया मन्म' म हाया वच'

वर्णनवमाचवेगानो मना वद दृष्टवचम् ॥

यह बातें हैं, यह हमारा मन काया हो रहा है, यह ली है यह हम लोचन में लगे हैं यह माद भीर ऊँच मनों का धार धारण करती है, यह हम दुर्लभ हो रहे हैं, उसके लोचन में लगे हैं, यह हम मन नहीं सकने । यह भाष्य की बात है कि दुर्लभों के लोचन में हमारी यह दृष्टनीय दृष्टा हो रही है ।

माने कोणातक मुनी प्रियतमा वचनं व दृष्टा मया

सा भी मन्मथ विलोचनितमनी वच' वृष्टा मया ।

मो वाचन-विमल वचन-विलोचनितमनी वचन-विमल

मानवना-वद' शब्द-विमल-विमल-वचन-वचनः ॥

विरही अपने मित्र से अपने स्वप्न का वृत्तान्त कह रहा है। मान्दूम पहना है कि मैंने आज स्वप्न में अपनी प्रियतमा को देखा, यह मुझमें तिरों हुई थी । नहीं, मुझे न सुप्तो, ऐसा कहती हुई भीर रोगों हुई यह पदों में जाने लगी । आलिङ्गन करके प्रिय वचनों के द्वारा जब तक मैं उसे प्रसन्न करूँ, माँ, तभी तक शठ विधाता ने मुझे निद्रा-दरिद्र कर दिया अर्थात् नींद खुल गयी । इस स्तोक बनाने के कारण इस कवि का नाम निद्रादरिद्र पड़ गया था ।

दूतिवाक्य

मौने निषण्णा कृतमूरिरक्षा
स्रष्ट्वाङ्गुलीनां दधती जटाश्च ।
सा न्यत्कृते ध्यानधरा दराकी
मृतं महापाशुपतं प्रपद्या ॥ १ ॥

दूती नायक से कहती है—उसने (नायिका ने) मौन धारण किया है, धनेक प्रकार से उसकी रक्षा की गयी है अथवा उसने राख लपेटो है, खाट पर उसके अँग पड़े हुए हैं, अथवा खटिया का पावा धारण किया है, उसने जटा धारण की है, सदा ध्यान में मग्न रहती है, इस प्रकार वह बिचारी तुम्हारे लिए पाशुपत मृत कर रहा है ।

से सेदमम्दा विनिवेश्य दृष्टि-
मालोक्य शोभातिशयं मनानाम् ।
नेदीयता सा मरणेन किञ्चि-
दाश्वासिता प्राप्तिरिति मास्म मेधीः ॥ २ ॥

दुःख से मन्ददृष्टि से आकाश की ओर उसने देखा, मेघों को अलौकिक शोभा उसे दिखायी पड़ी । इस कारण अथ शोभ ही मरना है, इस आश्यास से वह अभी तक जीवित है, डरो मत ।

॥ इष्टेन हुततरमितो गम्यतां सा श्रिया ते
दृष्टा आतर्दिक्षमसिद्धं साधमेकं मयैव ।
पान्ये पान्ये त्वमिति रमसोद्गमीवमालोकयन्ती
दृष्टे दृष्टे न भवति भवानित्यु दसं वलन्ती ॥ ३ ॥

प्राप्तेयशीकरसमे हृदि सा कृपालो

बाला क्षणं वसति वैव स्रष्ट त्वदीये ॥ ६ ॥

तुम प्रिया के उस हृदय में सदा वर्तमान रहते हो, जिसमें विरहाग्नि की ज्वाला सदा घघकती रहती है । पर कृपालो, वरुण के समान शीतल तुम्हारे हृदय में उस बाला को एक क्षण के लिए भी स्थान नहीं मिलता ।

चित्तोत्कीर्णादपि विषधराद् भोतिभाजो निशायां

किमु ब्रूमस्त्वदभिसरणे सादत्तं नाथ उरधः ।

ध्वान्ते पाश्या यद्वतिनिवृत्तं बालयात्मप्रकाश-

सासात् पाणिं पथि कणिकणारवरोधो भवधायि ॥ ७ ॥

नाथ, जो सर्प की तसवीर देख कर भी डरती है उसीका तुम्हारे लिए अभिसरण करने में जो साहस देखा गया, वह मैं क्या कहूँ । अंधेरे में वह आरही थी, उसने साँप के सिरके रक्त का प्रकाश देखा और डर गयी । पर, शीघ्र ही उसने अपने हाथों से उस प्रकाश को छिपा लिया ।

न हारं नाहारं कलपति विहारं विषमिव,

स्मरन्ती सा रामा सुभग भवतभागमदिवम् ।

परं क्षीया दीना परमसुखहीना सुवदना,

इहूपक्ष्मलीकचपलनयनाद्वीकृतगतिः ॥ ८ ॥

हार और आहार कुछ भी नहीं लेती, विहार को विष समझती है, सुभग तुम्हारे आने के दिन का सदा स्मरण किया करती है, इससे वह सुवदना क्षीण दीन और सुखहीन होगयी है । अमावास्या के चंद्रमा के समान उसकी दशा हो गई है ।

सखों के प्रति प्रश्न ।

किं त्वं दूति गता गतास्मि सुभगे तस्यान्तिर्हं कामिनः

किं इहः सुचिरं करोति किमप्यौ पीशाविनोदक्रियाम् ।

सौभाग्योदयगर्हितः किमप्यनैवोत्तरं दत्त्वा —
 भिक्कं गवांसिद्धिं वाप्यगदगदतया घूर्णस्य मायादि मा ॥ १ ॥

सखी और नायिका का कथोपकथन । दूति, क्या तुम उनके पास गयी थी ? सखी ने कहा हाँ, मैं उस कार्मी के पास गई थी । नायिका ने पूछा, क्या तुम ने उन्हें देखा । उसने कहा, यड़ी देर तक मैं देखनी रही । नायिका ने पूछा, वे क्या करते थे ? उसने कहा—बीणा बजा कर मन घहला रहे थे । नायिका ने पूछा, अपने सौभाग्य पर गर्व करनेवाले उन्होंने क्या कहा ? दूती ने कहा, नहीं, कुछ भी नहीं । उन्होंने कुछ उत्तर ही न दिया । नायिका ने पूछा—क्या भहङ्गार के कारण उत्तर नहीं दिया ? उसने कहा, नहीं, उनका गला भर माया था । नायिका ने कहा यह उस धूर्त की बाल है ।

मर्मसि रघुराति भापते प्रियं
 प्रेम संस्मरति रम्भमीक्षते ।
 ईदृशास्य बहुचितकारिणो
 विक्रियापि न शठस्य लक्ष्यते ॥ २ ॥

अप्राप्ते फसता है, और प्रिय खोलता है, प्रेम का स्मरण करता है, पर झुटिणों दूँ दूँ करता है । इस प्रकार अनेक तरह की माया करनेवाले उस धूर्त का प्रोध भी मातूम नहीं पड़ता ।

अलमलमणस्य तस्य नाम्ना
 पुनरपि सैव कथा गताः स कालः ।
 कथय कथय वा तथापि दूति
 अतिवचनं द्विषतोऽपि मानवीयम् ॥ ३ ॥

उस पापी का नाम न लो । फिर वही घात, उसका समय
घोत गया । अथवा दूति, वही बहो, शत्रु का भी उत्तर सुन
लेना चाहिए ।

कथय निपुण कस्मिन् दूष्टः कथं स कियच्छिरं
किमपि लघितं किं तेनोक्तं कदा स श्रद्दयति ।
इति बहुविधार्थे मालापप्रकल्पितविस्तराः
प्रियतमकथा स्वप्नेऽप्यथे' प्रयान्ति न नेष्टताम् ॥ ४ ॥

ठीक ठीक कहो, कहाँ और कैसा देखा ? कितनी देर
तक देखा ? ये क्या चाहते हैं ! उन्होंने क्या कहा है ? क्या ये
भायेंगे ? इस प्रकार के प्रियतम सवन्धी विधिध प्रेमालाप
यदि स्वप्न में भी हों तो अच्छे ही हैं, इसमें कोई अनिष्ट
नहीं ।

स्त्री

एकान्तसुन्दरविधावग्रहः क धाता
सर्वाङ्गकान्तिचतुरं क तु रूपमस्याः ।
मध्ये मदेधरमयात्मरूप्यजेन
प्राणार्थिना युवतिरूपमिदं पुरीतम् ॥ १ ॥

ब्रह्मा सर्वाङ्ग सुन्दर वस्तुओं के निर्माण में अनश्वर
और इसका रूप सर्वाङ्ग सुन्दर है । मान्य होता है, शिव के
मय से अपनी रक्षा करने के लिए कामदेव ने ही स्त्री का रूप
धारण किया है ।

किं तारुण्यतरोरियं' रसमरोहिणा नवा मधुरी
लीलामोक्षकितस्य किं कहरिका कारुण्यचारानिधेः ।

स्त्री-प्रशंसा ।

अये धरिण्याः पुरमेव सारं

पुरे गृहं सद्यनि चैकदेशः ।

तथापि शय्या शयने वरस्त्री

रघोश्चला राज्यमुत्तमस्य सारम् ॥ १ ॥

पृथिवी जीतने का जो सार है वह नगरों पर अधिकार होना है, नगरों का सार घर और घर का सार यहाँ की थोड़ी सी भूमि है, उस भूमि का सार पलंग है, पलंग का सार उत्तम स्त्री है, जो रत्नों के समान उज्ज्वल हो, वह राज्य-मुख का सार है ।

कनू पनानी फलमप्रयमाहुः

फलं कनूनामविषादि पुण्यम् ।

पुण्यस्य पूर्णं फलमिन्द्रलोको

द्विरष्टवर्षां शिव एव नाकः ॥ २ ॥

धन का प्रधान फल यज्ञ है, यज्ञ का फल पुण्य है, पुण्य का फल इन्द्रलोक है और सोलह वर्ष की अवस्थावाली स्त्रियाँ ही इन्द्रलोक हैं ।

स्त्री-रूप

केश

स्नेहं परित्यज्य निषीय भूमं

कान्ताकचा मोक्षपर्यं प्रपन्नाः ।

नित्यमसद्गता पुनरेव वदाः

भूदो दुरन्ता विषयेषु सक्तिः ॥ १ ॥

अयमुक्त जहामि किं स्वगोसां
 दयितावकशमिदं च पशु चन्द्रः ।
 अयि नास्तिक किं दिवापि भाति
 स्वयमप्यस्य किमस्ति वा कलङ्कः ॥ २ ॥

कमल, भय छोड़ दो । अपनी शोभा क्यों छोड़ते हो ? यह
 प्रेमा का मुख है चन्द्रमा नहीं है । जानते हो क्या दिन में भी
 चन्द्रमा होता है, भयवा इसमें क्या कलङ्क है ।

विप्रं पदेव गुह्यगुह्यमिदं दक्षं
 पुंसः सखे नितिलक्ष्मणविशान्वाम,
 मील्य सदेव दयितावदने नितान्तं
 धातं विभूषयन्नेकगुणातिशायि ॥ ३ ॥

यह आश्चर्य की बात है कि जो मोलापन सब गुणों को
 गूँथ कर देता है तथा जो अनेक दोषों का स्थान समझा
 जाता है, पर वही मोलापन नायिका के मुखमण्डल पर
 भूषण हो गया और वैसे भूषण जिसने अनेक गुणों को
 छिपा लिया ।

वक्तुं जेष्यामि चन्द्रः प्रतिदिवसमसौ काशितमभ्येति तूर्ध्वं
 नेगच्छायो हरिष्याम्यहमिति विकसन्मुत्सलं शीघ्रिकायाम्,
 कुर्वन्ते ते तथापि शिवमविवशरां मोक्ष्य स्तोभेक्षणाग्रे
 बेलक्ष्याद् भीत्य एको विशति तदपरं मत्सरे माक्षिमद्रम् ॥ ४ ॥

चन्द्रमा प्रतिदिन नायिकामुख को जीतने के लिए
 अधिक अधिक शोभा धारण करता है । नयनों की शोभा
 हरण करने की इच्छा से कमल प्रतिदिन सरोवर में विक-
 सित होता है । ये ऐसा करके भी जब देखते हैं कि नायिका

अरे बाहु, क्यों व्यर्थ फरक रहे हो । हे घामलोचन, तुम भी स्थिर होओ, फरकना बन्द करो । क्योंकि वह अपराधी यदि मेरे पास आये भी, तो न तो मैं उसका आलिङ्गन ही कर सकती हूँ और न उससे चोल ही सकती हूँ ।

तद्वक्त्राभिमुखं मुखं विनमितं दृष्टिः कृता घान्यत—

मन्मथालापकुतूहलाकुण्ठरे श्रोत्रे निरुद्धं मया ।

हस्ताभ्यां विनिवारितः सपञ्चकः स्वेदोद्गमो गण्डयोः

सदयः किं करवाणि यान्ति शतधा पञ्चदश, के सम्भवः ॥२॥

मैंने उसके मुँह की ओर से अपना मुँह हटा लिया, भाँखें भी दूसरी ओर कर लीं, उसकी बातें सुनने के लिए ध्याकुल अपने कानों को भी मैंने बन्द कर लिया, शरीर का रोमांच और कपोलों का पसीना भी मैंने हाथों से छिपा दिया । पर सखियो, बतलाओ मेरी चाली मैं जो सँकड़ों छेद हो रहे हूँ, उनके लिए मैं क्या करूँ ।

एकशतवर्तस्थितिः परिहृता प्रपुद्गमाद्गुरुत्व—

स्ताम्बूलागपञ्चलेन रमसःश्लेषोपि सविज्ञिनः ।

आलापोपि न मिश्रितः परित्रनं श्वापारयत्स्यान्तिने

काम्भं प्रपुपचारतश्चतुरया कोपः कृताभी कृतः ॥३॥

प्रपुत्थान के ध्याज से एक स्थान पर बैठना उसने रोक दिया, पान छाने के बहाने आलिङ्गन में भी उसने विग्र डाल दिया, नौकरों और दासियों को काग्न में लगाने के ध्याज से उसने घाते भी न की । इस प्रकार उस चतुर ने प्रिय के प्रति आगत-स्वागत के बहाने अपना क्रोध सफल किया ।

प्राणेशे सहसा चिरादुपगतं रुद्धं मया शोचने

श्रोत्रे बाणपि सन्निवर्षार्पणस्य रुद्धा बलादाकुल्या ।

पहले हम दोनों का यह शरीर एक ही था कोई भेद न था, फिर आप प्रिय हुए और मैं प्रियतमा हुई । इस समय आप गृहपति हैं और मैं गृहिणी, इन धनु के समान कठिन प्राणों का फल मैंने पाया, मैं जीती हूँ इसी कारण यह अपमान सहना पड़ा है ।

प्रसादे वृत्तेश्च प्रकटय मुदं सत्यज्ञ र्व
प्रिये शुभ्यन्त्यङ्गान्पमृतमिव से सिञ्चतु वचः ।
निधनं सौक्यानां क्षयमभिसुखं स्थापय मुखं
न मुग्धे प्रत्येतुं प्रभवति यतः कालहरिणः ॥

मानिनो का प्रसादन । प्रसन्न होओ, क्रोध छोड़ो, मेरा शरीर स्वस्थ रहा है तुम अमृत के समान अपने पधनों का सिंचन करो, सय सुओं का मूल अपना मुँह मेरी ओर करो । तुम भोली हो, कालरूपी यह हिरन अब चला जाता है तब यह पुनः लौटकर नहीं आता ।

वसन्त

अव्ययस्य वधूर्विषोपविपुता भद्रुः स्मरन्ती यदि
प्राणानुपकति करण सन्तुलु महर्सात्रापते पाठकम् ।
पावप्रो वृतामप्यमेन हृदये तावत्तरोमुर्धनि
प्रोदष्टं परिपुष्टया तव तवैरुप्यैर्वचोनेकाः ॥

पथिक की रीति वियोग से दुःखी होकर पति का स्मरण करती हुई यदि प्राण त्याग करे तो इसका पाप किसको होगा ! पथिक ने हृदय में ही कहा "नहीं" अर्थात् इसका पाप

यह वसन्त काल हनुमान् के समान आया, हनुमान् के शरीर के घाल वायु के द्वारा चुम्बित है । वसन्त काल में भी पुष्पों के फेशर वायु द्वारा चुम्बित होते हैं । हनुमान प्रसन्न चन्द्र मण्डल के आगे चलने हैं, वसन्त काल में चन्द्रमा अधिक सुन्दर हो जाता है, हनुमान को वियोगिनी सीता ने देखा था, वसन्त काल भी वियोगिनी स्त्रियों के द्वारा देखा जाता है ।

दूरी जनोऽसौ सलु वियमानमविषमान' तु न कोऽपि तावत् ।

वियोगिनां पुष्पमञ्चशोकः शोऽप्रदोऽभूदति चित्रमेतत् ॥

जो रहता है वही मनुष्य देता है, जो नहीं रहता वह कोई किसी को नहीं देता । पर पुष्पभार से मचा हुआ अशाक वियोगियों के लिए शोकदायी हुआ, यह बड़ा आश्चर्य है । अशोक के पास तो शोक नहीं था ।

अगौ विवाहावसरे वनस्थली-

वसन्तयोः कामदुताशसक्षिणि ।

पिकहिजः प्रीतमना मनोरम

सुदृष्ट'दुर्मङ्गलमन्त्रमादरात् ।

वनस्थली और वसन्त का विवाह हो रहा था, कामदेव-रूपी भग्नि उसका साक्षी था, इसी उपलक्ष में पिकरूपी ब्राह्मण बड़े आदर से मङ्गल मन्त्र पढ़ता था ।

यह वसन्त काल हनुमान् के समान आया, हनुमान् के शरीर के बाल वायु के द्वारा घुम्बित है। वसन्त काल में भी पुष्पों के केशर वायु द्वारा घुम्बित होते हैं। हनुमान प्रसन्न चन्द्र मण्डल के आगे चलने हैं, वसन्त काल में चन्द्रमा अधिक सुन्दर हो जाता है, हनुमान को वियोगिनी सीता ने देखा था, वसन्त काल भी वियोगिनी स्त्रियों के द्वारा देखा जाता है।

दूरी जगोऽसी सलु विद्यमानमविद्यमानं तु न कोऽपि तावत् ।
वियोगिनीं पुष्पनम्रशोकः शोच्यशोऽभूदति चित्रमेतत् ॥

जो रहता है यही मनुष्य देता है, जो नहीं रहता यह कोई किसी को नहीं देता। पर पुष्पभार से नया हुआ अशाक वियोगियों के लिए शोकदायी हुआ, यह बड़ा आश्चर्य है। अशोक के पास तो शोक नहीं था।

जगो विवाहावसरे वनस्पली-
वसन्तयोः कामकुतारास्ताक्षिणि ।
पिकद्वित्रः प्रीतमना मनोरमं
मुहुर्मुहुर्मङ्गलमन्त्रमादरात् ।

वनस्पली और वसन्त का विवाह हो रहा था, कामदेव-रूपी अग्नि उसका साक्षी था, इसी उपलक्ष में पिकरूपी ब्राह्मण बड़े कादर से मङ्गल मन्त्र पढ़ता था।

ग्रीष्म

रवेर्मयूखैरमितापितो मृशं
विदलमानः पथि तप्तपासुभिः ।
अवाकृणोऽजिह्वगतिः श्वसन्मुहुः
फली मयूरस्य तले निषीदति ॥

ऊपर से सूर्य की किरणों से रूख तपाया गया है, मार्ग की गरम धूल से जल रहा है, ऐसी दशा में उससे लेता हुआ सर्प सिर नीचा करके और अपनी टेंढ़ी चाल छोड़कर मयूर के नीचे विधाम करता है ।

सर्वांशारुधि दग्धवीरुधि सदा सारद्वन्दकुधि
क्षामवमारुहि मन्दमुन्मथुलिहि स्वच्छन्दकुन्ददुहि ।
शुष्यन्म्रोतसि भूरितसरजसि ज्वालायमानार्णसि
ग्रीष्मे मासि तताकंतेजसि कथं पान्थ मत्रप्रीयसि ॥

जिस ग्रीष्मऋतु ने सब दिशाओं को रोक दिया है, पौ को जला दिया है, मृगयूथ पर जिसने क्रोध किया है, पृथ को क्षीण बना दिया है, भ्रमरो के भानन्द को क्षीण बना दिया है, जो स्वच्छन्दता पूर्ण कुन्द पुष्प से द्वेष करता है, जिसने सोता को सुखा दिया है, धूल को गर्म बना दिया है, जल को तप्त कर दिया है और जिसमें सूर्य की किरणें फैल रही हैं उस ऋतु में तुम यात्रा करके कैसे जी सकते हो ।

दूरादेव कृतोऽग्निलिप्तं पुनः पानीयपानार्थिना
रोमाग्रोपि निरन्तरं प्रकटितः प्रीत्या न शैत्याद्वपाम् ।
रूपालोकनविस्मितेन खलितो मूर्धा न शाम्भवा नृषा-
मधुगुणो विधिरश्वगेन घटितो बोद्धव्यं मयापालिकाम् ॥

पथिक ने दूर से ही हाथों की अंजलि घना ली पर यह पानी पीने के लिए नहीं । शरीर में रोमाञ्च भी हुआ पर प्रेम से, जल की शीतलता के कारण नहीं । रूप देखने के ही कारण मस्तक हिल गया, जल पीने की तृप्ति के कारण नहीं । प्याऊ पर जल पिलानेवाली को देखकर पथिक के ये सब भाव ही भाव हुए ।

गन्तुं सम्बरभीहसे यदि गृहं ध्यालोलवेषीलतां
प्रप्लुं व स्वकुटुम्बिनीमनुदिनं कान्तां समुत्कण्ठसे ।
तत्तु प्यञ्चपि मुग्धमन्धरचलन्नेत्रान्ताकट्याभ्यगा-
मेतां दूरत एव हे परिहर भ्रातः प्रपापालिकाम् ॥

भाई, यदि तुम यहाँ से जल्दी जाना चाहते हो, यदि तुम पिछरी घणोघाली अपनी कान्ता को देखने के लिए उत्कण्ठित हो तो प्यासे होने पर भी उस प्रपापालिका (प्याऊ पर जल पिलानेवाली) को दूर से ही यचाकर जाना, जो सुन्दर और मन्द मन्द चलनेवाली भाँवों के इशारे से पथिकों को रोकती है, उन्हें रास्ते ही में बिलमा देती है ।

वर्षा

किं गतेन यदि सा न जीवति
प्रशिक्षिति प्रियतमा तथापि किम् ।
इत्युदीक्ष्य भवमेघमालिकां
न प्रयाति पथिकः स्वमन्दिरम् ॥

वर्षा ऋतु में साकाश में मेघमाला को देख पथिक उत्कण्ठित होता है । यदि जाने पर प्रियतमा जीवित न मिले तो

या चकादपद्रव्य रोपितवती कण्ठे ममैवाननं
सा द्रव्यस्थधुना कथं नु विरहे बाला पयोदावलीम् ॥

हरिण के बच्चे के समान चञ्चल आँखोंवाली यह पहले
मेघों का शब्द सुनकर डर गयी और मेरे घटस्थल पर स्थित
होने पर भी भय से उसने और दृढ़ आलिङ्गन किया और मेरे
गले पर उसने अपना मुख रख दिया, वही आज इस विरह
दशा में मेघों की पंक्ति कैसे देखेगी ।

मेघैर्ध्वान नवाम्बुभिर्धंसुमती विद्युः क्लृप्ताभिर्दिशां
धाराभिर्गगनं घनानि कुटजैः पूरैर्दृता निम्नगाः ।
एकां घातयितुं विवोगविधुरां दीनां वराकीं खिद्यं
प्रादृक्काल इताश वर्णय कृषं मिथ्या किमादम्बरम् ॥

मेघों से आकाश भर गया, नये जल से पृथिवी भर गयी,
पिजली से दिशाएँ व्याप्त हो गयीं । धारा से गगन, कुटज
पुष्प से वन, प्रवाह से नदियाँ व्याप्त हो गयीं । यह सब आद-
म्बर केवल एक वियोगिनी दीन विचारी स्त्री को मारने के
लिए भ्रमाने घर्षा-काल ने किया है, पर इन सबकी ज़रूरत
क्या थी ।

भद्राक्ष प्रामके त्वं वसति परिचयस्तेति आनासि वार्ता-
मस्मिन्मध्वन्यजाया जलधररसितोष्का न वाचिद्विपन्ना ।
इत्थं पाग्न्यः प्रवासावधिदिनविगभापावधाद्वी प्रियायाः
पृष्ठान्मृत्तामृतामारातिस्वतनिद्रमवनोप्याकुलो न प्रयाति ॥

भद्र, तुम क्या इस गाँव में रहते हो ? तुम इस गाँव की
वार्ता जानते हो ? क्या तुम जानते हो कि इस गाँव में एक
पथिक की स्त्री मेघ गर्जन से उत्काण्डित होकर मर गयी है ?
इस प्रकार प्रवास से लौटने की अवधि के समाप्त हो जाने से

या वक्रादपहृत्य रोपितवती कण्ठे ममैवाननं
सा दक्षत्यधुना कथं नु विरहे बाला पयोदावलीम् ॥

हरिण के चच्चे के समान चञ्चल आँखोंवाली वह पहले
मेघों का शब्द सुनकर डर गयी और मेरे वक्षस्थल पर स्थित
होने पर भी भय से उसने और दृढ़ आलिङ्गन किया और मेरे
गले पर उसने अपना मुख रख दिया, चढ़ी आज इस विरह
दशा में मेघों की पंक्ति कैसे देखेगी ।

मैघैःपौम नयाम्बुभिर्वंसुभतो विद्युः क्लृताभिर्दिशा
धाराभिर्गगनं वनानि कुटजैः पूरैर्दृष्टा निम्नगाः ।
एका-घातयितुं वियोगविधुरां दीनां वराकीं शिवं
मातृदकाल इताशं वर्णय कृतं मिथ्या किमाहम्बरम् ॥

मेघों से भाकाश भर गया, नये जल से पृथिवी भर गयी,
घिझली से दिशाएँ व्याप्त हो गयीं । धारा से गगन, कुटज
पुष्प से वन, प्रवाह से नदियाँ व्याप्त हो गयीं । यह सब आह-
म्बर केवल एक धियोमिनी दीन विचारों स्त्री को मारने के
लिए भ्रमाने चर्पा-काल ने किया है, पर इन सबकी ज़रूरत
क्या थी ।

भद्राक्षं ग्रामके स्थं वसति परिचयस्तेऽस्ति जानासि वार्ता-
मरिमन्मन्वन्वजाया जलधरसितोष्का न काचिद्रूपन्वा ।
इत्थं पाण्यः प्रवासावधिदिनविगमापायभङ्गो विधायाः
पृच्छन्तुताम्रमारुस्वितविश्रमवनोप्याकुलो न प्रयाति ॥

भद्र, तुम क्या इस गाँव में रहते हो ? तुम इस गाँव की
वार्ता जानते हो ? क्या तुम जानते हो कि इस गाँव में एक
पथिक की स्त्री मेघ गर्जन से उत्कण्ठित होकर मर गयी है ?
इस प्रकार प्रवास से लौटने की अपेक्षा के समाप्त हो जाने से

पद अपनी प्रिया के ममल का सन्देह करता था।
 से पूछता था और अपने घर के पास ही था पर य
 नहीं जा सकता था ।

रदु जलघरः पतन्तु धाराः
 स्फुरन्तु तडिन्मस्तां पि वान्तु शीताः ।
 ह्यमुरसि महौषधी कान्ता
 सकलमपप्रतिपातिनी स्थिता मे ॥

मेघ गर्जे, पानी धरसे, बिजली चमके, शीतल वायु बहे,
 सब प्रकार के भयों को दूर करनेवाली यह महौषधि के समान
 कान्ता मेरे घटस्थल पर वर्तमान है ।

शरद

भीतोस्मि येन महतीं सलिलेन वृद्धिं
 संयोजितञ्च सततं गुह्या फलेन ।
 सज्जोष्यते दिङ्मृतेन्यतिचिन्तयेव
 शोकागतं कलमशालिवनं विषण्ण्डु ॥

जिस जल ने मुझे बढ़ाया, जिसने बड़े फल से
 सयन्ध कराया, उसको ही सूर्यसोख रहा है । मानो !
 चिन्ता के कारण धान पीले पड़ गये और शोक से नव ग

अथ प्रसन्नेन्दुमुखी सिताम्बर,
 समापयामुत्पलपत्र लोचना,
 सपद्मजम्बीरिण गां निषेविषुं
 सद्सकलव्यग्रना शरद्वधूः ॥

यह शरत् ऋतुरूपी चधू आयी, इसका मुख प्रसन्न है, पल्ल श्वेत हैं, कमल इसके नेत्र हैं, हंस पंखों के समान हैं, उन्हींको लेकर यह पृथिवी को सेवा के लिए आयी है ।

अचिन्तयै रादया कचननिकचैर्भारिवनैः
अचिन्तयैरुत्तरोदयैः अचिदपि स्तैः सारसकृतैः ।
अचिद्विष्णोर्माभोगैः सुभगशतभृदिन्धववलयै-
रहो चेतः पुंसो हरति बहुरूपा शरदियम् ॥

कहीं धान लहलहा रहे हैं, कहीं कमल खिले हुए हैं, कहीं श्वच्छ जल है, कहीं सारस घोल रहे हैं, कहीं चन्द्र विम्ब के समान श्वच्छ आकाश को शोभा दीख पड़ती है, इस प्रकार अनेक रूप धारण करनेवाली यह शरत् पुरुषों का चित्त हरण करती है ।

हेमन्त

नम्राः सदा शीतमहा जलधरा
विमुष्य पर्णानि कलानि सौमनम् ।
सुलभम् माधवमाह्मुमुक्षुका-
स्वयः प्रवृत्ताः किमु सन्ति पादपाः ॥

गूँस मानो तपस्या कर रहे हैं, घे नंगे हैं, शीत सहन कर रहे हैं, जटा उन्हींने धारण की है, पत्तों और फलों को उन्हींने इस समय त्याग कर दिया है । मादृम होता है सुलभायी माधव (पतन्त) को पाने के लिए मानो घे तपस्या कर रहे हैं ।

हे हेमन्त स्मरिष्यामि घाते त्वयि गुणद्वयम्
अवधशीतलं वारि निराशं सुरतप्रभाः ॥

हे हेमन्त, तुम्हारे चले जाने पर भी तुम्हारे दो
स्मरण रहेंगे, एक तो बिना प्रयत्न के ही शीतल ज
दूसरी सुरत के योग्य रात्रि ।

लघुनि नृपकुटीरे क्षोप्रकोणे यवानां
नवपद्मपद्मानन्दघनरे सौरधाने ।
परिहरति मुगुत्तं दालिकन्दमाराध
कुचकलरामदोम्भावदरेखस्तुशरः ॥

जोके खेत के कोने में फूसकी छोटी कुटिया है, नये पु
का पिछीना और तकिया है, यहाँ किमान और उसकी
सुरक्षित है, इन जाड़े का शीत का कुछ भय नहीं है ।

हे पान्थ प्रियविप्रयोगदुतभुग्गबालानपिशंसि किम्
किं वा नास्ति त्वप्रिया गतपृथः किं वामि हीनोभिया,
येनास्त्यस्रवकुट्टकुमारवृत्तिन्दासद्वयमोचितै
कुम्भानन्दितमत्त पद्मपुल्ले काले गृहाधिगतः ॥

मार्ह, क्या प्रिया—विशेष की अग्नि की ज्वाला का
तुम्हें शान नहीं है, अथवा तुम्हारे घर में प्रिया नहीं है,
अथवा तुम निर्दय हो या बुद्धिहीन हो, जिससे इस र
जय कि सूर्य के घाम सेवन करने का अवसर है, और
समय कुन्दपुष्प में भ्रमर मग्न हो रहे हैं, तुम अपने घर
बाहर जा रहे हो ।

शिशिर

करपरशनासमाक्षी कर्णौ गृह्णाति रक्ततां गमयन् ।

शीतं गुरुकृतपीडं पञ्चादङ्गानि कूर्म इव ॥

शीत पहले हाथ पैर नाक और कान को पकड़ता है, इनको लाल करता है, बड़ी पीडा देता है, पुनः समस्त अंग को पच्छर के समान सङ्कुचित करता है ।

केशानङ्कयन् दूशौ मुहुन्वयन् वासो बलादाक्षि-

कातन्वन् पुलकोद्गमं प्रवदयन्नावेगकम्पं गतेः

भारं वारमुदारसीनृतारवैदंभण्डं पीडयन्

प्रायः शिशिर एव मय्यनि मलकान्मानु कालायते ।

पेशों को उलझा देता है, घाँसे बन्द कर देता है, वास्त्र जपरदस्ती खींचता है, रोमाञ्च कराना है, गति को कम्पित कर देता है, बारबार जोर में सोन्कार कराना है, मोष्ठों को पीड़ित करता है, प्रायः यह शिशिर का वायु खियों के प्रति काल का सा व्यवहार करता है ।

चन्द्रमा

वतेश्चन्द्रास्तर्द्धदलवलीकां प्रकुर्यते

तदाचष्टे लोकः शशक इति शो मां प्रति कथा ।

अहं त्विन्दुं मय्ये त्वदभिविदाभ्यान्त तरयो-

कटाक्षोन्नापातयपक्षिचकलङ्गाद्विततनुम् ॥

चन्द्रमा के मध्य में मेघ के टुकड़े के समान ओ दिसायी पड़ता है, उसे लोग शशक कहते हैं, पर मैं इसे टीक नहीं

समझना । महाराज, इस विषय में मैं तो यह समझता हूँ कि
 पिरहिणी तुम्हारी शत्रु शक्तियों के जलने हुए फटाश से चन्द्रमा
 के शरीर में यह घाव हो गया है ।

अहं केनि शराद्विरे जलनिधेः पट्टं परं मेतिरे
 मारद्वं कतिचिच्च मंत्रगदिरे भूमेभ विम्बं परे ।
 इन्द्रो वददलितेन्द्रनोमगकलश्वामं शरीद्रूपने
 लम्बान्ने रविमीतमन्धनमयं कुक्षिस्थनालक्ष्यने ॥

चन्द्रमा में जो काला चिन्ह है, उसे कोई चिन्ह समझने
 है, कोई उसे समुद्र का पंक बनलाने है, कुछ लोग उसे हरि
 पतलाते हैं और कुछ लोगों का कहना है कि यह भूमि का
 छाया है । यह चन्द्रमा के मध्य में इन्द्रनीलमणि के टुकड़े
 के समान जो काला दिखायी पड़ता है, मेरी समझ से तो वह
 सूर्य के मय से छिपा हुआ अन्धकार मान्य पड़ता है ।

परम चन्द्रमुक्ति चन्द्रमण्डल
 ध्योममार्गसरमीसरोरुदम् ।
 यामिनीयुवतिकर्णकुण्डलं
 मारमार्गथानिषर्पणोपलम् ॥

चन्द्रमुणी, चन्द्रमा को देखो, यह आकाश मार्ग
 तालाब का कमल है, रात्रिरूपी युवती के कानों का कुण्डल
 है मयया यह कामदेव के घाण तीखा करने के पत्थर का
 फड़ा है ।

चातु

अन्यतो नप मुहूर्तमाननं

चन्द्र एष सरले कलामयः ।

म कदाचन कपोलयोर्मलं

संकमय्य समतां न नेष्यति ॥

थोड़ी देर तुम अपना मुँह उधर कर लो, नहीं तो कला-
धारी यह चन्द्रमा कहीं अपना मल तुम्हारे कपोलों पर लगा
कर तुम्हारे मुँह से समता न करने लग जाय ।

शिक्षरिणि क जु नाम कियच्चिरं

किमभिधानमसावकरोत्तपः ।

तरुणि येन तवाधरपाटलं

दशति विभ्रफलं शुक्रशावकः ॥

इस शुकशावक ने किस पर्वत पर कितने दिनों तक और
किस नाम की तपस्या की है, जिस कारण यह तुम्हारे ओष्ठ
के समान लाल विम्व फल चुग रहा है ।

विभ्रज दयिते हासगोस्नो निमीकतु पङ्कजं

विकिर नयने भट्टच्छाद्यं भवम्बसितोत्पलम्,

वद मुवदने लम्बासूका भवत्सपि कोकिला

परपरिभवो मानस्थाने न मानिनि सद्यते ।

दयिते, हँसो, जिससे कमल चन्द हो जाय । तुम्हारी हँसी
को चन्द्र प्रकाश समझ कर ये मुकुलित हो जाय । आँखें
फेरो, जिससे नीलकमल की शोभा नष्ट हो जाय, बोलो,
जिससे कोयल मूक हो जाय, मानिनि, सम्मान के ध्यान से
शत्रु का पराजय नहीं सह जाता ।

प्रसीद गनिताभयनी मन्त्रनु राजहंसी सुगम्,
स्मिन् परिमुच्यनी स्तुतनु कुन्दपुष्पप्रभा ।
निमील्य विनोदने मन्त्रनु हारि कर्णोत्पल
करमगिनयाननं कुक् विमानु चन्द्रोदयः ॥

प्रसन्न होओ, अपनी गनि चन्द करो जिससे राजहंसी
सुग पूरक चले, हंसना छोड़ दो जिससे कुन्दपुष्प का
शोभा बढ़े । मांगे चन्द कर लो जिससे कान पर के कमल
की शोभा दीप्त पड़े, मुँह हाथों से छिपा लो, जिससे चन्द्रमा
प्रकाशित लो ।

प्रिय आगमन

आपाते दयिते मरुत्पलमुषामुशीर्य दुर्लभपता
तन्वद्भया परितोऽप्यतरलामामज्य दृष्टिं मुसे ।
दृष्ट्वा पीलुशमीकरीरकवलं स्वेनाश्लेनादरा-
दुन्दुभं करमस्य बेसरसदा भारावलम्बं रजः ॥

प्रिय आये हैं, मारवाड़ की भूमि से आने की कठिनाई
समझ कर सुन्दरी ने प्रसन्नता के भाँसू के कारण खजल
भाँजों से उस ऊँट का मुँह देखा, पीलु शमी करीर आदि
की पत्तियों का फव्वल बना कर उसे दिया और अपने माँचल
से उसके कन्धे पर की धूल साफ की ।

आपाते दयिते मनोरथशतैर्नाते कथंचिदुदिने
वैदग्ध्यपयमाजडे परिजने दीर्घां कथां कुर्वति ।
दृष्ट्वास्मोन्मथिधाय सत्वरपदं ध्यायाम् श्रीनामुङ्क
तन्वद्भया रतिलालसेन मनसा शोकः प्रदीपः शमम् ॥

प्रिय आये, अनेक प्रकार के मनोरथों से किसी किसी प्रकार दिन धिताया, मूर्ख परिवार वालों ने लम्बी बातें छेड़ दीं, उसी समय 'मैं जल गयी' कहती हुई सुन्दरी उठी, उसने अपने कपड़े भाड़े, इस प्रकार प्रिय-समागम की इच्छा ॥ उसने दीपक बुझा दिया ।

प्रभातवर्णन ।

चन्दनं स्नततटेधरविम्बे

यावत् चनतरं च सपत्न्याः ।

प्रातरीष्य कुपितापि मृगाशो

सागसि त्रिषतमे पत्तिवृष्टा ॥

सुन्दरी अपने अपराधी पति पर अप्रसन्न थी, क्योंकि वह उसके पास नहीं आया था, पर प्रातःकाल होने पर जब उसने अपनी सीत के स्तनों पर चन्दन, भोठों पर महाघर ज्यों के त्यों देजे, तब वह प्रसन्न हो गयी, इससे उसने समझा कि मेरे यहाँ न आया तो सीत के यहाँ भी न गया ।

हृत्पद्मोनिर्दिष्टा जम्पतोर्गृहक्षुब्धेनाकर्मितं यद्वच-

स्वप्रातर्गृहसन्निधौ निगदतस्तस्यातिमार्गं बधूः ।

कर्णालम्बितपद्मरागशकलं विन्ध्यस्य चञ्चलाः पुदे

श्रीशार्ता प्रकरोति दाहिमचलम्पाद्येन वागवन्धनम् ॥

रात को स्त्रीपुरुष ने जो बातें की हैं घर के शुकने सुन ली थीं । प्रातःकाल होने पर वह सब के सामने घे बातें कहने लगा । स्त्री यहाँ थी, वह लज्जित हो गयी, उसने

मगने कान के पंगेराग मणि को उतारा और अनार के
उस शुक के मुग में देकर उसकी थोली बन्द कर दी ।

विरलविरलीभूतास्ताराः कदाचि सज्जना
मन इव मुनेः सर्वत्रैव प्रमत्तमभून्ममः ।
व्यपमरति च ध्वान्तं चित्तात्मतामिव दुर्जनो
विगलति निशा क्षिप्रं लक्ष्मीनि कथमिनामिव ॥

कलियुग में जिस प्रकार सज्जन थोड़े रह जाते हैं, उस
प्रकार आकाश में तारा थोड़े रह गये, मुनि के मन के समान
समस्त आकाश स्वच्छ हो गया, सज्जनों के चित्त से जिस
प्रकार दुर्जन हट जाते हैं, उसी प्रकार अन्धकार हट गया है,
और निरुपयोगियों को लक्ष्मी के समान राशि नष्ट हो गयी,

अभूग्रासो पिङ्गा रमरतिरिव प्रारय कनकं
गतच्छायामन्दो बुधवन इव प्राम्य सदसि ।
क्षयाक्षीयास्तारा मृपतय इवानुपमपरा
न दीपा राजन्ते द्रविणरहितानामिव गुणाः ॥

पूय' दिशा पीली हो गयी, जिस प्रकार सोना खाकर
पारा पीला हो जाता है, चन्द्रमा की शोभा जाती रही, जिस
प्रकार दिहातियों की सभा में पण्डित निष्प्रभ हो जाते हैं।
क्षण ही में तारा क्षीण हो गये, जिस प्रकार अनुयोगी राजा
क्षीण हो जाते हैं, दीपक भी अच्छे नहीं लगते, जिस प्रकार
दरिद्रों के गुण ।

मिश्र

सत्यं जना वधिम न पक्षपाता-
लोकेषु ससुखपि तथ्यमेतत् ।
मान्यमनोहारि नितम्बिजोम्बो
दुःखैकहेतुन च कश्चिदन्यः ॥

मैं सच कह रहा हूँ, पक्षपात से नहीं, सीतों लोकों में
यह बात सच है, स्थियों से बढ़कर न तो कोई मनोहर वस्तु
है और न उनसे बढ़कर दुःख-हेतु ही कोई दूसरा है ।

पुष्पाकिनी बढ़बला तरुणी तणाह-
मस्मदपृष्टे गृहपतिश्च गतो विदेशम् ।
कं पाचसे तदिह वासमिदं वराकी
अथ मेमांशवधिरा मनु सूड पाण्य ॥

मैं भकेली छपला हूँ और चुपती हूँ, मेरे घर के मालिक
विदेश गये हुए हैं, फिर तुम ठहरने के लिए जगह किससे
माँगते हो, जानते नहीं कि मेरी सास यिचारी भी तो बन्धी
और बढ़री है ।

सत्तारैरिमंजतारे कुमुपतिभवनद्वारसेवाकलह-
व्यामिद्रूप्यस्तर्पय कथममलधिषो मानसं तविदंभुः ।
वधंताः प्रोथदिन्दुष्टुतिनिषयभृतो न श्युराम्भोजनेसाः
मेहुत्काष्टीकलापाः स्तनभरविषमम्मध्यभागास्तुल्यैः ।

इस भसार संसार में सज्जनों का मन पुरे राजाओं के
द्वार की सेवा के फलहू लगाने से अधीर हो जाता, यदि
उदित चन्द्रमा के कान्तिसमूह धारण करनेवाली कमल

मित्र ।

हैं, फिर भी शरीर-रहित कामदेव समस्त शिलाक को जीत लेता है। इसमें मान्यता यह है कि महान् मनुष्य अपने पल से कार्य निरूप कराने हैं, सामग्रियों में नहीं।

शुद्धः। मन्त्रासमेने विजयते हरयो मित्रशक्तमकुम्भा
पुष्पदन्तेषु स्यात् दधति परममी मायका निष्पन्नः ।
सोमित्रे निष्ठे वामे स्वमपि यदि कथां नन्द्यते मेघनादः
दिक्षिणमरम्भलीयानियमिनज्जन्धि राममन्त्रेणयामि ॥

मेघनाद कहता है, अरे क्षत्रों, क्यों तुम लोग डरने हो ? इन्द्र के हाथी के मस्तक तोड़नेवाले हमारे बाण तुम लोगों के शरीर पर गिरते लज्जित होते हैं। लक्ष्मण, तुम भी ठहरो। तुम भी हमारे क्रोध के पाय नहीं हो, क्योंकि मैं मेघनाद हूँ मैं उस राम को दूँट रहा हूँ जिसने थोड़ा क्रोध करके समुद्र को बाँधा है।

पातालतः किमु सुधारसमानयामि
चन्द्रं निषीक्य किमुनामृतमाहरामि ।
रश्मिरश्मिरश्मिरश्मि किमु वारयामि
कीनाशलोकमयवा ननुः पूर्णयामि ॥

हनुमान कहते हैं, पाताल से अमृत ले आऊँ, चन्द्रमा निचोड़ कर अमृत ले आऊँ, प्रखर किरण सूर्य को रोकूँ या यमराज की नगरी को तोड़ फोड़ दूँ।

काकुत्स्थस्य दशाननो न कृतवान्दारापहारं यदि
काश्मोधिः कथं सेतुबन्धघटना कोचीयलङ्कात्रयः ।
ः पार्थस्यापि पराभव यदि रिपुर्नाघातक तादृक्त्तयः
श्रीकृष्णे रिपुभिः स भुवतिपदं प्रायः परं मानिनः ॥

रामचन्द्र की स्त्री का हरण यदि रावण न करता तो क्या समुद्र के पास वे जाते, या सेतु बांधते, अथवा समुद्र पार जाकर लंका जीतते ? अर्जुन को भी शत्रु यदि तंग न करता तो क्या वे वैसी तपस्या करते ? यात यह है कि शत्रु ही मानियों का उत्कर्ष बढ़ाते हैं ।

बान्हं शीनयितुं हिमं ज्वलयितुं वातं निरोद्धुं पयो
सूतं स्थोमं विधातुमुन्ममयितुं नेतुं नर्तितं वा महीम् ।
इदं किल भूपतः स्वलयितुं मित्युं च संभाषते
शक्तिर्यस्य जनैः स एव नृपतिः शेषाः परंपरिधाः ॥

भाग को शीमल करने की, बर्फ को जला देने की, हवा को रोकने की, जल को ठोस बनाने की, आकाश को उठाने की, पृथिवी को बनाने की, पयों को उखाड़ने की, समुद्र को समतल और समतल को समुद्र बनाने की जिसमें शक्ति रहती है, उसे ही लोग नृपति कहते हैं, और लोग तो पारिध्व है मर्यात् मिट्टी के घोंघे हैं ।

हास्य

प्रापञ्चितं मृगयते यः प्रियापादतादितः ।

क्षालनीयं शिरसस्तस्य कामतामहूपशीशुभिः ॥१॥

जो मनुष्य प्रिया के पैरों से तादित होकर प्रापञ्चित हँदता है, उसका मस्तक कामता के मुँह में की शराप से धो देना चाहिये ।

गणयन्ति गजने गणकृष्णम् ॥ ममागर्भं विशाश्रयाः ।

विविधभुजंगश्रीजगन्तो गृहिणी न जानाति ॥२४॥

ज्योतिषी जी भाकाशय अन्द्रमा का विशाखा के साथ सयागम का समय गजना के द्वारा जानने हैं, पर उनके घर की गृहिणी मनेक हुरदंगों के साथ क्रीड़ा करती है, यह उन्हें मालूम नहीं ।

सदा वक्रः सदाकूरः सदामानधनाग्रहः ।

कन्याराशिस्थितो नित्यं जामातादशमो प्रवः ॥२५॥

जामाता (दामाद) दशमोग्रह है, यह सदा कन्याराशि पर वर्तमान रहता है, यह सदा टेंढ़ा, सदा कूर और सदा मान धन का अपहरण करने वाला है ।

यमः शरीरगोक्षारं संचितारं वसुधरा ।

दुःशोला स्त्री य हसति भर्ता ॥ पुत्रवत्सलम् ॥

शरीर की रक्षा करनेवाले को यमराज हँसता है, धन संवय करनेवाले को पृथिवी हँसती है और व्यभिचारिणी स्त्री अपने पति को पुत्र पर प्रेम करते देखकर हँसती है ।

परान्नं प्राप्य दुर्बुद्धे मा प्राणेषु दयां कृपाः ।

दुर्लभानि परान्नानि प्राप्या जन्मनि जन्मनि ॥२६॥

हे दुर्बुद्धे, यदि दूसरों का अन्न मिले तो प्राणों का मोह छोड़ दो, क्योंकि परान्न का मिलना दुर्लभ है, प्राण तो प्रत्येक जन्म में मिलते हैं ।

निदायकाले त्रिषद्वय प्रभुसस्य तरोरधः ।

भूता प्रभुवितं हरने देवस्यत्वेति सोमवीर्य ॥२७॥

गर्भों के दिनों में एक ब्राह्मण किसी पेड़ के नीचे सो रहा था, कुत्ते ने उसके हाथ पर मूत दिया, उसने कहा यह देवता का है ।

वैद्यनाथ नमस्तुभ्यं क्षपिताक्षेपमानव ।

त्वयि सन्यस्तभारोयं कृतान्तः सुखमेवते ॥७॥

समस्त मनुष्यों को नष्ट करनेवाले हे वैद्यराज, आपको नमस्कार । यमराज, आप ही पर अपना प्राणवध का भार सौंपकर निश्चिन्त हो रहा है ।

काकाक्षौद्र्यं यमात्मकौर्ध्वं स्वपतेर्निम्बघातिताम् ।

आद्यक्षराणि संगृह्य कायस्थः केन निर्मितः ॥८॥

कौर्ध से लोलता, यमराज से क्रूरता और स्वपति (घ्याध) से प्रति दिन हिंसा का काम कायस्थों में विद्यमान है, इन तीनों के पहले अक्षरों को लेकर कायस्थों का निर्माण किसने किया ?

लेखनीकृतकर्णस्य कायस्थस्य न विशसेत् ।

विशसेत्कृण्वत्सर्वस्य वने व्याघ्रस्य विशसेत् ॥९॥

काले साँप का विश्वास किया जा सकता है, यन में घाघ का भी विश्वास किया जा सकता है, पर कान पर कलम ररानेवाले काष्ठस्य का विश्वास नहीं किया जा सकता ।

वाचयति नाग्यलिखितं शिखितमनेनापि वाचयति नाग्यः ।

भयमपरोक्षं विशेषः स्वधर्मापि शिखितः स्वयं न वाचयति ॥१०॥

ये दूसरों का लिखा नहीं वांच सकते और इनका लिखा दूसरा भी नहीं वांच सकता । सूची यह कि ये अपना लिखा भी नहीं वांच सकते ।

शब्दा निगन्तुगुहा शिविन्प्रनाना
 वेदपापतिः म च निरन्तरघण्टकारी ।
 तत्रापि दैवदतिकाः ननु माधराग्यो
 हामस्यती कथमर्थं व्यसनप्रपन्नः ॥११॥

राट बड़ी छात्रों हैं उसके घाते दाँले हो गये हैं और वे
 वेदपा से प्रेम रखनेवाला पति प्रायः गायब रहता है, इस प
 भी दैव की मारों माध का रातें हैं, मला ये कष्ट कैसे सहें जा
 सकते हैं ?

अप्येवमपनं विरन्तकथाः स्त्रीभिः सहालापनं
 सासामर्मकलाकने रतिरणं तत्पाकमिभ्यास्तुतिः ।
 विदुर्भातृजनाशिवः सुमगतायोग्यत्वमकीर्तनं
 रक्षामुष्ठानकथाभिवादनविधिभिर्होतुं शा द्वादश ॥१२॥

भिक्षुक के चारह गुण हैं । ये ये हैं जोर से पढ़ना, पुरानी
 घातें कहना, स्त्रियों के साथ यातचीत करना, उनके बर्षों
 के जेलाने में प्रेम रखना, उनकी बनायी रसोई की प्रशंसा
 तारीफ़ करना, उनके पिता भाई मादि को आशोर्वाद् ।
 उनमें पति प्रिय होने की पूरा योग्यता का वर्णन करना, ।
 अनुष्ठान कथा अभिवादन आदि की योग्यता बखानना ।

क्षारं राक्षसि किमप्य दयिते रामोपि किं न ११५-
 माः पापे प्रतिजन्तसे प्रतिदिनं पापस्त्वद्भोवः पिता
 धिक्त्वां क्रोधमुखोमलीकमुखरस्त्वत्तोपि कः क्रोधनो
 दम्पत्योरिति नित्यदृष्टकलहकेशान्तयोः किं सुखम् ॥१॥

स्त्री पुण्य से चाद-पु० - प्रिये, यह क्या आज कहु
 कहुँआ बनाया है ? स्त्री० - तो तुम स्वयं क्यों नहीं बना लेते
 पु०-ओह पापिन, तू प्रतिदिन उत्तर दिया करती है, स्त्री०-

तुम्हारा घाप पापा है, पु०—तू तो बड़ी क्रोधित है, तुझे धिक्कार । स्त्री—तू व्यर्थ का बकता है, तुझसे बढ़कर मोधी कौन है ? इस प्रकार प्रति दिन कलह करने वाले स्त्रीपुरुषों को क्या सुख है ?

स्वायत्तमेकान्तहितं विधात्रः ।

विनिर्मितं छादनमहतायाः ।

विशेषतः सर्वविदां समाजे

विभूषणं मौनमपण्डितानाम् ॥१४०॥

प्रज्ञा ने मूर्खता छिपाने के लिए अपने वश का एक उत्तम उपाय बनाया है । यह यह है कि सर्वज्ञ पण्डितों के समाज में मूर्खों का घुप रहना ।

नाम ग्रन्थकृतां गृहाय विबुधोपाध्यायचर्चां कुरु

ग्रन्थानां भव सत्परिग्रहकृती स्पर्धस्व साकं बुधैः ।

नामाहस्तविचित्रचालनपरश्चोध्यैः सशब्दं हस—

मिच्छंश्चेद्बुधतां पुरो जडविद्यामन्यन्तमूर्खापि सन् ॥१४१॥

अत्यन्त मूर्ख होने पर भी तुम मूर्खों की सभा में पण्डित बनना चाहते हो, तो इन बातों को करो । ग्रन्थकारों का नाम लिया करा । विद्वान् पण्डितों की चर्चा करो, ग्रन्थों का संग्रह करा, विद्वानों की बराबरी करो, खूब जोर से हँसते हुए अनेक प्रकार की हस्तमुद्रा दिखाओ ।

निःशङ्कं वक्तुर्ध्वजदं कुरु विकटं स्वाननं शानमर्वा—

श्लाघ्यरवारमानमन्याममथहम सहसा किंचिद्दृष्टीलमुत्का ।

साधय्य सन्दृष्टाय पठ विवदं समुत्कर्षयन्मूर्खं लोकाः—

मिच्छेदश्चेन्पूरिमायं जडजनपुरतो मूर्खवृन्दारकोपि ॥१४२॥

मूर्ख शिरामणि होने पर भी मूर्खों के सामने विद्वान् बनना चाहते हो, तो यह करो । जो मन में आवे, निःशङ्क हो

कर यो लो, अपने जानी होने का अहंकार मुँह बनाकर दिखाओ। अपनी प्रशंसा करो और दूसरों की निन्दा। कुछ बुरी बातें कह कर हँसो। तथाकथं साथ सपटनसाथ पढ़ो, मूर्खों को उत्तेजित करते हुए घियाद करो ।

व्यासादीन्कविपुङ्गवाननुचितैरचापैः सलीलमप-
 नु रथैर्वन्त निमीज्य लोचनयुतं श्लोकान्मगर्जं पठन् ।

कार्यं स्वीकुलं यन्परैर्विरचितं सार्धं स्व साहं कुर्य-
 यं यम्यं सैः सुतेन रदितः पाण्डित्यमानुषलान् ॥१७॥

व्यास आदि कवि श्रेष्ठों की अनुचित शब्दों से निन्दा करो, आँखें मुँह कर जोर जोर से यो लो, अहंकार के साथ श्लोक पढ़ो, दूसरों के बनाये कार्यों की अपना बतलाओ, विद्वानों की घराबरी करो, यदि शास्त्र - ज्ञान के बिना विद्वान् बनना चाहते हो तो इन कामों को करो ।

नास्माकं जननी तथोज्ज्वलकुला सधूर्ताग्निपाशां कुला—
 दूषा काचन कन्यका तलु मया तेनास्मि ताताधिकाः ।

अस्मन्मवालकमग्निनेपमग्निनी मिथ्याभिशास्ता परै-
 स्तास्तं सन्धवश्चान्मया स्वगृहणी मेयस्वपि प्रोज्झिता ॥१८॥

मेरी माता उच्च कुल की नहीं है, पर मैंने भेष भोजियों के कुल की कन्या व्याही है, इससे मैं अपने बाप से बड़ा हूँ। मेरे साले के भांजे की बहिन पर मिथ्या कलङ्क लगा है, उसी संवन्ध का विचार करके मैंने अपनी प्यारी स्त्री का परित्याग कर दिया ।

भूतारे खलुसंतारे सारंश्चतुर मन्दिरम् ।

हरां हिमालयं शंते विष्णु शंते महोदधी ॥१९॥

इस ब्रसार स'सार में ब्रह्मसुर का घर हो एक सार है ।
 इसीसे महादेव हिमालय में रहने हैं और विष्णु समुद्र में ।

कमले कमला शोते हरःशोने हिमालये ।

क्षोराशो च हरिः शोने मन्दे मन्कुशशङ्कया ॥२०॥

लक्ष्मी कमल में शयन करती हैं, शिव जी हिमालय में
 शयन करने हैं और विष्णु क्षीर समुद्र में शयन करते हैं,
 मालूम होता है कि इसका कारण खटमलों का भय ही है ।

स्वर्ग पञ्चमुक्तः पुण्य गजाननपञ्चाननी

दिगम्बरः कथं त्रीपेदश्च पूर्णा न चेदगृहे ॥२१॥

दिगम्बर — महादेव स्वर्ग पांच मुखवाले हैं, उनका एक
 पुत्र गजानन — हाथों का मुखवाला है और दूसरा पञ्चानन —
 छः मुख वाला है, ये दिगम्बर कैसे जीते, यदि उनके घर भद्र-
 पूर्णा न होती ।

अथ पदो मे पितुरङ्गभूयः

पितामहाद्यैरपमुनःपीवनः

अलङ्कुरिष्यम्यथ पुत्रिरीगकान्

मयापुनाः पुष्पबदेव धार्यते ॥२२॥

यह पद मेरे पिता के शरीर को भूषित कर चुका है, यह
 चत्वर जप नया था मेरे पितामह आदि ने इसका उपयोग
 किया था, यह हमारे पुत्र और पौत्रों को भी शोभित करेगा,
 मैं पुष्प के समान ही इसको धारण करता हूँ ।

आवृण्व पाणिमग्नधिं भव सृष्टिं चैरवा

मंत्राग्मनां प्रतिपदं पूजनेः पवित्रे ।

ताम्रपरी मयिनायुः समदाय यदा

हा हा इतोऽहमिदं रादिनि विष्णु शर्मा ॥२३॥

मंत्र-जल के छींटों से अनिय मस्तक पर घेंश्या नें मारते
मययिना हाथ रखें, बड़े जोरों से धुका और मारा, इससे
विष्णु शर्मा हाथ हाथ करके रोना ड़े ।

भावाण्डुराः शिरसिवाचिरलो कपोले

इन्नावली विगलिना नच मे विवादः

पृथोदूभो मुवनयः पथि मां विलोक्य

गानेति माचयता इति मे विवादः ॥२४॥

मेरे सिर के बाल झड़ते हो गये हैं, गालों पर झुरियां
पड़ गयी हैं, दांत गिर गये हैं, पर इनके कारण मुझे कष्ट नहीं
है । मुझे सब से बड़ा कष्ट इसमें है कि राहों में स्त्रियों मुझे
देख कर धापा कहती हैं ।

भक्तुः पाण्डति वाहनं गणपतंराशुं सुघातः कपी

तत्र क्रोधवतः शिखी च गिरिवासिहोऽपि नागाननम्

गौरी जम्बुसूतामसूयति कलानाथं कपालानली

निर्विष्यः सपपी कुटुम्ब कलहादीशोऽपि डालाडलम् ॥२५॥

भूखा सांप गणेश के चूहों को खाना चाहता है, उस
सांप को कार्तिकेय का मयूर खाना चाहता है, पार्वती का
सिंह गजानन को खाना चाहता है । पार्वती गङ्गा से द्वेष
रखती है और चन्द्रमा से भक्ति द्वेष रखता है, इसी तरह
से दुःखी होकर महादेव ने भी विष पी लिया है ।

दृष्ट्वा चङ्गान्नजनुमुदिनान्तरं

पञ्चाननेन भङ्गता चतुराननाय

शाङ्गैरुचर्मभुजगाभरणं समस्तम्,

दत्तं निशम्य गिरिवाहसितं पुनातु ॥२६॥

पदा । न - कार्तिकेय के जन्म से प्रसन्न होकर पंचानन—
महादेव ने चतुरानन - ब्रह्मा को अपना व्याघ्रचर्म और सर्प
का आभूषण दिया, यह सुन कर पार्वती हँसने लगी ।

रामायचय मेदिनीं धनपतेर्वीजं बलाल्लाङ्गलं
प्रेतेशाम्महिषं तवास्ति वृषभः काळमिशूलादपि
शक्राहं तव पाशदानकरणे रक्षन्दांस्ति गोरक्षणे
निगताहं तव वाचनात् कुरु कृषिं मिथ्यादर्श मा वृषा ॥२६॥

पार्वती ने शिव से कहा—तुम्हारा भीख माँगना देखकर
मैं बहुत दुःखी हूँ, इस कारण तुम अब खेती करो, भीख
माँगना छोड़ दो, परशुराम से पृथिवी ले लो, कुबेर से पीछ,
चलदैव से हल, यमराज से मैसे, वेल तुम्हारे पास हैं ही,
मिशूल का कार बमया लो, हम तुम्हें भक्षण देंगी, कार्तिकेय
तुम्हारे पशुओं की रक्षा करेगा । फिर भीख क्यों माँगते हो ?

जाति

भावातो भवतः पितेति सहसा मानुर्निशम्योदिनं
धूलीधूतरितो विद्याय शिशुभिः कीद्वारसाम्प्रक्षुणात् ।
दुरात्स्मेरमुखः प्रसार्य ललितं बाहुद्वयं बालको
नाक्यस्य पुरः परैति जगता प्रीत्या रक्षम्यर्धरम् ॥१॥

तुम्हारे पिता भाये यह माता की बात सुनकर धूल में
लिपटा हुआ अपने साथी बालकों के साथ का खेल छोड़कर
दूर ही से हँसता-हुमा दोनों हाथ फैलाकर कुछ खोलता हुआ
बालक बड़े प्रेम से किसी अन्य मनुष्य के सामने नहीं
जाता ।

इत्युक्त्वा मदमा प्रचक्षद्गृहिणीवास्येन निर्गन्धिनः

स्कन्धम्यमगन्तान्मुष्टिबिम्बः पान्यः पुनः प्रगन्धिनः ॥२४॥

धर्मो मार्ग, मैं थका बिदेशी हूँ मुझ पर दया करो, द्वार के चौकड़े के कोने में गनवर सोकर मैं प्रातःकाल चला जाऊँगा। इतना कहने पर वह गृहिणी के द्वारा दुतकारा गया वह पथिक जो कन्धे पर एक मुठ्ठी पुआल लिये हुआ था, वह वहाँ से चला गया।

गद्यति हंसति च नृम्यति हृदयेन पृथां प्रियो विचिन्तयति

समविषमं न च विन्दति गृहगमनममुन्सकः पथिकः ॥२५॥

पथिक घर जाने के लिए उत्सुक है, उस उत्सुकता में वह गाता है, हँसता है, नाचता है, हृदयस्थित प्रिया का ध्यान करता है और उसे ऊँच नीच का ज्ञान नहीं है।

भद्रं ते सद्गुणं यद्वज्रगजैः कीर्तिस्तबोद्गुण्यते

स्थाने रूपमनुत्तमं मुहूर्तिना दानेन कुर्यात् त्रितः

इत्यालोक्य भूरा दूशा करुणया शीतानुरे च स्मृतः

पान्धेनैक पत्ताल मुष्टिस्त्रिणा गवांयते हालिकः ॥२६॥

पथिक गण तुम्हारी कीर्ति का वर्णन करते हैं, यह तुम्हारे लिए सर्वथा उचित है, सुन्दर रूप भी तुमने पाया है, दान तुमने कर्ण को भी जोत लिया है, शीत से ठिठुरा पथिक ने एक मुठ्ठी पुआल लेने की इच्छा से किसान की कीर्ति की और अपनी स्तुति सुनकर वह अपने को बड़ा समझने लगा।

प्राप्तो कली राज्ञिनि पापंस्तुभ्ये
धनेन हि जीवितमेव रक्षम् ।
हि नैव लामो यदि सौमित्रेन
मुष्येत मेषो हृतसर्वलोमा ॥

गच्छ प्रवे विरम धैर्यं धियः किमत्र
मिथ्या कदम्बसि किं पुष्पाभिमानः ।
दूरादपासगुणमचिंत्योपसैम्यं
हैम्यं यदादिशति तद्रूपमाचरामः ॥

कः भ्रातृप्रसितोऽपि वीर्यं वरुणं किं तपः सेवाशया
 कः संपत्तिं मृपतिः कथं मित्रगुणैः के ते गुणा ये सताम् ।
 किं तैरप्य जुहोति परे धनं वर्जं किं वा स्वया न भुङ्क्तम्
 पूजयन्ते शत्रुमसतिस्तिप्रमृतयः कण्यैजयाः सेवकाः ॥

भारत, कहाँ चले ? राजधानी जारहा है । किस लिए ? सेवा के लिए । यहाँ किसकी सेवा करेंगे ? राजा की । कैसे ? अपने गुणों से । ये कौन गुण हैं ? जो सज्जनों के होते हैं ? इस समय इनसे क्या होगा ? क्यों ? भर्त्सा, घन में जाओ । क्या

तुमने नहीं सुना है फिर शठ, मन्सरी और चुगल संघर्षों का
यहाँ आकर होता है ।

शीलं शैलतपान्पन्यमिन्द्रां निर्दहयतां वक्रिणा
मा धौर्ध्वं जगति धुनस्य विकल्पलेशस्य नामान्यहम् ।
शौचे वैरिणि बन्धुमाशु निवतन्वयोस्तु मे सबंदा
येनैकेन विना गुणास्तृणवुमप्रायाः समप्ता इमे ॥

पर्यंत से शील गिर जाय, कुल भाग से जल जाय, उस
शास्त्र का नाम भी भय में न सुनूँ जिसके लिए व्यर्थ परिश्रम
किया है, इस धीरेन शूरता पर शाय ही बन्धु गिरे, सिर्फ एक
धन होना चाहिये, जिसके बिना ये समस्त गुण घास भूसे के
समान है ।

धर्मः प्रमज्जितस्तपश्च कलितं मन्यं च दूरं गतं
पृथ्वी मन्दकणा जनाः कपटिनो मौढ्ये स्थिता ब्राह्मणाः ।
राजा दण्डपरो विचाररहितः पुत्राः पित्रदैरिणो
भार्यामनृविरोधिनी कलियुगे धन्या जना ये मृताः ॥

धर्म ने सन्यास ले लिया, तपस्या भी चला गया, सत्य
तो बहुत दूर गया, पृथिवी की उपजाऊ शक्ति घट गयी,
कपटी हाने लगे, ब्राह्मण मूर्ख हो गये, राजा बिना विचार के
दण्ड देनेवाले हुए पुत्र पिता से द्वेष करने लगे, भार्या पति
विरोधिनी हुई, इस कलियुग में जो मर गये, वे ही धन्य हैं ।

आपत्तिः

बाण्डालश्च दृदिदश्च द्राविमी पुरुषौ समौ ।
बाण्डालश्च न गृह्णन्ति दृदिदो न पण्डिताः ।

चाण्डाल और दरिद्र ये दोनों बराबर हैं, चाण्डाल ग्रहण नहीं करता और दरिद्र देता नहीं ।

इहि गच्छ पतोत्तिष्ठ वद मौनं समाचर ।

इत्यमाशाप्रदप्रस्तौः क्रोडन्ति धनिनोधिभिः ॥

भायो, जाग्रो, गिरो, उठो, बोलो, छुप रहो, इस प्रकार आशा प्रद से प्रस्त याचकों से धनी लोग खेलते हैं ।

शक्तिमश्या कश्चन च वयोसीताश्च योक्तिः

मनसः प्रातिकूल्यं च जरायाः पञ्च हेतवः ॥

बुढ़ापे के पांच हेतु हैं, ठंडा लगना, घुरा अन्न खाना, अधिक उमर की स्त्री और मन के प्रतिकूल स्थिति का सामना ।

दानं न दत्तं न तपश्च तप्तं

नराधितो शङ्कर वासुदेवौ ।

भग्नौ रणे वा न हुतश्च कायः

शरीर ■ प्रार्थयसे सुकानि

दान नहीं दिया, तप नहीं किया, शंकर और वासुदेव की आराधना भी न की, अग्नि में या रण में शरीर का हवन भी नहीं किया शरीर, फिर तुम सुख की आशा क्यों करते हो ?

भद्रे याणि कुश्व तावदमला वर्णानुपवीं मुले

धेयः स्वास्थ्यमुपैहि याहि गुरुते प्रज्ञे स्थिरार्थं भग्नः ।

रुग्ने तिष्ठ पताह मुक्तो क्षणमहो नृप्ये पुरः स्वीयतां

पापे पापदह मयीमि धनिर्न देहीति दीनं वचः ॥

भद्रे याणि, सुन्दर शब्दों को मुंह में समा रखो, चित्त स्थिर हो जाओ, यद्व्यन तुम आओ, बुद्धि स्थिर होओ,

लज्जे मुँह फेर कर ठहरो, तृष्णे तुम थोड़ी देर के लिए
भा जाओ, जब तक पापी में धनियों के सामने "दो" के
दीन बचन कहें ।

महोगे मराठीव सूपकधूम्रं पोव मार्जारिका
मार्जारीव शुनी शुनीव गृहणी वाच्यः किमन्यो जनः ।
इत्यापन्नशिश्नसन्विजहतः संश्लेष क्रिन्सीरवै-
रुं तातन्नुवितानसंवृतमुखी शुक्ली चिरं रोदिति ॥

मेरे घर की चूहिया मच्छर के समान हो गयी है, बिती
चूहिया के समान हो गयी है, बिती के समान कुत्ती और
कुत्तों के समान गृहिणी हो गयी है, पेसो देना मैं दूसरों के
लिए क्या कहा जाय ? इस प्रकार दुःखी लड़कों को प्राण
छोड़ते देख कर मकरी के जाले से मुँह छिपा कर मिट्टी व
शब्द के द्वारा चूल्ही रो रही है ।

तृणादपि लघुस्तूलस्तूलादपि च वाचकः ।
वायुना किं न भीती सौ मामग्नं प्राप्येदिति ॥

हाँ तृण से भी हल्की है और वाचक तृण से भी हल्का
है । फिर भी वायु उसे उड़ा कर नहीं ले गया, यह इस हर से
कि कहाँ यह भुक्त से भी माँगने न लग जाय ।

सेवा-पद्धति

इयं जहाति सेवकः सुखं मानमेव च ।
वदधमधमीदतं तदेव तस्य हीयते ॥

सेवकः सुख और मान को छोड़कर
धन...

पुंसावजन्म साफल्यं वदनायत्तवृत्तिता ।

ये पराधीनजन्मानस्ते चेज्जीवन्ति के मृताः ॥

किसी के अधीन रहना न पड़े, यही जन्म की सफलता है, जिनका जन्म पराधीनता में बीतता है वे यदि जीवित, हैं तो मरा कौन है ।

सेवकादपरी मूलं लौलोक्षं पि न विपद्यते ।

दिने दिने नमन्मोहादुन्नतिं योभिद्यान्नति ॥

सेवक से बढ़कर मूल इस त्रिलोक में दूसरा नहीं है, जो दिन दिन मयता जाता है पर उन्नति चाहता है ।

काके शौचं यत्कारेण सत्यं

होवे पैर्यं मयये तत्त्वचिन्ता ।

ज्ञाने भ्रान्तिः क्षीयु कामोपशान्ती

राजा मित्रं केन दूरे भूतं वा ॥

कौण में शुद्धता, जुबारी में सच्चाई, नपुंसक में धीरता, शगयी में विचार, ज्ञान में भ्रम, स्त्रियों में कामशान्ति और राजा का मित्र होना किसने देखा या सुना है ।

पहेलो

भपरी दूरगामी य साक्षरी न य पण्डितः ।

भमुखः स्फुटवक्ता य यो ज्ञानाति स पण्डितः ॥१॥

चैरं नहीं है, पर बहुत दूर तक चला जाता है । साक्षर है पर पण्डित नहीं, मुंह नहीं है, पर साफ़ साफ़ बोलता है, इसको जो जानता है वही पण्डित है । उत्तर— पत्र ।

बने जाता धन त्यक्त्वा बने विष्टति नित्यशः ।
पण्यस्त्री न तु सा वेश्या यो जानाति स पण्डितः ॥२॥

धन में उत्पन्न हुई है, धन में ही रहती है, यह बाजार की
दो-पर वेश्या नहीं । इसे जो जानता है वह पण्डित है ।
—नौका ।

गोपालो नैव गोपालः शिशूली नैव शंकरः ।
चक्रपाणिः स नो विष्णुर्यो जानाति स पण्डितः ॥३॥

गोपाल है पर गोपाल (रुष्ण) नहीं है, शिशूली है ।
शंकर महादेव नहीं है, चक्रपाणि है, पर विष्णु नहीं है ।
जो जानता है, वह पण्डित है । उत्तर--सांड ।
'विष्ट' शिवनिर्मात्य वमत' शवकपटं ।

काकविष्टा समुत्पन्नः पक्षैतेति पवित्रकाः ॥४॥

जूठा, शिव का निर्मात्य, धान्त किया हुआ, मुर्दे का
कपड़ा, कौए की बिच्छा से उत्पन्न ये पांच धस्तु पवित्र हैं ।
क्रम से उत्तर--दूध, गंगाजल, मधु, रेशम और घट ।

काचिन्मृगाक्षी प्रियविषो गन्तुं निशा पारमपारयन्ती ।
बद्धगायुमादाय करेण्वीषामेणाद्रुमासोक्त्य शनैरहासीत् ॥५॥

एक स्त्री पति विरह के कारण रात काटने में असमर्थ
हो गयी । भतपय गाने के लिए उसने हाथ से घीणा उठायी,
पर चन्द्रमा को देखकर उसने घीणा धीरे से रख दी । घीणा
रखने का कारण यह है कि मृगाङ्गु (चन्द्रमा) के गोद में रहने
वाला मृग, यदि मेरा गाना सुनने के लिए चन्द्रमा को छोड़
कर भागे, तो चन्द्रमा निष्कलङ्क हो जायगा और यह मेरे
मुख की परायरी करने लगेगा ।

अरुणपालिकृतः कण्ठे नितम्बस्थलमाश्रितः ।

गुरुणा ससिधानेषु कः कूजति मुहुर्मुहुः ॥६॥

तरुणी ने गले में आलिङ्गन किया है, जो नितम्ब (कमर के पीछे का भाग) पर स्थित है, गुरुओं (भारी वस्तु) के समीप भी कौन बारम्बार बोलता है । उत्तर--आधा भरा घड़ा ।

वृक्षाग्रवामी न च पक्षिराजस्त्रिनेत्रधारी न च शूलपाणिः ।

स्वाम्यधारी न च सिद्धयोगी ब्रह्मं च विभूष्य घटो न मेघः ॥७॥

वृक्ष के अग्रभाग में रहता है, पर गड़गड़ नहीं है, त्रिनेत्र है पर शिव नहीं है, छाल का, यत्न धारण करता है पर सिद्ध या योगी नहीं है, जल धारण करता है पर न घड़ा है या न मेघ । उत्तर--नारियल ।

एकचक्रुर्नकाकोऽथ बिलमिच्छन् पन्नगः ।

क्षीयते वर्धते चैव न समुद्रो न चन्द्रमाः ॥८॥

उसको एक आँख है पर वह कौया नहीं है, बिल छूँदता है, पर सर्प नहीं है, घटता बढ़ता रहता है, पर न समुद्र है और न चन्द्रमा ।

अस्थि नास्ति शिरो नास्ति बाहुरस्ति निर्गुलिः ।

नास्ति पादद्वयं नाद्यर्पणमालिङ्गति स्वयम् ॥९॥

हड्डियाँ नहीं हैं, सिर नहीं है, बाहु हैं पर अंगुलि नहीं है, दोनों पैर भी नहीं हैं, पर समस्त अंगों को वह स्वयं आलिङ्गन करती है । अंगरक्षा ।

गरुडारीसमुत्पन्ना साक्षी देहविषयिता ।

अमृती कुप्यते शब्दं जातमात्रा विनश्यति ॥१०॥

स्त्री और पुरुषों से वह उत्पन्न होती है, वह स्त्री है पर
 उसके शरीर नहीं है, उसके मुँह नहीं हैं, पर वह शब्द करती
 है और उत्पन्न होते हो नष्ट हो जाती है । उत्तर—चुटकी ।

• • • इन्दीर्घाः शिलामयी निर्जोको बहुभाषकः ।
 गुणस्थितिसमृद्धोऽपि परपादेन गच्छति ॥११॥

उसके दाँत नहीं हैं, पर वह पत्थर खाता है, उसके
 नहीं हैं पर वह बहुत बोलता है, गुण (सूत) से युक्त है,
 दूसरों के पैरों से चलता है । उत्तर—जूता ।

न तस्याऽऽदिनं तस्याऽन्तो मध्ये वसत्य तिष्ठति ।
 तवाऽप्यस्ति ममाऽप्यस्ति यदि जानासि तद्वद ॥१२॥

न उसकी आदि है और न अन्त, (यः मध्ये तिष्ठति) ।
 मध्य में रहता है । वह तुम्हारे भी है और हमारे भी । यदि
 जानते हो तो बतलाओ । नयन

अनेकसुविर्वाद्यं कान्तं च श्रुतिः शिखम् ।
 चक्रिणा च सदा राध्यं वो जानाति स पण्डितः ॥१३॥

जिसमें अनेक घिल हैं, जिसकी आदि में ध है और अन्त में
 क है और वह ऋषि का नाम है, साँप उसकी आराधना करते
 हैं, जो इसको जानता है वह पण्डित है । उत्तर—बाल्मीक

वने वसति को बीरो वोऽस्थिमांसविचर्जितः ।
 भसिदङ्कुले दार्यं कार्यं कृत्वा वनं गतः ॥१४॥

वह कौन पीर वन (जल) में रहता है, जिसके हाँड़ मांस
 नहीं हैं, जा तलवार के समान काम करता है और काम
 करके वन (जल) में चला जाता है । कुंहार का लोग

अपूर्वोऽयं मया दृष्टः कान्तः कमललोचने ।

शोऽन्तरं यो विजानाति स विद्वान्नात्र संशयः ॥१५॥

मैंने यह अपूर्व (अ जिसके पहले हो), कान्त (जिसके अन्त में "क" हो) देखा, जिसके मध्य में "शो" है इसको जो जानता है वह पण्डित है, इसमें सन्देह नहीं । उत्तर—अशोक ।

भागेन हीनं जलधातृशयं मध्येन हीनं भुवि वर्णनीयम् ।

भस्तेन हीनं ध्वनते शरीरं हेमाभिधः सख्यमात्मनोऽनु ॥१६॥

भाग्य अक्षर से हीन होने पर वह समुद्र में भट्टश्य होता है, मध्यहीन पृथिवी में रहता है, अन्त से हीन होने पर शरीर का एक धंग होता है वह हेम नाम वाला मुम्हारा कल्याण करे । उत्तर—करज ।

सदारिमण्यापि न वैरिपुत्रा नितान्तरत्नापि सितैव नित्यम् ।

पयोकवादिभ्यपि नैव दूती का नाम कान्तेति निवेदयाद्यु ॥१७॥

जो सदारिमण्या अर्थात् सदा अरियों के मध्य में है अथवा जिसके मध्य में सदा "रि" है, पर वह वैरिपुत्र नहीं है, नितान्त रक्त है पर सित (श्वेत या स अक्षर से युक्त) है कही या न कहती है, पर दूती नहीं है, कान्ते, शीघ्र पतखामो यह कौन है । उत्तर—सारिका ।

चक्रो त्रिशूली न हरो न विष्णुर्महाबलिष्ठो न च भीमसेनः ।

स्वच्छन्दचारी कृपतिर्न योगी सीतावियोगी न च रामचन्द्रः ॥१८॥

चक्र और त्रिशूल धारण करता है पर न तो विष्णु है और न शिव, बहुत बलवान है पर भीमसेन नहीं है, रच्छा पूर्णक चला करता है, पर न राजा है न योगी, सीता (जानकी या हळ) का वियोगी है, पर रामचन्द्र नहीं है । उत्तर—सांड ।

नवोढा ।

कांची दामनि वेशयन् वितनुते वासः श्रयः सुधु दौ-
 हारं वक्षसियोजयन् करतलं घणे कुचांभोरहे ।
 जल्पन् चादु वचोघरं घयति यन्त्रेयान् कुतो विस्मयः-
 पांशुं वक्षुपि विक्षिपन् यदि धनं गृह्णाति पाटधरः ॥१९॥

प्रियतम करधनो ठीक करते हुए नायिका का घल ढाला
 कर देता है, हार पहनाते हुए अपने हाथ स्तनों पर रखता है,
 मीठी मीठी बातें करता हुआ मधरपान करता है, इसमें क्या
 आश्चर्य है, चोर तो आँखों में धूल डालकर धन उठा ले
 जाता है ।

बलानीता पार्श्वं मुखमभिमुखं नैव कुन्ते
 पुनामा मूर्धनं हरति बहुशरशुभनविधिम् ।
 हृदिन्यस्तं हस्तं क्षिपति गमनारोपितमना
 नवोढा वोढारं मुखयति च संतापयति च ॥२०॥

बलपूर्वक जय यह पास लायी जातो है तब सामने मुँह
 नहीं करती, मस्तक कंधा पर चुंबन में घिस डालतो है, हृदय
 पर हाथ रखते ही यह जान के लिए तैयार हो जाती है, इस
 प्रकार नवोढा पति को सुरों भो करती है और सन्तापित
 भी करती है ।

मातः केलि गृहं न यामिशयितुं करमाप्तुं चम्पानने
 जामाता तत्र निर्दयो निजमुखापाशेन मां पीडति ।
 भद्रानि क्षतते निजैः करहृद्दैर्दत्तैर्दशम्यांष्टके
 गोपीदग्धविमोक्षणं च कुप्यति निजं न सेवे निशि ॥२१॥

मा, अथ मैं फेलिगृह में सोने न जाऊँगी । उसने पूछा, क्यों ? नयोदा ने कहा, तुम्हारा दामाद बड़ा निर्दयी है, वह मुझे अपने भुजपाश से दबाता है अपने नखाँ से वह मेरे बगों को क्षत विक्षत करता है, आँठ काटता है, वस्त्र भी……मैं रात से न सकी ।

धैर्यं धेदु मुने हतेनशरते भतु'र्भयं मा कृपा-

श्चेष्टारस्तस्य सदस्य मौचनवतो नाञ्जावधाः कामदाः ।

वाच्य'नैव कदापि कस्य निकटे रीतिसत्त्वयं वर्त'ते-

कीर्णामीदृशमाकरोनवपिता जानीह पूर्वदि मां ॥४४॥

माता ने उत्तर दिया, पेटी धैर्य चारण करो, पति का भय न करो, उस युवक की अनेक प्रकार की चेष्टाओं को सहो, वह बात किसी दूसरी उमह न कहना, स्त्रियों की ऐसी ही रीति चली आयी है, तुम्हारे पिता ने भी पहले मुझसे ऐसा ही किया था ।

दीर्घाङ्गुरा स्फुरति पश्यति केलि कीते

जाहेनिवेशत मुणीव सखी च कारित ।

हार्थ विचित्र्य ययमानशर्माक वाश

नार्थ निषेदुधुमनिषेदुधुमपिप्रशमः ॥४५॥

दीर्घक जल रहा है, मीठा शुक देय रहा है, लिटकी में मुँह लगाये सखी भी खड़ी है, इस प्रकार सोचकर लज्जा के कारण थाला पति को न निषेध हो कर सखी और न अनिषेध ।

प्रोषित भर्तृका

रोमं चो मधुपः पिकः परधृतो रंभाधुपारी मरु
 कीरोभाषितवाचयमात्रपञ्चमीदः पयोरो मयः
 हंसः सततपक्षपाल निरतस्तस्माद्वचस्यामिम
 सुवचार्थं ग्रहिणोभिन्नेन कटिन रत्नावाच कानाव ले ३१३

समर मधु पीने वाला है, पिक दूरारी के द्वारा पोषि
 हुआ है, वायु रम्पू (भयसर) दूँ हनेपाला है, शुक कही रं
 को कहने में हो मधुर है । मेष जल है, हंस रावा पक्षाल
 करने में लगा रहता है, फिर मैं भयनी यह भयला बनता का
 कटिन यिन प्रियतम के पास किमको भेजूं ।

माकावालीपुत्रधनमयी भीष्मकीदार बहिः
 कोपीवागे समवति हरी सुधु वयमिनीव ।
 अल्पमृ मृसा डिमविधमयी वनंतेवानयेति
 शानुवाहोरह वरव वागिमूचं मयानि ३१४

कमल दल की बनार्यी माम्मा भीर मेनियों का ह
 दोनो उम की करपनी बन गये हैं, भीर क्या कहा मय !
 उमकी माया जल रही है कि नहीं, इन याम का जानने के
 लिए बलाष्ट का कंकण वादुभुज में लमा गया है । भयनी
 तुम्हारे शिरोम में वह बदुम नुचम्पी हा गयी है ।

समरकं हृदिवाचनी मरुन केदना भूयसी
 कोमनम लवणमर्मा मरुदम मनेरमना ।
 मयजनिममदिदुमं किमिति काववावाचम
 लवणमरुन वागिने किमिति वा हृम न सुपु ३१५

मेरे हृदय में दारुण कामवेदना देकर मेरे स्वामी इसी
[म्हारे मार्ग से गये । कौआ, उस समय तुम उनके सामने
ले क्यो नही ? अरे घर की तोती, तुमने छोका क्यो नही !

खंडिता

मातस्तेनिशिजागरोममपुनेने'ब्राह्मिणीयिमा-

निस्सीत' भवता मधु प्रविततत्वाधूर्मित' मे मनः ।

आम्यदृष्ट्वाधनेनिकु'जभवने सख'स्वया श्रीफल'-

पंचेषुः पुनरेषमां बहुगरेः क्रूरैः शरैः कृतंति ॥१॥

छी कहती है, रात को आपने जागरण किया है, और
मेरी भावें लाल होगयी हैं, आपने रात को खूब शराब पी है
और मेरा मन धूम रहा है । झमर गूँजनेवाले लतागृह में
आपने फल पाया है, पर वह कामदेव कठिन शरी से मुझे
लता रहा है ।

मातः मातृकागतीमिन्नित्यानिनि'द्विहा चक्षुषो-

मैदायामम गौरव' स्पष्टत' प्रोत्पादित'लाघव' ।

किंतपच कृत' स्वपारमथमीमु'क्तमवागम्यते

दुःख' तिष्ठति यक्षपथ्य मधुनाकटांसिमवधूत्यति ॥२॥

इस समय थड़े मातःकाल आये हो, रात भर तुमने मुझे
जगाया, मुझ मूर्ख का तुमने गौरव नष्ट किया, मुझे हल्का
पनाया, क्या तुमने नहीं किया ? प्यारे, अब मैंने भी भय छोड़
दिया, जाती हूँ और अपने हित की जो बात मैं करूँगी, वह
तुम छुनोगे ।

स्वाधीनपत्तिका

अस्माकं सखि वाससी न कचिरे प्रैवेवकं नोऽन्यत्र

नो वक्तांगतिरुद्धत न हसित नैवाश्लिङ्गभिन्मदः ।

किंन्वेपिजना वदन्तिसुमगोप्यस्याः पतिर्नान्यतो-

दृष्टिं निक्षिपतीति विप्रमियता मन्थामहेदुःखित ॥१॥

सखि, तुम्हारे कपड़े अच्छे नहीं हैं गले का हार भी सुन्दर नहीं है तुमारी बाल भी बँठ की नहीं है हँसी भी रसोली नहीं है और किसी बात का भी अहंकार नहीं है । पर दूसरे भी यह बात कहते हैं कि इसका पति दूसरी ओर नहीं देखता । मैं इसीसे खूब की अपेक्षा अपने को भाग्यवान् समझती हूँ ।

इवम् : पश्यति नैव पश्यति यदि न् भग्नं वक्त्रं क्षणा-

स्मर्मच्छेदवद् प्रतिक्षणमसौ न तेन वीदावयः ।

अप्यासामपि किं वशीमि चरितं स्पृष्ट्वा नमो वेपते

कतिः स्निग्धदृशा विलोकयति सामेतावदागः सखिः ॥२॥

सास मेरी ओर देखती ही नहीं, देखती भी है तो मांखे हँदी करके । ननद प्रतिक्षण हृदय के जलाने वाली बात बोलती है, भीरों की बात क्या कहूँ, उनके चरित का स्मरण के ही हृदय काँप जाता है । सखि, मेरा अपराध यही है कि प्रियतम मुझपर प्रेम करते हैं, मुझे प्रेम की दृष्टि से देखते हैं ।

अभिसारिका

विप्रेतकीर्त्यादपि विप्रघातीतिभावे निराशया-

किं तद्वत् असद्वद्भिमारसे सादमं नाथ तस्याः ।

इति स्मार्त स्मार्त दरदलित शीतयु तिरुचौ

सरोजालो शोण दिशिनयमकोण विकिरति ॥४४॥

क्या यह मार्ग मैं डांक आयो जो कुपित सर्पिणी के तरण भयानक हो गया है ? कुल के नियम पालन करनेवालों : कितने फटोर पचन मैंने न सहे । इन बातों का स्मरण करके कमलाक्षी उस दिशा की ओर लाल भाँखों से देखती : जिस दिशा में चन्द्रमा थोड़ा उदित हो रहा है ।

सिद्ध वसनमीर्यतवपुनिनीरुचोलभ्रमा-

भ्रमाष्टगमदाशयामलवज्रवः सेवितः ।

करणे एतिचोषितः स्वजन शंकया दुर्जनः

परं परम पुण्यतः सखि न लघितादेहली ॥४५॥

नील वस्त्र के झम से मैंने श्वेत वस्त्र पहन लिये, कस्तूरी के झम से मलय चन्दन का उपयोग किया । स्वजन समझ कर दुर्जन को हाथ से जगाया । पर सखि ! भाग्य की पात है कि उस समय तक भी मैं देहली के बाहर नहीं गयी थी ।

इह जगति रतीशयक्रियाकौशलिन्याः

कति कति न निशोये मुञ्चुवः संचरन्ति ।

प्रमत्तुविधि हताया जायमानस्मितायाः

सहचरि परिपथीदंतदंताशुरेव ॥४६॥

इस जगत् में कामकला में कुशल कितनी स्त्रियाँ रात को नहीं घूमती हैं, पर मैं ऐसी समझी हूँ कि मुझे हँसी आ जाती है, भीर मेरे दातों की प्रभा ही मेरा दुश्मन हो जाती है।

सामान्य वनिता

चेत्पौरादपिशोकसेहिमरुघोरप्यचि'बोलमसे-

भोगीद्रादपिचेद्विभेषितिमिरस्तोमाद पित्रस्थसि ।

चेत्कु'जादपिदुयसे जलधर प्वानादपिदुयुभ्यकि

प्रायः पुत्रिहत्यास्मिदंत भविता न्वतः कलंकः कुपे ॥१॥

यदि तुम नागरिकों से शङ्कित होती हो, चन्द्रमा भी किरणों से भी लज्जित होती हो, साँपों से भी डरती हो, भयङ्कर से भी मयभोत होती हो, कताकुंज से भी घबड़ाती हो, मेघ गर्जन से भी क्षुभित होती हो, तब तो बेटी, मैं माँ हो गयी, तुमने कुल में कलंक लगाया ।

यद बाह्ये बाह्या तद्विभनियुना परिणज-

नपीठामो वृद्धापरिणय विधानं स्थितिरिति ।

। त्वपारब्धं जन्म क्षपयितुमनेनैकादिना

। न मे गोमे पुत्रि कश्चिदपि सती लांछनमभूत् ॥२॥

हम लोग घाल्यायस्था में बालकों से, यौवन में युवकों प्रौढ़ों और वृद्धों से भी श्वाह करतो हैं, यही रीति चली आयी है । पर तुमने इस एक ही पति के साथ जन्म पिताना निश्चय किया है । बेटी ! यद् तुमने क्या किया ? हमारे कुछ में आज तक सती होने का कलंक नहीं लगा है । हमारे कुल में आज तक कोई भी सती नहीं हुई है ।

दिवसे यदि कतित्रिंशति शतदिकाः पर रजनी ।

सामान्य वनिता

‘चेत्पौरादपिशंकसेहिमरुचोरप्यचि’पोलजसे-

भोगीद्रादपिचेद्विभेषितिमिरस्तोमाद विप्रस्पति ।

चेत्कुजादपिद्वयसे जलधर ध्वानादपिशुभ्यकि

शायः पुत्रिद्वयस्मिहत भविता न्वतः कलंकः कुले ॥१॥

यदि तुम नागरिकों से शङ्कित होती हो, चन्द्रमा की किरणों से भी लज्जित होती हो, साँपों से भी डरती हो, मन्थकार से भी भयभीत होती हो, कृताकुंज से भी घषड़ाती हो, मेघ गर्जन से भी क्षुभित होती हो, तब तो घेटी, मैं मारो गयी, तुमने कुल में कलंक लगाया ।

वयं बाह्ये बाह्या तद्विभनियुना परिणता-

नपीछामो वृद्धापरिणत विधान स्थितिरिति ।

स्वपारम्भ जन्म क्षयपिनुमनेनैकगतिना

न मे गोमे पुत्रि कविदपि सती लांछनमभूत् ॥२॥

हम लोग बाल्यावस्था में बालकों से, यौवन में युवकों मीठों और वृद्धों से भी, व्याह करती हैं, यही रीति चली आयी है । पर तुमने इस एक ही पति के साथ जन्म पिताना निश्चय किया है । घेटी ! यह तुमने क्या किया ? हमारे कुल में आज तक सती होने का कलंक नहीं लगा है । हमारे कुल में आज तक कोई भी सती नहीं हुई है ।

विप्रसे घटिकास्त्रिशक्तिं शब्दयुक्ताः पर रजनी ।

कलङ्कनगर सुवानस्तातविधातः किमाचरित ॥३॥

दिन में तीस घड़ियाँ होती हैं और रात में तीस, मगर में लाखों युवक हैं । हाय, विधाता ने यह क्या किया ?

अपरीक्षितलक्षणप्रमाणैरपराभृष्ट पदार्थसार्थतत्त्वैः ।

अपरीक्षितज्ञैवयुक्तिजालैरलमेतैरनधीततर्कविधौ ॥३॥

इन्से क्या होनेवाला है ? इन्होंने लक्षण और प्रमाणों की परीक्षा नहीं की है, पदार्थ तत्त्वों का इन्होंने ज्ञान नहीं प्राप्त किया है, जय की युक्तियों को इन्होंने बश में नहीं किया है ।

ज्ञानादिपरिक्षि चरयः कथमक्षकम्

अथ पक्षिलोऽप्युदयनः स च धर्ममानः ।

गंगेश्वरः शशधरो बहुवचनमया,

प्रथमर्धकक्षत इमे हृदयान्धकारं ॥४॥

ज्ञान-समुद्र गीतम, कणाद, पक्षिल स्वामी, उदयन, धर्म मान, गंगेश्वर, शशधर तथा और भी अनेक नवीन ग्रन्थकार अपने ग्रन्थों से हृदय का अन्धकार दूर करते हैं ।

नैयायिक-निन्दा

कर्मवृत्तिविचारणीमिहोभोगापवर्गप्रदा-

घोषं कंचन कंठशोष कण्ठं कुर्वेत्स्वमीताकिंकाः ।

ग्रन्थक्षं न पुनाति नाऽपहरते पापानि पीलुच्छया-

व्याप्तिर्नाऽवतिनैव पाप्मनुमितिनो पक्षता रक्षति ॥

ये नैयायिक कर्म और ब्रह्म के उस विचार का त्याग करते हैं जो भोग और मुक्ति देता है । केवल गला सुखाने वाला गर्जन करते हैं । प्रत्यक्ष पवित्र नहीं बनाता, पीलुवाद पापों को दूर नहीं करता, अनुमति भी रक्षा नहीं करती, पक्षता की भी यही दशा है ।

हेतुः कोऽपि विशिष्टधीरनुमितौ न ज्ञान युग्मं मर-

द्वाधोनेति च मोघवादमुखरा नैयायिकारचेद्विषयाः ॥

मेवस्यादमिषत्पलं बलिमुनो दन्ताः किर्यतस्तये-

त्येवं संतत चिन्तनैः धमजुषो न स्युः कथं पंडिताः ॥२॥

अनुमान में विशिष्ट बुद्धि हेतु है, दो ज्ञान नहीं, इस प्रकार
ती व्यर्थ को जाने जो चका करते हैं वे नैयायिक यदि पण्डित
तमके जाय तो भेड़े का बंडकोश कितने पल का है, कौर
के कितने दांत होते हैं, इस प्रकार की निरर्थक बातें जो
करते हैं वे भी क्यों न पण्डित माने जाय ?

न जिप्रत्याप्लाव'श्चरति न तद्'गान्धपि सहृद-

पुराण' नाद्री न गणयति किं चस्मृतिगणम् ।

पठन् शुष्कं तर्कं परपरिमवाधोकिमिरसौ

नदन्त्यायुः सर्वं निहतपरलोकार्यवतनः ॥३॥

नैयायिक येशों को सूँघते तक नहीं, वेदांगों को छूते भी
नहीं, पुराणों को एक बार भी नहीं देखते, स्मृतियों को तो
कुछ समझते ही नहीं, वादी को परास्त करने के लिए केवल
शुष्क पाठ पढ़ते रहते हैं । इस प्रकार अपनी समस्त आयु नष्ट
कर देते हैं, परलोक को भूल जाते हैं ।

प्रपञ्चैरस्तोकैः परिचितकुतकप्रकर्षणैः

परं वाचोवरयान्कतिपयपदोपान् विदधतः

सभायां वाचाटाः श्रुतिकटु रट'तो घट पटान्

न लज्जते म'दाः स्वयमपि तु जिह्वेति विबुधः ॥४॥

बड़े प्रगल्भों से इन्होंने कुतर्क प्रकरण का परिचय प्रा
किया है, कतिपय शब्द समूहों का ये प्रयोग करते हैं, का
काड़नेवाले घट पट आदि शब्दों का प्रयोग ये साथ में सु

करते हैं । पर ये मूर्ख हैं इसलिए लज्जित नहीं होते, क्योंकि लज्जित तो विद्वान् होते हैं ।

गणक-प्रशंसा

न ईशं न पित्र्यं च कर्माऽवसिद्धयेव यथाऽस्ति देशे मनुजयोतिषतः ।

न सारा न चारा यथानां प्रदायां न तिष्यादयो वा यत्तत्त्वम बुद्धाः ॥१॥

जहाँ ज्योतिष विद्या जानने वाले नहीं हैं वहाँ देवता और पितर सम्बन्धी कोई कार्य सिद्ध नहीं होते । क्योंकि वहाँ वालों को तिथि नक्षत्र आदि का ज्ञान नहीं होता ।

भाग्योः शीतकरस्वयाऽपि भुजगप्राप्ते पुरो निश्चिते—

तीर्थानामरत्नं जनस्य परतंतापमपोद्यादनम् ।

इष्टे प्रागवधारिते सति एनेस्तुष्टेभलाभा भवे—

दृष्टे तु भ्यसनेऽत्र तत्परि हतिः कर्तुं शक्यः क्षमा ॥२॥

सूर्य या चन्द्रमा का ग्रहण पहले से मालूम हो जाने पर ही मनुष्य तीर्थयात्रा के लिये जा सकता है, जिससे उसके भ्रिताप नष्ट हो जाय । हमारे अमुक मनोरथ की सिद्धि होने वाली है यह जान पहले से मालूम होने पर मनुष्य को धैर्य होता है और वह प्रसन्न होता है । दुःख मानेवाला है यह बात जब पहले मालूम हो जाय, तभी अब भ.दि के द्वारा उसका प्रतीकार किया जा सकता है ।

बुद्धिमानो बुभुक्षुददः पुष्पवन्तो पराणाः

शुक्रादीनामुदयविलसवित्पत्नी सवर्द्धताः ।

आधिपुर्वपक्षिलवचनेष्वत्र कुंभोपुलाक—

ग्यापःप्राप्तिर्बन्धुनिदिदोनेहवक् मानवाश्च ॥३॥

विलिखति सद्मदा जन्मगमे जनानां

फलमि यदि तदानां दशयन्यान्मदाद्यम् ।

न फलति यदि लग्ने मृष्टुरेवाऽऽमोह-

हरति धनमिदं हत दैवज्ञाशः ॥२॥

ये ज्योतिषी मनुष्यों का भूट सच जन्मपत्र बनाते हैं, यदि फल टांक उतरा तब ये अपना विद्वत्ता दिखाते हैं, यदि फल न घटा तो लग्न देखनेवाले का अज्ञान बनलाने हैं, इस प्रकार ये मूख लोगों का धन हरते हैं ।

प्रमेदे वेदे वाऽप्युपनमतिदुःसो विधिबरा-

न्मयैवं प्रागेवाऽभिहितमिति मिथ्या कथयति

जनानिष्टाऽनिष्टाऽकलन परिहारैकविराग-

मसौ मेपादीनां परिगणनयैव भ्रमयति ॥३॥

भाष्यवश मनुष्यों को दुःख सुख होता है । पर ज्योतिषी कहते हैं देखा मैंने यह पहले ही बना दिया था, पर उन यह बात भूठी होती है । अपने इष्ट धर्मिए जानकर उसे करने की इच्छा रखनेवालों को ये मेघ वृष आदि की गण से मोह में डाला करते हैं ।



वैद्य-प्रशंसा

गुरोरघीताऽलिलयैवविचः पीयूषपाणिः कुशलः क्रियासु ।

गतःस्पृहो चैवधरः कृपालुः शुद्धोधिकारी भिषगीदृशाः स्थान ॥१॥

जिम्हने गुरु से विद्याध्ययन किया है जो अमृतपाणि ।
क्रिया में कुशल है, निस्पृह, धीर, कृपालु, शुद्ध और अधिका
है, वही वैद्य है । वैद्य में इन गुणों का होना आवश्यक है ।

१ रागादि रोगान् सततामुपगच्छन्शेषकायपसूनान्शेषान् ।

१) भीत्सुचयमोहारनिदान्त्रवान् शोऽपुर्वं वैवायवमोऽस्तु सधैः ॥२॥

राग आदि रोग सदा लगे रहने हैं, ये समस्त शरीर में फैले हुए हैं । इनसे उत्सुकता, मोह, अरति आदि उत्पन्न होते हैं । इनको जिन पूर्व वैद्यों ने दूर किया है, उनको नमस्कार ।

मस्ते दुःखद्वेदनाकचकिते मग्ने स्वरैर्तर्गल- /

तत्तापी उदरपाचकेन च तनौ ताने हृषीकप्रये ।

दूमे वधुप्रने कृत प्रलपने धैर्य विधानु पुनः

कः शक्तः कलितामपप्रशमनो वैवायवरो विपत्ते ॥३॥

सिर में भयानक घेदना हो रही हो, स्वर पड़ गया हो, उदर से शरीर जल रहा हो, इन्द्रियां शिथिल होगयी हों, यन्त्रु दुःखी हों और रो रहे हों उस समय घेद के अतिरिक्त धैर्य देने वाला दूसरा कौन समर्थ हो सकता है ।

माशोधिदैवकमयाऽपिमहाऽमयेषु प्राप्तेषु को भिरगिति प्रथितस्तमेव ।

भाकारयन्त्रविल एव विशेषदर्शी लोकाऽपि तेन भिरगो न दूषयोपः ॥४॥

घेदक न जानता हो पर घेद के नाम से जो प्रसिद्ध हो बीमारी के समय में लोग उस को बुलाने हैं, सभी बुलाने हैं जिन लोगों को बहुत अनुभव है वे भी बुलाने हैं इसमें उस घेदका क्या दोष है । उसे दोष न देना चाहिए ।

१ निर्दुःखाध्वरहृत्य कृन्वित्रमहोनीर्णागमोनादिक- /

मुद्राते सुमर्दं च पिद् वित्रयो योदारमाप्तम्वलः ।

दृढं धारवभूवनं चक्रितो निर्दहतवीरनो

धस्ताऽऽनकचपरिचक्रितमहमपिद्वेष्टि प्रदेवापिनम् ॥५॥

यज्ञ समाप्त होने पर अग्निउज्र को, नदी पार जाने पर नायिक को, युद्ध समाप्त होने पर सैनिकों को, स्थान पर पहुँच

आने पर दोने घाले को, वृद्ध। वेश्या को, रोग के दूर होने पर घैघ को और जिसको देना है वैसे अर्धी को, लोग देखते तक नहीं । उनसे दूरही रहते हैं ।

भ्राता चेदांतिनः किं पठय शठतयाऽऽपि चाऽद्वैत विद्या-

पृथ्वीतत्त्वे लुठंतो विमृशय सततं कर्कशास्त्रार्किंकाः किम् ।

वेदैर्नानायमैः किं ग्लपयय हृदयं शोभिताः शोभशून्यै-

वैद्यं सर्वानवद्यं विधिनुत शरणं प्राणमम्रीगुनाय ॥१॥

भाई चेदान्ती, क्या तुम पागल होगये हो ? आज भी अद्वैत विद्या पढ़ रहे हो । नैयायिको, आजभी पृथ्वी तत्वका विचार करते कर्कश तर्कशास्त्र का विचार कर रहे हो ? वेदी से पर्याँ हृदय सुन्या रहे हो ! सबसे उत्तम वैद्य-विद्या की शरण जाओ जिससे प्राणों की रक्षा हो ।

कुत्रेद्योपहास

वैद्यराज नमस्तुभ्यं यमराज सहीदर ।

यमस्तु हरति प्राणान् वैद्यः प्राणान् धनानि च ॥१॥

हे यमराज के सहोदर भाई वैद्यराज ! आपको नमस्कार यम तो केवल प्राण ही हरना है और वैद्य प्राण तथा धन दोनों हरते हैं ।

मिथ्योपघैर्हृतं शुभाकृपायैरमहल्लेखैरयथायंतैलैः ।

वैद्या इमे वधित दण्डवर्गाः पिण्डमाण्डं परितुर्यति ॥२॥

झूटी दवाइयों से झूठे काढ़ों से असहनीय छेपों और झूठे तैलों से ये वैद्य रोगियों को ठगते हैं और अपनी मुर्दा गरम करते हैं ।

न धातोर्विज्ञानं न च परिचयो वैद्यकनये

न रोगाणां तन्वावगतिरपि नो यस्तुगुणधीः ।

तथाऽन्येते वैद्या इति तरलव्यक्तो जड जना-

तस्मैऽन्तुभृन्म्या इव वसु हरन्ते गदगुणाम् ॥३॥

धातु से परिचय नहीं, वैद्यक का ज्ञान नहीं, रोगों, के विषय में कुछ मालूम नहीं, औषधों के गुण का ज्ञान नहीं, फिर भी ये वैद्य मूर्खों को मोहित करते हैं । यमराज (मृत्यु) के समान रोगियों के प्राण हरने हैं और भाय ही धन भी ।

कृपावैलम्बासिश्च कृतामुक्त्वायनां नृणाम् ।

निग्रीयधृता वैद्यो निषेध हरन्ते धनं ॥४॥

उपवास आदि के द्वारा मनुष्य मीरोग हो जाता है, वैद्य जी कहते हैं कि मेरी दवाइयों के द्वारा ऐसा हुआ है, और लोगों से धन लेते हैं ।

अज्ञातशास्त्रमज्ञातान् शास्त्रमाश्रयायणान् ।

स्वमैतद्वृत्ताद्विपक्षाशान्वाशाशाम्बैवस्वतानिच ॥५॥

जिन्होंने शास्त्रीय रहस्यों को नहीं जाना है अथवा जो केवल शास्त्र ही जानने हैं ऐसे वैद्यों को दूर ही से नमस्कार करे,, ये यमराज के पाश हैं, उनका दूर ही रहना अच्छा ।

वैयाकरण

(ग्रंथंसा और निम्न)

वैयाकरणकिराठादवशाद्वसुताः क योति संप्रसाः ।

योतिर्न ददिगायकमिचगानवगहृतासि यदि न स्युः ॥६॥

कृतदुर्लभनिगकरणं व्याकरणं चतुरधीरधीयानः ।

बुधगणगणनाऽवसरे कनिष्ठिकायां परं जयति ॥५०॥

अशुद्धियों को दूर करनेवाले व्याकरण का अध्ययन
बुद्धिमान् करते हैं । जब विद्वानों की गणना होनी है तब
पहले नाम उन्हीं का आता है ।

... पातञ्जले विष्णुवक्त्राऽऽवगाथाः पातञ्जले चापि भवेऽवगाहः ।

... भाष्यज्ञे शुद्धिदमा प्रवृत्तेराचक्षते रागमधोभजेच ॥५१॥

गंगा के जल में जिसने अवगाहन किया है; और व्याक-
रण का जिसने अवगाहन किया है उसी का विष्णु में
अनुराग समझा जाता है और उसी की शब्द-शुद्धि समझी
जाती है ।

सुणामनश्चस्तफणाभूदीभगिरा दुग्गम बुधराजगंधी ।

अशुद्धचापश्रुतिपद्धतीनामुद्धमेजोद्धतपोद्धमार्थां ॥५२॥

जिसने व्याकरण का अध्ययन नहीं किया है उसे पण्डितों
की समा नहीं आस हो सकती है । जो याण दिया नहीं जानता
यह क्या बुद्ध में पोद्धार्थों का साथी हो सकता है !

... कांशीकृतव्याकरणोपधानामपाठ्यं चापि सुपाठमाप्नोते ।

कस्मिंश्चिदुक्ते तु वदे कथंचित्स्थैरं वपुः स्थिरानि वेपते च ॥५३॥

जिसने व्याकरण का अधीयन नहीं पाया है उसके बंधन
में सदा अपटुता रहती है । यदि किसी वक्ता कोई शब्द पढ़ा
भी जाय तो शरीर पसोना पसोना हो जाना है और कानों
लगता है ।

सुगं वागिनिबद्धं कलयन्पुरुषः समुदरति मुह्यमानः ।

बर्णादीनां घर्मांश्चुद्धा विविक्तपुंस्त्वोऽप्यौ ॥५४॥

पाणिनि के सूत्रों का ज्ञान प्राप्त करने से मनुष्यों को अच्छी आँखें मिल जाती हैं, वे वर्णों के धर्म जान जाते हैं और उनका उचित प्रयोग करते हैं ।

शब्दशास्त्रमनधीन्य यः पुमान् षकुमिच्छति वचः सभातरे ।

वन्धुमिच्छति वनेमदोत्कटं हस्तिनं कमलनालतंतुना ॥१०॥

जो मनुष्य बिना व्याकरण पढ़े सभा में बोलना चाहे वह वन में कमल के सूत से मतवाले हाथी को बाँधा चाहता है ।

वीर प्रशंसा

को वीरस्य मनस्विनः स्वविषयः को वा विदेशस्तथा ।

यं देशं भयते तमेव कुरते बाहुप्रतापाऽभितम् ॥

यद्वर्षं दृष्ट्वा तलाद्गुणपहरणः सिद्धो वनं गच्छते—

तस्मिन्नेव इत द्विपेद्गं दधिरैस्तृष्णां छिनत्त्यारमनः ॥११॥

मनस्य वीर के लिए न कोई अपना देश है भीरु न विदे। यह जिस देश में जाता है बाहु के प्रताप से अपने अधीन कर लेता है । दांत नख और पूँछ लगा भरतों को धारण कर घाला सिद्ध जिस वन में जाता है वहीं हाथियों के दधिरै अपनी प्यास मिटाता है ।

विनात्यर्थे वीरः स्तुतति बहुमानं च निगदं

समायुक्तोऽर्थैः परिधयन्तं यानि कृपणः ।

स्वमायादुदभूतां गुण समुद्रवाऽवाप्ति विषयो

युनि मेही किं वा पुनश्च न समाकोऽति कथने ॥१२॥

धीर धन के बिना भी ऊँचे पद पाते हैं । कृपण धनवान् होने पर भी तिरस्कृत होने हैं । सोने की माला पहनने वाला कुत्ता क्या सिंह को पा सकता है ?

एकेनोऽपि हि शूरेण वदाऽऽद्यान्तं मदीतलम् ।

क्रियते भास्करस्येव स्फारस्फुरति तेजसाः ॥१३॥

१) एक धीर भी समस्त पृथिवी तक को अपने कक्ष में धर सकता है । जिस प्रकार एक सूर्य अपनी किरण समस्त संसार में फैला देता है । उसी प्रकार धीर भी अपना प्रताप सब जगह फैला सकता है ।

पद्मवतः कृष्णतरोरेण विशेषः कस्य ते वीर ।

भूयसि कर्णमेकः परस्त्वं कर्णं तिरस्कृत्ये ॥१४॥

धीर, तुम्हारे हाथ और फलगत्य के पल्लव में थोड़ा भेद है । फलगत्य का पल्लव कर्ण (कान) को भूयित करता है, और तुम्हारा हाथ कर्ण (इस नाम के राजा) का तिरस्कार करता है ।

जिह्वा

हे जिह्वे रसमारजे सर्वदा मधुरमिवे ।

मगवन्नामपीश्वर्यं पिबत्येवमग्निर्गो लब्धे ॥ १ ॥

जिह्वे ! तू रसों को पदचानने वाली हो, तुम्हें मधुर वस्तु प्रिय है, इस कारण भगवान का नामामृत तुम सदा पिपा करो ।

अग्रेषुमुपरा द्विजमण्यमस्या वाजऽनुमंषानपराऽमि नित्यं ।

अथत्विह प्रेममयारमर्जं वरस्नुनित्यञ्च कर्णवत्स्ये ॥ २ ॥

जिह्वे, तुम शरीर के अंगों में प्रधान हो, द्विजो (दाँतों) के बीच में रहती तो, तुम मनुष्यों की स्तुति करना छोड़ दो ।

रसने रचितोऽयमंत्रलिप्ते परमिन्दापहपैरलं वचोमिः ।

नरकाऽपहरंनमः शिवायेत्यमुमादि प्रणवं भगवत्वं सं ॥ ३ ॥

जिह्वे, मैं तुमको हाथ जोड़ता हूँ, परनिन्दा करना व्यर्थ है, नमः शिवाय, तथा प्रणव आदि मन्त्रों को जपो, इससे नरक का भय छूट जाता है

ह्यात्रं शतदशमद्विपिमध्ये भ्रमसि नित्यशः ।

तदिदं शिक्षिता केन जिह्वे संवार कौशलम् ॥ ४ ॥

जिह्वे, पच्चीस दाँतों के बीच में तुम सदा रहती हो, घूमती हो, वे तुम्हारे शत्रु हैं, महान् कुशलता तुमने कहाँ सीखी ।

मूर्ख-निन्दा

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम् ।

लोचनार्म्बा बिहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ॥ १ ॥

जिसको स्वयं बुद्धि नहीं है, उसके लिए शास्त्र शब्द है । आँखों के अन्धों को दर्पण से लाभ नहीं होता ।

वितरति गुरुः प्राज्ञे विषां तथैव यथा जडे ।

न तु सल्लु तपोज्ञाने शक्तिं करोत्युपहति वा ॥ २ ॥

, गुरु, बुद्धिमान और निवृद्धि दोनों प्रकार के शिष्यों को समान भाव से पढ़ाता है । उनमें एक का ज्ञान बढ़ा देता है और दूसरे का ज्ञान गह कर देता है, ऐसा नहीं करता ।

भवति च पुनर्भूयाम्भेदः फलं प्रति लक्षणा ।

प्रभवति रुचांविम्बोदुष्पादेमणिर्न मृदां चयः ॥ ३ ॥

पर फल में बड़ा भेद हो जाता है एक विद्वान् हो जाता और दूसरा मूर्ख का मूर्ख ही रह जाता है ।

लभेत विकृतानु नैलमपि यत्नतःपीडय —

न्यवेष्ट सृगनुष्णिकासु सलिलं पिपासादितः ।

कदाचिदपि यदन्तश्शब्दविपाण मासादये-

॥ तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥ ४ ॥

प्रयत्न करने पर पालु से भी सेल निकल सकता है, प्यासे मनुष्य को सृगनुष्णिका में जल मिल सकता है, घूमता घूमता हमी मनुष्य खरहे की साँग भी पा सकता है, पर मूर्ख मनुष्य समझाया नहीं जा सकता ।

प्रसद्य मणिमुद्गरेभ्रमकरवक्रदंष्ट्राङ्कुरा-

त्समुद्रमपिसंतरेप्रचलदूर्मिमालाकुलम् ।

मुजंगमपि कोपितं शितसि पुष्पवदारये-

॥ तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥ ५ ॥

मगर के मुँह से भी चलपूर्वक मणि निकाला जा सकता है, लहरियों वाला समुद्र भी पार किया जा सकता है, कुद जाँप भी फूल के समान माथे पर रखा जा सकता है, पर मूर्ख मनुष्य समझाया नहीं जा सकता ।

सूक्ष्मा हि जल्पता पुंसां श्रुत्यावाचः शुभाशुभाः ।

मनुष्यं वाक्यमादत्ते पुरोपमिव शूकरः ॥ ६ ॥

मूर्ख मनुष्य लोगों की अच्छी बुरी बातें सुनता है, पर अच्छी बातें छोड़ देता है और बुरी बातें ले लेता है, जिस प्रकार सूअर सब चीज़ों को छोड़ कर बिछा ही लेता है ।

उपदेशो हि मूर्खानां प्रकोपाय न शीतये ।

पयःपानं भुजंगानां केवलं विषवर्धनं ॥ ७ ॥

उपदेश से मूर्ख मनुष्य क्रुद्ध होते हैं प्रसन्न नहीं होते
प को दूध पिलाने से उसका विषही बढ़ता है ।

भक्षः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषतः ।

ज्ञानवदुर्विद्वद्यं ब्रह्माऽपि तं नरं न रजयति ॥ ८ ॥

जो कुछ नहीं जानता, वह समझाया जा सकता है, और
बहुत कुछ जानता है वह तो आसानी से समझाया जा
सकता है; पर जो मनुष्य थोड़ा जानता है उसको ब्रह्मा भी
न समझा सकते ।

श्वालं बालमृणाकर्तुमिरसौ रोद्रधुं भुजगुन्मते-

छेत्तुं वज्रमणीम् शिरीषकुसुमं प्राप्तेन सन्नहते ।

माधुर्यं मधुविन्दुना रक्षयितुं क्षारोत्प्रेरीहते-

नेतुं बाधति यः खलान्पथि सतां मूर्खैः सुधास्यदिभिः ॥ ९ ॥

वह मनुष्य हाथी को मृणाल सूत्र से बांधने का प्रयत्न
करता है, हीरे को शिरीष के फूल से छेदना चाहता है, और
मधु के विन्दु डाल कर क्षार समुद्र को मोटा बनाना चाहता
है, जो मनुष्य अमृतस्यन्दी बच्चों से खलों को संजनों के
रास्ते में ले जाना चाहता है ।

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदापः समभव-

तदा सर्वज्ञोऽप्यीत्यमवदत्तं लिप्तं मम मनः ।

यदा किञ्चित्किञ्चिदुपव्रजसकाशादवगतं-

यदा मूर्खोऽस्मिति ज्वर इव मदा मे स्वपगतः ॥ १० ॥

जिस समय मैं थोड़ा जानता था उस समय मैंने अपने को सर्वज्ञ समझा और इससे मुझे बड़ा अहंकार हो गया । पर सज्जनों के साथ से जब मुझे थोड़ी थोड़ी समझ हुई, तब मैंने समझा कि मैं मूर्ख हूँ और मेरा सब अहंकार दूर हो गया ।

कृमिकुलचकितं लालाहिन्मं विगंधितुगुप्सितं-

निरुपमरसं प्रीम्भासादन्नराऽस्थिनिर्भयं ।

सुरपतिमविश्वापार्ष्वस्थं विलोक्य न शक्ते-

नहि गणयति क्षुभोजंतुः प्रविष्टः फल्गुतां ॥ ११ ॥

कुत्ता बिना मांस का एक हड्डी का टुकड़ा जब पा लेता है, उसमें कीड़े पड़े रहते हैं लार से सना रहता है बहुत बुरी गन्ध उससे निकलती है वह उस टुकड़े को बड़ा ही सरस और स्वाद समझता है तथा बड़े प्रेम से खाता है उस समय शत्रु भी उसके पास आ जाय तो वह किसी प्रकार का भय नहीं करता । छोटा आदमी यह बात नहीं समझता कि उस की पात में कितना सार है ।

शिरः शार्ङ्गं स्वर्गात् पशुपति शिखः सितिष्यं

महीप्राहदुर्गुणाद्वनिभवनेरवाऽपि जलपिम् ।

अधोऽधो गंगैव पदमुपगता लोकमनुना-

विवेकप्रधाना भवति विनिपाता शतमुजः ॥ १२ ॥

गङ्गा स्वर्ग से गिर कर शिव के मस्तक पर आयी, शिव के मस्तक से पर्वत पर, पर्वत से पृथिवी पर और पृथिवी से वह समुद्र में गयी, इस प्रकार गङ्गा ऊपर से गिरती गिरती बहुत नीचे चली गयी । विवेक-धर्मों की यही गति होती है ।

शशयो वारपितुं जलेन हुतमुक्लगेण सूर्यास्तपो-

मार्गेदो निशितार्कुसेन समदो ददेव योगर्दभी ।

स्याधिभे'पत्रसंप्रहैश्चशिविधैर्मग्नयोगैर्विध-

सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नाऽस्त्यौषधं ॥ १३ ॥

जल के द्वारा अग्नि शान्त किया जा सकता है, उन्हें से सूर्य-ताप से रक्षा की जा सकती है, हाथी तोखे भंगुरा से घरा में किया जा सकता है, गी और गधे टण्डे से घरा भिदे जा सकते हैं, रोग अनेक प्रकार की दवाइयों से दूर किया जा सकता है भेड़ों के द्वारा घिय भी उतारा जा सकता इस प्रकार सब का औषध है पर शास्त्र-हीन मूर्ख का भी नहीं है ।

साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्ष्यपशुः पुण्ड्रविपाशहीनः ।

तुणं न सादृशपि जीवमानस्तज्ज्ञागधेयं परमं पशुनाम् ॥ १४ ॥

जो मनुष्य साहित्य-सङ्गीत से हीन है उसे पूँछ और तं रहित साक्षात् पशु समझना चाहिये । यह तुण बिना त भी जीता है, यह पशुओं का भाग्य है ।

वरं पवंतं दुर्गे'पु भ्रानं वनचरैः सह ।

न सूर्यजन संवर्कः सुरेन्द्रमवनेष्वपि ॥ १५ ॥

पवंत और जंगलों में मूर्खों के साथ भ्रमण करना अच्छा है । पर इन्द्र-मयन में भी मूर्ख का स्वाय होना अच्छा नहीं ।

वेदां न विद्या न गवो न दानं ज्ञानं न शीर्षं न गुणो न धर्मः ।

मे क्षुत्पुलोके सुविभासभृता मनुष्यरूपेण क्षुण्णचरन्ति ॥ १६ ॥

जिन्हें न विद्या है, न तपस्या, न दान, न ज्ञान, न शीर्ष, न गुण और न धर्म है, ये पृथिवी के भार हैं और मनुष्य शरीर घाटी मृग की तरह वे इन मर्त्य-लोक में घूम रहे हैं ।

मूर्खोऽपि मूर्खं दृष्ट्वा च चन्दनादपि शीतलः ।

यदि पश्यति विद्वानं मन्यते पितृघातकम् ॥१७॥

मूर्ख मूर्ख को देख कर बहुत प्रसन्न होता है वह चन्दन से भी अधिक शीतल हो जाता है । पर जब वह विद्वान् को देखता है तब वह उसे अपना पितृघाती समझता है ।

गुणिगणनगनाऽऽरंभे न पतति कठिनी सुवर्णप्रमाणस्य ।

तेनाऽपि यदि मुक्तिनी यद वक्ष्या कीदृशी भवति ॥१८॥

गुणियों को गणना के समय जिसके नाम के लिए भार से कलम न उठे ऐसे पुत्र को उत्पन्न करने से यदि माता पुत्र-यत्नी हो सकती है तो कहो यन्त्रिया कैसी होती है ।

अंतःसारविहीनस्य सहायः किं करिष्यति ।

मलयोऽपि स्थितो वेणुवेणुरेव च चन्दनः ॥१९॥

जो स्वर्य दुर्बल है, जिसके भीतर कुछ नहीं है उसको सहायक मिलने का क्या फल हो सकता है, मलय—पर्यंत पर का बांस बांस ह रहत है वह चन्दन नहीं हो जाता ।

मुक्ताक्षरैः किं मृगपक्षिणां च मिष्टाक्षराणां किमु गर्दभानाम् ।

अथस्य दोषो वधिरात्मगीतं मूर्खस्य किं धर्मकथाऽर्जितः ॥२०॥

पशु-पक्षियों को मोतियों से क्या लाभ, गधे के लिए मिठारे निरर्थक है, अंधे के लिए दीपक, बहरे के लिए गीत भार मूर्ख के लिए धर्म-कथा ये सब व्यर्थ हैं ।

ये संसत्सुविवादिनः परवशः शब्देन शूलाऽऽकुलाः

कुर्वन्ति स्वगुणस्तत्रेव गुणिनां यथाह गुणाऽऽदयः ।

तेनां रोगरूपवितोदरदूरी कोरौष्णभिः स्वामिनां-

दीप्ता रघुशिखेव कृष्णकज्जनां विद्या जनोद्देहिनी ॥२१॥

जो ममा में विवाद करने हैं दूसरों के घर में घुसने पर होते हैं अपना प्रशंसा करते हैं अपने गुणों का वर्णन करते और दूसरों के गुणों को क्षिणते हैं, जिनकी बाँछें क्रोध लाल रहती है और गर्म साँस निकला करती है। वे मनुष्यों की विद्या कृष्ण सर्पमणि के समान मनुष्यों को व्यथित करने लगी है।

श्रीवास्तवममृतः परोक्षविद्वयामात्रे शिरःशूलिनः

सोऽहं गमू मणप्रलापविपुलसोमामिभूतस्थितेः ।

अंतर्देवविपप्रवेशविपमक्रोधाऽऽन निश्वासितः-

कथा भूतमपेक्षितस्वविहृतिर्भीमज्वरारंभभूः ॥२२॥

जिनका गला स्तम्भित हो गया है, यह हिलडुल नहीं सकता, अन्य मनुष्यों की उन्नति की बात सुनने ही जिनके सिर में शूल उत्पन्न हो जाता है, वे उद्विग्न होकर भ्रमण करने लगते हैं बकने लगते हैं और बहुत ही क्षमित होते हैं, द्वेष विप के अन्तः प्रवेश होने के कारण विपम क्रोध से वे साँस लिया करते हैं भूखों की घुरी दशा है, उनके ये विचार भयानक उदर के कारण हैं।

मूर्खत्वं सुखं भजस्व कुमते मूर्खस्व चाऽष्टौ गुणा-

निश्चिंतो बहुभोजनोऽतिमुखरो रात्रिं दिवास्वप्नभाक् ।

कार्याकार्यविचारणांचवचिरोमानापमाने समः

प्रायेणामयवजितो दृढवपुर्मूर्खः सुखं जीवति ॥२३॥

मूर्ख होना आसान है इस लिए मूर्ख होने का यत्न करो, उसके आठ गुण होते हैं। निश्चिन्तता, बहु भोजन, अधिक सोलना, रात दिन सोना, कर्तव्य अकर्तव्य के विचार में मग्ना बचिर होना, मान और अपमान को समान समझना,

प्रायः नीरोम रहना, पुष्ट शरीर होना । इस प्रकार मूर्ख थड़े सुख से जीता है ।

ममं हिन्दानि षड्विंशतिगर्भो दुर्धनं सुमे ।

विरोधी विप्रवादी च कन्याऽकृत्यं न मन्यते ॥२४॥

मूर्ख के लःचिन्ह हैं, आईकार, दुर्घचन बोलना, विरोध रखना बिप के समान बोलना और कर्तव्य-अकर्तव्य का ज्ञान न रखना ।

अरण्य इदितं कृतं अथरात्रीरमुद्राचिंतं

स्यलेऽप्यजयदरोपिनं मुञ्चिस्मृते ददि'तम् ।

इष्टुः प्रमथनामिन् बधिरं कर्णं जायः कृत्वा

एतोऽधमुत्तरांशे यदुत्तरांशं संहिता ॥ १५॥

जो मैंने सूर्य मनुष्य की सेवा की यह निष्कल हूँ।
यह धरण्यरोदन के समान हूँ, मुझे के शरीर में उपटन
लगाने के समान हूँ। ज़मीन में फमल रोपने के समान हूँ।
ऊपर में पृथ्वी के समान निरर्थक हूँ, वैसी सेवा करके मैंने
कुत्ते की पूँछ सीधी करने का प्रयत्न किया, पहले से बाँधों
की भीड़ बगधे के सामने दर्पण रखा।

निर्गुण इति गृह्य इति च द्वावेकायां विधाविनी विधिः ।

परम धनुर्गुणशूर्यं विजितं यदिह भवति ॥२६॥

त्रिगुण और गुणक इन दोनों शब्दों का अर्थ एकही है। दोनों गुणहीन पदार्थ त्रिगुण हो जाते हैं। पदार्थ की रसता को भी गुण कहते हैं।

पैटीबी नरपुत्रसमूहकेनागवजयन्तः-

शाहीबागकपोरकरपुरबडायेकाव तुम्ह बयः

येनान्तरुप्रयोपिजगतः कुर्वति सर्वंभूताः ।

भूतिं ये न विना तु हार पदवीं संतोषि कष्टं गताः ॥१७॥

पैटो, मच्छे रेशमी घर, श्वेत छत्र, हार, घोड़ा यदि
आदम्यों को नमस्कार । इनके द्वारा मूख मनुष्य भी संसार
में अपने को सर्वश्रेष्ठ बना लेता है, और इनके बिना शिवाजी
सज्जन भी घुरी दशा भोगते हैं ।

ककुंश तर्कविचार स्थग्यः किं वेति काव्य हृदयानि ।

प्राप्य ह्य कृपिविलग्नश्चंचलमनभावयोरहस्यानि ॥२८॥

कठोर तर्कशास्त्र के विचार में जो व्यग्र हैं वे काव्य-रहस्य
क्या समझ सकेंगे ? जिस प्रकार खेती करने वाला-प्रामोष
चंचलाक्षी दो धंयनों का सत्य नहीं समझ सकता ।

दारिद्र-निंदा

अथाय इदि लीयते दारिद्राणां मनोरथाः ।

बालविधवा कुलस्त्रियां कुपाविब ॥ १ ॥

बालविधवा कुलस्त्रियों के स्तनों के समान दारिद्रों के
मनोरथ हृदय ही में उठते हैं और वहाँ धिलीन हो जाते हैं ।

हे दारिद्र्य नमस्तुभ्यं सिद्धोहं न्वत्प्रसादतः ।

पश्याम्यहं जगत्सर्वं न मां पश्यति कश्चन ॥ २ ॥

हे दारिद्र, तुमको नमस्कार, तुम्हारी कृपा से मैं सिद्ध
हो गया हूँ । मैं तो समस्त संसार को देखता हूँ पर मुझे
कोई नहीं देखता ।

इह लोकेऽपि धनिनां परोषि स्वजनान्यते ।

स्वजनोऽपि दरिद्राणां तत्क्षणाद्दुर्जनायते ॥ ३ ॥

इस लोक में दूसरे भी धनियों के स्वजन धन जाते हैं,
और दरिद्रों के स्वजन भी दुर्जन हो जाते हैं ।

रोगी चिरप्रवासी पराजितोन्मी परावसस्थाधी ।

पञ्जीवति तन्मरणं यन्मरणं सोऽस्य विश्रामः ॥ ४ ॥

रोगी, सदा प्रवास में रहने वाला, दूसरे का भ्रष्ट जाने
वाला, दूसरे के स्थान में रहने वाला जो जीता है उसका
जीवन मरण है और उसका मरण विश्राम है ।

परीक्ष्य सत्कुलं विद्या शीलं शौर्यं सुरूपताम् ।

विचिर्ददाति विपुलः कन्यामिव दरिद्रताम् ॥ ५ ॥

उत्तम कुल, विद्या, शील, शूरता, सुन्दरता आदि देख
कर कन्या के समान ब्रह्मा दरिद्रता प्रदान करता है । अर्थात्
गुणवान् दरिद्र होते हैं ।

दरिद्रपानल संतापः शान्तः संतोषवारिणा ।

पाचकाशाविघातो तद्ददाहः केनोपशाम्यति ॥ ६ ॥

दरिद्रता की अग्नि का संताप संतोष के जल से शान्त
हो गया, पर पाचकों को आशा नष्ट करने से जो दाह उत्पन्न
हुआ है वह कैसे शान्त होगा ।

अर्था न सति न च मुच्यति सा दुराशा

दानाच्च संकुचति दुर्लभित्वं मनो मे ।

पाथा हि लाघवकरी स्वयमेव पापं

प्रायाः स्वयं व्रजतु हिं प्रविर्लभितेन ॥ ७ ॥

धन नहीं है, पर दुराशा मुझे नहीं छोड़ती, दान करने
से भी मेरा दुःख मन संकुचित नहीं होता, मांगने से

हनुमार्त होनी है साधुद्वारा करने में पाव होता है, हे मान !
 साथ तुम स्वयं करने जाया दिव्य करने में गया लाभ ।

सा होतुं शक्येति वचनान् नृपुण्य वाचयिमा-
 नानावचनं नाना वाचनं विना धैर्यं न हि वाचनी ।

अन्तरं नृविनीतानि विदुः कुलशक्तिर्हिनो-
 नि कदाचन वचनान् नृपुण्यः शीघ्रं पुनः प्रणिपः ॥६७॥

मान रोमां घेदा, कण्ठे मरीं है इमलिर मान रोमां, तुम्हों
 विना जब भावों भीर मम मांनों का मना देंगे तो वे
 बल भीर मने का हार देंगे । उम मों का वति भी मनी
 भेदाही के दाग म। गया था मनी मरी को ये घात सुनकर
 यह बड़ा दुखी हुआ दुःख को मांसे उमने ली, मांगू से उम
 का मुँद मीग गया भीर पुनः नद लौट गया ।

कथं वाचयिष्ये मय्येष यदि वा शीघ्रं गृह्णामि ॥
 विदुः भूतलमत्र माध मयः वृद्धे वनालोचयः ।

इत्यन्तोरिति जगतीति शिवदा वारः अनिरुद्धा
 लार्थ कर्पदमभ्यतनदुर्गति शिष्टा कर्त्तव्यता ॥६८॥

कथरी का यह दुकड़ा मुझे दो या वधों का तुम्हों से
 लो, यहां की जमीन थालो हं भाव के गोचे पुभाल है । रात
 का श्री पुदप इस तरह की घाति करते थे उमी समय उनके
 घर में चोर भाये । उनकी घातें सुन कर दूसरी जगह से
 घुरा कर जो बल वे ले भाये थे यह उन पर डाल कर वे
 चले गये ।

दुःखोऽप्यः पतिरेव मंचक्यतः स्त्रियाश्चोर्ध्वं गृहं

काशोऽप्यर्णमलागमः कुशलिनी यत्सस्य वार्तापि नो ।

पद्यासंचितैलविंदुघटिका मग्नेति पयांकुला

वृद्धा गर्भभराकुलां निम्नं वधूँश्च नृश्रिणं रोदिति ॥१०८॥

मेरा पति बूढ़ा है वह खाट पर पड़ा है, छाँन में धून भी नहीं है, परसात के दिन आगये, बच्चे का कुशल सम्वाद भी न मिला, बड़े प्रयत्न से मिट्टी की कुल्हिया में ज़ो तेल मैंने रखा था, वह कुल्हिया फूट गयी, इससे वह बूढ़ा बहुत दुःखी हुई, और अपनी यह का पूर्ण गर्भ देखकर वह रोने लगी ।

अंका सुप्यति न मया न स्तुपया सापि नाम्बया न मया ।

अहमपि न सया न मया वद राजन् कस्य दोषोऽयम् ॥१०९॥

माता मुझ से प्रसन्न नहीं रहती और अपनी यह से भी प्रसन्न नहीं रहती, और वह यह न माना से प्रसन्न रहती है और न मुझ से । मैं भी न माता से और न यह से प्रसन्न रहता हूँ । महाराज ! कहिये, इसमें दोष किसका है ।

बाँसालश्च दरिद्रश्च द्वावेती सदृशी सदा ।

बाँसालस्य न गृहं वि दरिद्रो न प्रवर्त्तति ॥११०॥

बाण्डाल और दरिद्र दोनों बराबर हैं । बाण्डाल की कोई वस्तु कोई छूता नहीं और दरिद्र किसी को दे नहीं सकता ।

नो सेवा विहिता गुरोरपि मनाङ्गो वा कृतं पूजर्न-

देवानां विजिवन्न वा शिव शिव स्तिग्धादयः सेविताः ।

किन्तु न्यघाणौ सरस्वति रसादाश्रमनः सेज्यौ

समान्मां विजहाति सा भगवती शंके सपत्नी त्वे ॥१११॥

देशी सरस्वती, मैंने गुरुओं की सेवा न की, विधि पूर्वक देवताओं की पूजा भी न की, अपने स्वजन संबंधियों की ओर भी न देखा, बड़े प्रेम से आजन्म तुम्हारे ही चरणों

की मैंने सेवा की । मालूम होता है इसी कारण ये देवी मुझ से दृष्ट हो गयी हैं जो तुम्हारी सौत हैं, अर्थात् लक्ष्मी ।

दारिद्र्य शोचामि भवन्तमेवमस्मच्छरीरे सुदृढित्युपित्वा ।

विषम देहे मयि मन्दभाग्ये ममेति चिन्ता क्व गमिष्यामि त्वम् ॥१३॥

दारिद्र्य, मैं तुम्हारे ही लिए चिन्तित हूँ, आज तक मित्र समझ कर तुमने मेरे यहाँ वास किया, अब मेरे मर जाने पर तुम कहाँ जाओगे ?

दग्धं खाण्डवमजुर्मेन बलिना दिग्यैर्दुर्गैःसेवितं

दग्धा वायुसुतेन रावणपुरी लंका पुनः स्वर्णभूः ।

दग्धः पञ्चशरः पिनाकपतिना तेनाऽध्ययुक्तं कृतं-

दारिद्र्यं जनतापकारकमिदं केनाऽपि दग्धं नहि ॥१५॥

बलवान् अजुर्न ने काण्डव घन को जला दिया, जिसमें अनेक उत्तम वृक्ष थे, वायुपुत्र हनुमान ने सोने की लंका जला दी, महादेव ने कामदेव को जला दिया, इन सब ने घुरा ही किया । पर जिस दरिद्रता से जनता की हानि होती है उसको किसी ने भी न जलाया ।

द्राघिमार्धमसि क्षेप्यौ गाढं बद्ध्वा गले शिलाम् ।

धनिर्न चाऽप्रदातारं दरिद्रं चाऽतपस्विनम् ॥१६॥

गले में मजबूत पत्थर बाँध कर इन दोनों को जल में डुबा देना चाहिये, जो धनी दाता न हो और जो दरिद्र तपस्वी न हो ।

वर्तिष्ठ क्षणमेकमुद्रह सखे दारिद्र्य भारं गुरुं

मार्तस्तावद्दं चिरान्मरणजं सेवे त्वदीयं सुखम् ।

इत्युत्पन्नं घनवर्जितेन सहसा गत्वाश्मशाने शयं

दारिद्र्यान्मरणं वरं वरमिति ज्ञात्वाैव शूच्यांसिचरम् ॥१७॥

एक दरिद्र ने मुर्दे से जाकर कहा, माई उठो, एक क्षण के लिए उठो, यह दरिद्रता का भार थोड़ी देर उठाओ, मैं थक गया हूँ । मैं थोड़ी देर मरने का सुख भोगूँ ।

‘यो गंगामुत्तरतथैव यमुनां यो नर्मदां शर्मदां
का पार्ता सरिदंशुलघनविधौ यथाश्रुवांस्तीर्णवान् ।

सोऽस्माकं चिरमास्थितोऽपि सदसा दारिद्र्य नामा सखा
त्वद्गुदानांऽक्षुस्तरिप्रवाहलहरीमनो न ॥ भाष्यते ॥१८

जिसने गंगा पार किया, यमुना पार किया, भीर शर्मा (कल्याण) देने वाली नर्मदा पार किया, अन्य नदियों को फौन धलाये, जिसने समुद्र भी पार किये, पर दारिद्र्य नाम का हमारा मित्र सदा साथ रहा । अब वह आपके दान-जल के प्रवाह में डूब गया है, दिखायी नहीं पड़ता ।

दारिद्र्यपाम्मरणाद्वा मरणं संतोषते न दारिद्र्यम् ।

अल्पवस्त्रेण मरणं दारिद्र्यमनंतकं दुःखम् ॥१९॥

दरिद्रता और मृत्यु इनमें मुझे मृत्यु ही अच्छी लगती है, दरिद्रता नहीं । मृत्यु में थोड़े कष्ट होते हैं और दरिद्रता के कष्टों का ठिकाना नहीं ।

अनंत विमुखे दैवे मयै यत्ने च वीरये ।

मनस्विनो दारिद्र्यं वनादन्यत्कुतः सुखम् ॥२०॥

भाग्य प्रतिकूल हो जाय, सब प्रयत्न और सामर्थ्य निष्फल हो जाय, उस समय मनस्वी दरिद्र के लिए धन के भक्तिरिक्त और कहां सुख हो सकता है ।

दारिद्र्यमाद्विषमेति ह्रीपरिगतः सत्वात्परिग्रहयते

निःसन्धः परिभूयते परिमवाक्षिपेद्दमापघते ।

निर्विण्णः शुचमेति शोऽनिहतो बुद्ध्या परिपश्यते

निबुद्धिः क्षयमेत्यहो निघनताः सर्वापदामास्पदम् ॥२१॥

दरिद्रता से लज्जा आती है, लज्जित मनुष्य बलहीन हो जाता है बलहीन का पराजय होता है पराजय से ग्लानि हाती है, ग्लानि से शोक होना है, शोक से बुद्धि नष्ट होती जाती है और निबुद्धिता से नाश हो जाता है । यह एक दरिद्रता सब विपत्तियों का मूल है ।

अये लाजानुत्पद्यैः पथिवचनमाकर्ण्य गृहिणी

शिशोः कर्णं यदात्मुपिहितवती दीनवदना ।

मयि क्षीणोपाये यदकृतं दूशावश्रुशयसे

तदन्तःशब्दं मे त्वमिदं पुनरुद्धतुमुचिनः ॥२२॥

भारते मैं किसी ने जोर से “ लाया ” कहा, गृहिणी ने इस शब्द को सुनकर घड़े यदा से यच्चे के कान बन्द कर दिये, जिसमें भूया यथा लाया का नाम न सुन सके, नहीं तो यह मांगने लगेंगी । मैं निरुपाय था यह जानकर गृहिणी की आंखें भर आयीं, इस समय यह कांटे के समान मेरे हृदय में चुभ रहा है ।

दूषेष्टाङ्गादहं वीक्ष्य मणिकं कजवर्जितम् ।

अतः परं परं दूषे मणिकं कजवर्जितम् ॥२३॥

मणि जड़ित कटुण से दूष्य स्त्री का हाथ देख कर मैं बहुत दुःखी हूँ । इसने भो अधिक दुःखी मारणीक (मिठी का यड़ा घन न जिसमें अन्न रस आता है) को साठो रूप कर दूँ ।

एष्टोहि दीनो गुणवन्निधाने तिमज्जनीदोर्हिते यो वसाने ।

न तेन दूष्टं कविना समस्तं दारिद्र्यमेकं गुणदोर्हिदारि ॥२४॥

अनेक गुणों में एक दोष छिप जाता है, जिस प्रकार
चन्द्रमा का कलङ्क छिप जाता है वेना कहने वाले उस कवि
ने यह बात नहीं जानी है कि एक दरिद्रता का दोष सब गुणों
को नष्ट कर देता है ।

राशौ जानुर्दिवा मानुः कृशानुः मन्थनोर्दयोः

परव शीतं मयानीतं जानुभानुकृशानुभिः ॥ १५ ॥

रात में जानु, दिन में मानु (सूर्य) णतः और सायं
कृशानु (अग्नि) इस प्रकार जानु मानु और कृशानु से मैंने
शीत पित्त दिया ।

सुरक्षामाः शिशवः सखा इव भूशं मंदाशतया बाधका

ल्लिप्ता जर्जरं कर्करो अनुन्वैर्दो मां तथा बाधते ।

तेहिन्वा शुदिनोभ्युक्तं पदयितुं हन्वा सकाकु स्मितं -

कुप्यन्ती प्रतिवेशिकोऽगृहिणो सुखी यथा पाचति ॥ १६ ॥

लड़के भूय से व्याकुल होकर मुझे के समान हो गये हैं,
बाधक निराश हो गये हैं । पदों के मूँह पर मकड़ी ने जाला
बुन दिया है पर इन बातों को देखकर मुझे दुःख नहीं
होता । गृहिणी अपना पटा कपड़ा सोने के लिए पटोसिन
से सूर मांगती है और पद ताने से हँसकर कोप करती है
यही हमारे दुःख का प्रधान कारण है ।

दास्त्रिय भोग्य परम विवेकि गुणार्थवदे शुचि मदानुरक्त ।

विषाविहीने गुणवर्जिने च मुहूर्तमात्रं न.रतिं करोति ॥ १७ ॥

दास्त्रिय ! तुम यदि विवेकी हो । गुणवान् मनुष्यों से ही
तुम्हारा अधिक प्रिय रहता है, मूर्ख, निर्गुण मनुष्यों से ही
जान मकड़ियों से दूँदा नहीं तो न मूर्ख बनने ।

महं वाणि मयाऽऽनने कुरु दयां यथाऽनुग्रहः। चिरं
 धेतः स्वास्थ्यमुपैहि याहि करुणे ग्रहे स्थिरत्वं मम ।
 लज्जेतिष्ठ पराङ्मुखी क्षणमहो तृष्णे पुरः स्थीयतां
 पापो यावदहं मवीमि धनिनां देहीति दीनं वचः ॥ १८ ॥

भगवती सरस्वती, कृपा करो, सुन्दर सिलसिलेवा
 वाक्प के रूप में मेरी जिह्वा पर वास करो । धितस्वस्थ
 जाओ, करुणे खली जाओ, बुद्धि, तुम मचल हों जाओ
 लज्जे मुँह खोलो, तृष्णे, तुम भागे भागे, जब तक मैं पापी
 धनियों के सामने "देहि" यह दीन वचन कहूँ ।

अथ पटो मे पित्राङ्गभूषणं विनामहायै रत्नमुक्त्वापीतम् ।

अलङ्कटिष्याम्यथ पुनः पीत्रकान् मयाऽपुनः पुण्यवत्तेषु धार्यते ॥ १९ ॥

यह पट मेरे पिता के शरीर का भूषण रहा है, अब मैं
 मया था तब पितामह ने इसका उपयोग किया था, अब पर
 मेरे पुत्र भीरु पीत्रों को अलङ्कृत करेगा । मैं इस पुत्र के
 समान ही रत्नता हूँ ।

इत्तमर्णधनदानशक्त्या पावकोऽस्य शिल्पवाहुर्दिश्या ।

देव इत्यवमना सरस्वती नारद तोषद्विरवैति कृतवा ॥ २० ॥

हृदय में महाराज को धन देने की शक्ति अग्निशिखा के
 समान जल रही है—महाराज, उसी अग्नि में देवी सरस्वती
 के चर जल गये हैं इस कारण यह विचारी मुँह के बाहर
 नहीं निकलती ।

दीर्गान्येन समीरिता हृदयतः खंडं समालंब्य

खंडात्कष्टमहं कथं कथमपि प्राप्नोमि जिह्वात्पथः ।

लज्जा कीलक कीलितेन निविष्टं तन्मात्रविषांपर्यहो

वाचा प्राण वरिष्ठयेति महती देहीति नारदीति च ॥ २१ ॥

दरिद्रता के द्वारा उत्तेजित होकर हृदय से कण्ठ तक यह आयी, कंठ से बड़े बड़े कणों से किसी प्रकार यह जिह्वा तक आयी । लज्जारूपी कील से यह जिह्वा में ही जड़ दिया गया । इससे बाहर नहीं निकलता । मले आदमियों के मुँह से प्राण जाने पर भी "दो" और "नहीं" ये दो शब्द नहीं निकलते ।

संगमैव हि करिष्यस्य कुस्ते संभाव्यतेनादरा-

स्मं प्राप्नो गृहमुन्सवेपु धनिनां सावशुमालोषवते ।

दुरादेश महामनस्य विहरन्मल्पच्छदो लज्जया-

मान्ये निर्धनता प्रकाममपरं चण्डं महाबातकम् ॥ ३१ ॥

कोई इसका साथ नहीं करता, आदरपूर्वक कोई बोलता भी नहीं । उत्सव आदि में धनियों के घर जब यह जाता है तो निरादर से देखा जात है । इसके पास थोड़े पत्त हैं इस कारण धनियों से यह दूर ही रहता है । मैं समझता हूँ कि दरिद्रता छठा पाप है ।

■ करोमि क गच्छामि कमुपैमि दुरात्मना ।

कुर्मरेणोदरेणाहं प्रापेरपि विद्वितः ॥ ३२ ॥

क्या करूँ ? कहां जाऊँ ? किसके पास जाऊँ ? इस न भरने वाले दुरारामा पेट से प्राणों पर आ गयी है ।

बयालो विश्वोद्धारय विधिना नाथ विश्वमरन्ध-

मन्वेमा दुरजठरपिठरी नुरणे कुंठ शक्तिः ।

शक्तिस्मेरे विबुध सदसि प्रेक्ष्यमा मांस्तु लज्जा-

यद्विश्वेभ्योऽप्यहमिहवहि मार्चमंगी करिष्ये ॥ ३४ ॥

नाथ, भाष विश्व-संसार-का मरण करते हैं इस कारण भाष विश्वम्भर कहे जाते हैं । पर मालूम होता है कि हम

लोगों का पेट भरने में भाग की भी शक्ति कुण्ठित है। माय
देवताओं की सभा में मुझे देव सज्जित न हों, क्योंकि मैं
कह दूंगा कि मैं विश्व से बाहर हूँ ।

राजनोति

राजास्य जगतो वृद्धेर्हंतुर्हृदाभिर्नगताः ।

गयनान्दजननः गशाक इव धारिधेः ॥ १ ॥

राजा इस संसार के कल्याण का कारण है, यह बात
बुढ़े भी मानते हैं । उसे देख कर प्रजा असन्न होती है, जिस
प्रकार चाद्रमा को देखकर समुद्र प्रस्थान होता है ।

धार्मिक पालनपरि सम्यक्परिपूरजय ।

राजानमभिमान्यते प्रजापतिमिव प्रजाः ॥ २ ॥

जो राजा धर्मात्मा है, प्रजा का पालन करने वाला है,
शत्रुओं के नगर जीतने वाला है प्रजा उसको प्रजापति के
समान मानती है ।

पर्जन्य इव भूतानामाधारः पृथिवीपतिः ।

विकलेपिहि पर्जन्ये जीव्यते न तु भूपती ॥ ३ ॥

राजा मेघ के समान प्राणियों का आधार है मेघ पानी
घरसा कर प्राणियों को सुखी करता है और राजा पालन
पोषण के द्वारा उसे सुखी करता है । मेघ के टूटने पर भी
प्राणी जी सकते हैं पर राजा के टूटने पर उसका जीना
सम्भव नहीं ।

प्रजां संरक्षति नृपः सा वर्धयति पार्थिव ।

वर्धनाद्गुणं श्रेयस्तन्नाशोऽन्यत्सदप्यसत् ॥ ४ ॥

राजा प्रजा की रक्षा करता है, और प्रजा राजा को
 द्राती है। बढ़ाने की अपेक्षा रक्षण का अधिक महत्त्व
 है, क्योंकि रक्षण के बिना बढ़ाना रहने पर भी नहीं के
 मान है।

आत्मानं प्रथमं राजा विनये नोपपादयेत् ।

ततोऽमात्मानतो भूष्यास्ततः पुत्रास्ततः प्रजाः ॥ ५ ॥

सब से पहले राजा को स्वयं विनयी बनने का प्रयत्न
 करना चाहिए, तदनन्तर वह अमात्य को, पुनः नौकरों को
 उसके पश्चात् अपने पुत्रों को फिर प्रजा को वह विनयी
 नाये।

राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः ।

लोकस्तदनुवर्तते यथा राजा तथा प्रजाः ॥ ६ ॥

राजा यदि धर्मात्मा हो तो प्रजा भी धर्मात्मा होती है,
 राजा पापी हुआ तो प्रजा भी पापी हो जाती है, लोक राजा
 का ही अनुवर्तन करते हैं। जैसा राजा होता है प्रजा भी
 वही होती है।

नृपाणां च नराणां च शमयोऽनुव्यवृत्तिः ।

आविश्य तु क्षमा पितृमाता दानं पराक्रमः ॥ ७ ॥

राजा भी दूसरे मनुष्यों के समान ही होता है। दोनों के
 लिये पर मुंह आदि समान ही होते हैं पर क्षमा, धीरता,
 दान देने की शक्ति और पराक्रम ये, राजा में अधिक होते हैं।

तदानुरक्तवृत्तिः प्रजापालनन्यतः ।

विनीतात्मानस्यैव भूषिणो विषमश्रुते ॥ ८ ॥

जिस राजा में दीवान सेना आदि का प्रेम रहता है, जो सदा प्रजा का पालन करने में तत्पर रहता है, और जो विनयी होता है वह विशाल लक्ष्मी का अधिकारी होता है ।

प्रजा न रक्षयेद्यस्तु राजा रक्षादिभिर्गुणैः ।

अजागलस्तनस्येव तस्य ब्रह्म निरर्थकं ॥ ९ ॥

जो राजा रक्षा आदि गुणों के द्वारा प्रजा को प्रसन्न कर सके उसका राज्य व्यर्थ है । जिस प्रकार यकरी के गले का स्तन निरर्थक होता है ।

अजामिध प्रजां हन्याधो मोहात्पृथिवीपतिः ।

तस्यैका जायते वृत्तिर्द्वितीयस्य कथंचन ॥ १० ॥

जो राजा अज्ञान के कारण यकरी के समान अपनी प्रजा को मारता है, इससे केवल उसी की वृत्ति होती है, इससे केवल यही प्रसन्न होता है ।

प्रजापीडनं संतापात्समुद्भूतो हुतारानः ।

राजः कुलंमित्रं प्राणाप्रादुग्ध्वाविनिवर्तते ॥ ११ ॥

प्रजापीडन के ताप से जो भाग उत्पन्न होती है वह राजा का कुल, लक्ष्मी और प्राणों को जलाकर पुष्कती है ।

यथा बीजाद्भिरः सूक्ष्मः प्रयत्नेनाभिवर्द्धितः ।

फलप्रदो भवेत्काष्ठे तद्वृक्षोकाः सुरक्षिताः ॥ १२ ॥

जिस प्रकार एक छोटे बीज की यत्नपूर्वक रक्षा की जाय तो वह समय पाकर फलता फूलता है उसी प्रकार प्रजा की रक्षा की जाय तो वह समय पर फल देती है ।

हिरण्यपात्राणां चिप्यो वारण वारिधयः ।

अपात्राणां चिप्यो वारिधयः स्यान्महीपतेः ॥ १३ ॥

सोना, धन, रत्न, स्त्री, हाथी घोड़ा तथा और भी सब चीजें राजा को प्रजा से मिलती हैं ।

हन्त्रातान्प्रतिरोपयन्कुसुमितांश्चिन्वंलघून्वर्यय
 शब्दघातमयन्गृह्णन्श्लेषयन्निर्लेपयन् तदतान्
 सुव्रान्कटकिनोवदिर्निवगवन्स्वातोपितान्पालय-
 म्मालाकार इवप्रयोग निपुणो राजा चिरं तिष्ठति ॥ १४ ॥

जो राजा याग के माली ने समान उखड़े हुओं को रोपता है, फूले हुओं से फूल चुनता है, छोटों को बढ़ाता है, बड़े हुओं को मचाता है, बड़े हुओं को छोटा बनाता है मिले हुओं को भलग भलग करता है छोटे छोटे कटौलों 'पेड़ या छोटे शत्रु) को बाहर निकालता है अपने रोपे हुओं का पालन करता है, इस प्रकार प्रयोग निपुण राजा बहुत दिनों तक राज्य करता है ।

भक्त्या निजदेशस्य रक्षां यो विप्रिणीयते ।
 सनृपः परिधानेन वृत्तमीलिः पुमानिव ॥ १५ ॥

जो राजा अपने देश की रक्षा बिना किये ही दूसरे देशों पर चढ़ाई करता है वह उस मनुष्य के समान है जो घोती को माथे पर लपेट लिये हो । इच्छात् धोतो न पहन कर घोती का साफा बांध ले ।

विप्रिणीपुरमिभिर्त्रिंशं वार्षिप्रगद्गोष मध्यमः ।
 वदासीन्नेवरातधिर्नित्येण नृपतेः स्थितिः ॥ १६ ॥

राजा का शत्रु, उसके मित्र, सीमा पर के राजा, अपने और शत्रु के बीच का राजा उदासीन—दूर का राजा, यही राजा की स्थिति है, एन्हीं से उसका सम्बन्ध है ।

निर्विशेषि यथा सर्वो कणाद्यैर्मयंकरः ।

सथाडंबरवान् राजा न परैरभिभूयते ॥ १३ ॥

जिस प्रकार बिपहीन सर्प फण फैलाकर भयंकर बनता है, लोगों को भयमोत करता है, उसी प्रकार आडंबर रखने वाला राजा शत्रु से पराजित नहीं होता ।

पुण्यैरपि नोद्धृत्य किं पुनर्निशितैः शरैः ।

अये भवति संदेहः प्रधान पुरुषस्य ॥ १८ ॥

फूलों के द्वारा युद्ध करना बुरा है, तीखे बाणों के द्वारा युद्ध की तो बात ही भलग है क्योंकि युद्ध में जय का निश्चय नहीं और अच्छे अच्छे वीरों के नाश का भय घना रहता है ।

भूमिर्मित्र दिरण्यवा विप्रहस्य फलार्थं ।

नास्त्येकमपि पक्षेण न तु कुर्यात्कथंचन ॥ १९ ॥

भूमि, मित्रता और सोना (धन) ये तीन युद्ध के फल हैं । जिस युद्ध में इन तीनों में का एक भी न हो, वैसा युद्ध कभी न करे ।

साम्नेवहिप्रयोक्तव्यमादौ कार्यं विज्ञानता ।

साम्ना सिद्धानिकायांथि विक्रिषां यति न कश्चिद् ॥ २० ॥

साम के द्वारा ही कार्य सिद्ध करने का प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि साम के द्वारा जो कार्य सिद्ध होने हैं वे नष्ट नहीं होते ।

नविश्वसेदमित्रस्य मित्रस्यापि न विश्वसेत् ।

विश्वासाद्भवद्वृत्तपन्नं मूलान्यपि निहंतति ॥ २१ ॥

शत्रुओं पर विश्वास न करे और मित्रों पर भी विश्वास न करे । क्योंकि विश्वास से जो भय उत्पन्न होता है वह जड़ मूल से नाश कर देता है ।

शपथैः संधितस्यापि न विश्वासं ब्रूज्जैदिपोः ।

राज्यलोभापतो वृत्रः शक्येन शपथैर्द्वैतः ॥ २२ ॥

शत्रु शपथ करे तो भी उसका विश्वास नहीं करना चाहिए, क्योंकि राजा के लोभ से शपथ के कारण ही इन्द्र ने वृत्र को मारा था ।

उपकारगृहीतेन शत्रुणा शत्रुमुद्धरेत् ।

पादुलान् करस्थेन कटकेनैव कट्यम् ॥ २३ ॥

किसी शत्रु को उपकार के द्वारा अपने गल्ल में करले, पुनः उसके द्वारा अपने दूसरे शत्रु का नाश करे । 'जल प्रकार पेट में लगा एक कांटा हथ में लिये हुये दूसरे कांटों के द्वारा निकाला जाता है ।

नोपेक्षितस्यो विद्वद्विरामयोरिरपश्या ।

बन्धिराप्येति संवृद्धः कुर्वते भस्मसाद्भनम् ॥ २४ ॥

विद्वान् को चाहिए कि वह तिरस्कार की दृष्टि से शत्रु और रोग की उपेक्षा न करे । आग का छोटा टुकड़ा भी बढ़ कर समूचे घन का नाश कर देता है ।

कीर्त्तिं तदोचमाख्याय प्रहारानपि मर्षयेत् ।

काले काले च मतिमानुजिह्वेऽकृष्यसर्पवत् ॥ २५ ॥

समय प्रतिकूल होने पर कछुप के समान अपने अङ्गों को छिपाकर राजा शत्रु की मार भी सहले । पुनः समय आने पर बुद्धिमानी के साथ कृष्य सर्प के समान उठ खड़ा हो ।

तस्माद्रपादिभेतर्ष्य चावद्वयमनागतं ।

भागवतं तु भवत्तु प्रहस्यममीकृतम् ॥ २६ ॥

भय से तभी तक डरना चाहिए जब तक भय सामने न आवे । जब भय सामने आ जाय तो निर्भय हो कर प्रहार करना चाहिये ।

परोपि हितवान्बुधैर्बुधैरप्यहितः परः ।

अहितो देहजोय्याधि हितमारण्यमौघर्ष ॥२७॥

दूसरा भी यदि हितकारी हो तो यह मित्र है, और मित्र भी यदि अहितकारी है तो यह शत्रु है । शरीर में उत्पन्न रोग अहित है और जङ्गल में उत्पन्न दया हित है ।

यच्छन्यं अस्तितुं प्राप्तं प्रस्तं परिणमेद्यत् ।

हितं च परिधामेत्यात्तद्ध भूतिमिच्छता ॥२८॥

अपना कल्याण चाहने वालों को चाहिए कि यह वही प्राप्त उठाये जो निगल जा सके निगलने पर पच जाय और जो अन्त में हितकारी हो । राजा को वही काम हाथ में लेना चाहिए जो ये कर सकें तथा जिसका अन्त उनके लिए कल्याणकारी हो ।

मा तात साहसं कार्षीर्विमयेर्गर्भमागतः ।

त्वगान्नाण्यपि भाराय भवति हि विपर्यये ॥२९॥

मैया, इस समय तुम्हारे पान घन हुआ है इस कारण साहस मत करो, क्योंकि घन के चले जाने पर अपना शरीर भी भारी हो जाना है, अर्थात् उस समय तुम्हें दूसरों की प्रकृति होगी ।

मा त्वं तात वृष्टेभ्यश्चा बाधिता दुर्बलं जनं ।

नदि दुर्बलदृग्भावां कृते किंचित्प्रतोदति ॥३०॥

भैया. तुम बलवान् होकर दुर्बलों को दुःख मत दो, क्यों कि दुर्बलों के द्वारा जलाये हुआ के कुल में कुछ भी नहीं होता ।

यानि मिथ्याभिभूतानां पतत्पथं वि रोदतां ।

तामि संतापकान्मति सपुत्रपशुनापवान् ॥३१८॥

यिना कारण सताये हुआ के रोने से जो भाँसू गिरते हैं वे भाँसू सताने वाले को पुत्र पशु तथा यन्त्रुओं के समेत मार डालते हैं ।

ब्राह्मणेषु च वे शूराः क्षीयु जातिषु जोषु च ।

धृतराष्ट्र फले पक्वे धृतराष्ट्रं पतति ते ॥३१९॥

धृतराष्ट्र, जो ब्राह्मणों के संघर्ष में धीरता दिखाते हैं, स्त्रियों, अपनी जाति वालों तथा गौओं के प्रति जो धीरता दिखाते हैं, वे पके फल के समान अपने गुच्छे से गिर जाते हैं ।

देव महत्स्व पुष्टानि सैम्यानि शुचिरीचनेः ।

पुष्टकाले विशीर्यते सैकते सेतवी यथा ॥३२०॥

जो सेना देवता और ब्राह्मण के बल से एकत्रित का जाती है अथवा जो स्वयं एकत्र होती है वह युद्ध के समय फिसल जाती है, जिस प्रकार बालू पर का बाँध फिसल जाता है ।

प्रलीलभाप्रलीतम यथाग्निर्देवतं महत् ।

पुत्रं विद्वानविद्वानं ब्राह्मणे देवतं परं ॥३२१॥

अग्नि का संस्कार किया गया हो या न किया गया हो, पर अग्नि महान् देव है, इसी तरह विद्वान् हो या अविद्वान् हो, ब्राह्मण महान् देव है ।

१. 'अद्वैतं दैवतं कुर्याद्दैवतं वाप्यदैवतं' ।

ब्राह्मणा लोकपालाश्च सृजेपुरनिकोपिताः ॥३५॥

क्रोध करने पर ब्राह्मण देवता को अदेवता और अदेवता को देवता बना देते हैं, नये लोकपालों की भी ये सृष्टि करते हैं ।

२. 'युगे युगे च ये धर्मास्तेषु धर्मेषु ये द्विजाः ।

तेषां निन्दा न कर्तव्या युगरूपादि वै द्विजाः ॥३६॥

जिस समय जो धर्म हो और उस धर्म के पालने वाले जो ब्राह्मण हों उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि समय का प्रभाव उन पर भी पड़ता है । ये भी समय के अनुरूप ही होते हैं ।

३. 'आक्रम्य ब्राह्मणैर्मुक्तं परिशीलैश्च बांधवैः ।

गोभिरश्च मृपशार्दूल राजसूयादिरिष्यते ॥३७॥

ब्राह्मण यदि ज़खरदस्ती भी खाजायें, बांधवों के पालन पोषण करने के कारण ज़ं नष्ट हो गया, जो गो धा से, हाँ इनका राजसूय यज्ञ से यद्वर पुण्य होता है ।

४. 'गन्धीर्गन्धार्द्रं हि गतायुश्च विद्विग्यहान् ।

गन्धीश्च गतायुश्च ब्राह्मणार्द्रं हि भारत ॥३८॥

जिसकी लक्ष्मी जाने वाली होती है वह अयोनिधियों से दीप करता है, जिसकी आयु थोड़ी रह गयी है वह दीपों से दीप करता है, और जिसकी लक्ष्मी तथा आयु जाने वाली होती है वही ब्राह्मणों से दीप करता है ।

कुदाश्चुन भूतावी विचारं कुरुम्विने ।

अनयोनयगंकारो हृदयाचारमर्चति ॥३९॥

जब बुद्धि विपर्यय हो जाती है, जब सब घातें विपरीत दिशायी पड़ने लगती हैं, तब अन्याय में न्याय के समान मालूम पड़ता है और वह मन से दूर भी नहीं होता ।

न कालः सङ्गमुद्यम्य शिरः कृतमि कस्यचिद् ।

कालस्य बलमेतावद्विपरीतार्थदर्शनं ॥४०॥

काल तलवार उठाकर किसी का सिर नहीं काटता, काल का बल केवल इतना ही है कि मनुष्य उलट समझने लग जाय ।

ज्ञानवपित्रने दैवान्यकरोति विगर्हित' ।

न कर्म गर्हित' लोके कस्यचिद्गोचरेकृत' ॥४१॥

मनुष्य जानता भी है पर वह निन्दित काम करता है, निन्दित काम संसार में किसी को भी प्रिय नहीं है ।

मा तात संपदामम मा रुदोस्मीतिविशसीः ।

दुरातोइ परिज'श विनिपातोति दादणः ॥४२॥

भाई, मैं बहुत अधिक धनी हो गया हूँ इस बात पर-
विश्वास मत करो, क्योंकि जो बहुत ऊँचा बढ़ता है उसका-
गिरना भी बड़ा ही भयानक होता है ।

किंवा च' प्रशंस'ति च' प्रशंसति चारणाः ।

च' प्रशंसति चैवस्यः स चार्थं पुरायणमः ॥४३॥

धूर्त जिसकी प्रशंसा करें, चारण जिसकी प्रशंसा करें
और दुराचारिणी स्त्रियाँ जिसकी प्रशंसा करे उसे नीच
मनुष्य समझना चाहिए ।

राजानो च' प्रशंसति च' प्रशंसति वै द्विजाः ।

साधवो च' प्रशंसति स चार्थं पुरयोत्तमः ॥४४॥

राजा जिसकी प्रशंसा करे, ब्राह्मण जिसकी प्रशंसा करे और सज्जन जिसकी प्रशंसा करें, यह श्रेष्ठ पुण्य है ।

प्रशानुष्ठशरीरस्य किं करिष्यति संहताः ।

शुद्धीतहस्तछत्रस्य चारिचारा इवारयः ॥४५॥

जिसने बुद्धि के द्वारा अपने शरीर की रक्षा कर ली है, उसका दलचक्र होकर भी कोई शत्रु क्या करेगा, जिसके हाथ में छाता है उसका घृष्टि क्या करती है ।

बहुनामप्यसाराणां समुदायो हि दारुणः ।

तस्याभृत्याः प्रकृतं व्यास्तेहि सर्वं क्रियाक्षमाः ॥४६॥

बनेक निर्यस्तों का समुदाय भी बड़ा भयानक होता है । राजा को ऐसे नौकर रखने चाहिए जो सब काम कर सकें ।

तृणैरापेक्ष्यते रज्जुस्तथा नागोहि बध्यते ।

एवं ज्ञात्वा नरेंद्रेण भृत्या कार्या विचक्षयाः ॥४७॥

तिनकों से रहसी बनायी जाती है जिससे हाथी भी बांध लिया जाता है यह समझकर राजा को नौकर रखने चाहिए ।

ताडितोपि दुरुक्तोपि दंडितोपि महीभुजा ।

न चिंतयति यः पार्श्वे स भृत्योर्हो महीभुजा ॥४८॥

राजा मारे' गाली दें दण्ड दें फिर भी जो उनके विषय में घुरी घाते' न सोचे, उनके अपकार करने का विचार न करे, वही राजा का भृत्य होने के योग्य है ।

योनाहूतः समभ्येति द्वारे तिष्ठति सर्वदा ।

पृष्ठः सत्यं मित्रं न ते स भृत्योर्हो महीभुजा ॥४९॥

जो बिना बुलाये आवे, और सदा द्वार पर खड़ा रहे,
पूछने पर सत्य और छोड़ा छोले, वही मनुष्य राजा के भृत्य
होने के योग्य है ।

सालार्थं सुखं कूरं त्वयं व्यसनिनं शठं ।

असंतुष्टमभक्तं च त्वज्जेद्वभृत्यं भ्रातृप्रियः ॥ ५० ॥

जो भालसी है, बकवादी है, क्रूर है, अड़ है, व्यसनी है
शठ है, असंतुष्ट है, जो राजा का भक्त नहीं है, ऐसे भृत्य का
राजा त्याग कर दे ।

रिक्ताः कर्मणि पटवस्तुतास्तद्वलमामर्शजि भृत्या ये ।

तेषां अलोकमामिव पृथानिरिक्ताकार्याः ॥ ५१ ॥

जो जब तक खाली रहने हैं तब तक थड़े प्रेम से काम
करने हैं, पर पूर्ण होने पर भालसी हो जाते हैं, राजा ऐसे
भृत्यों की जाँक के समान पूर्णता दूर कर दे, उन्हें खाली
कर दे ।

कूरं व्यसनिनं लुब्धमप्रगल्भं भयाकुलं ।

सूक्ष्मव्यापकतां नाधिपत्येन बोधयेत् ॥ ५२ ॥

क्रूर, व्यसनी, लोभी, कायर, दरपोंक, सूर्य, व्यापकारी
मनुष्य के हाथ में अधिकार न दे ।

न योगिभिर्विना राज्यं नास्ति भूवेदि देवसे ।

तामादमीविद्यातत्प्राप्तितयाः प्रपद्यतः ॥ ५३ ॥

योगियों के बिना केवल राजाओं से ही राज्य नहीं
चलता इस कारण थड़े यज्ञ से योगियों की रक्षा करनी
चाहिए ।

वेदेदेवतम्बुद्धौ अयोमयावयः ।

आत्मीयैरप्यतो विरुमेव राज्यतोदितः ॥ ५४ ॥

जो वेद वेदांग के तथ्यों को जाने जा जब होम म
करे, प्रतिदिन राजा की कल्याण-कामना करे, पक्षी ए
पुरोहित होने के योग्य है ।

अमागन्तो दितमग्निः सर्वभाजरीभक्षः ।

भीरो यपोक्तपात्री च एव दूतो मिथीवते ॥ ५५ ॥

संश-गरम्भरा से जो भाया हो, दित खा देने वाला हो
होगों के भाग परगने वाला हो, चीर हो, जेता होने बीमा
करने वाला हो देने मनुष्य को दूत बनाना आदि ।

अपीतो वायानुधीमान् स्वाभिभक्तश्च भिन्नाः ।

अमुक्तः सत्यपात्री च एव शासन लेखकः ॥ ५६ ॥

अपीत, चक्रा, स्वाभिभक्त, भलाभी और नश्यवापी,
देता मनुष्य राजा का शासन लेखक (सीरगुंशी) होना
आदि ।

हृष्टिनाकारवल्ग्वो कल्पनाग्रिमवर्जिताः ।

अवयवः स्वाभिभक्तः अनीहाराः ॥ ५७ ॥

हृष्टिना और अलकार वाद करने वाला, अवयव, दीवने में
एन्द्र, समस्त आने वाला और स्वाभिभक्त मनुष्य आदि
करा मन्त्र है ।

अपिवाही कल्पानुधीमान्पुदको विरोधिपुः ।

अप्यन्तर्जातिज्ञाता दूत लेखक इत्यत्र ॥ ५८ ॥

अपिवाही, चक्रा, कृत्रिमान् म द्र काम करने वाला विरो
द्विज और ज्ञा अन्तर्जाति का ज्ञान हो बहुत लेखक कर
जाना है ।

शूरोर्धशास्त्रनिपुण- कृतशास्त्र कर्मा
संग्रामकेलिचतुरश्चतुरंगयुक्तः ।
अनुनिदेशवशागोचिमतश्चतमे,
सेनापतिर्नरपतेर्विश्यागमाय ॥ ५९ ॥

धीर, अर्थशास्त्र का ज्ञाता, शस्त्र प्रयोग में चतुर, स्वामी
की आज्ञा मानने वाला और राज्य में प्रतिष्ठा रखने वाला
सेनापति राजा को विजयी बनाता है । अर्थात् सेनापति में
इस गुण होने चाहिए ।

काणाः कुब्जाश्च पंडाश्च तथा वृद्धाश्च वंगवाः ।
दूतेषांतुः नित्यं निवोक्तव्याः क्षमाभृता ॥ ६० ॥

काना, कुबजा, नपुंसक बूढ़े और वंगु रनियास में मुकु-
ट्ट करने चाहिए, क्योंकि ये लोग क्षमाशील होते हैं ।

सिद्धाश्चमित्र राजेन्द्र सर्वसाधारणाक्षिपः ।
परोक्षे च समक्षे च रक्षितव्याः प्रथमतः ॥ ६१ ॥

पक्षाघे हुए अन्न के समान स्त्रियाँ सब के उपयोग में ला-
सकती हैं । इस कारण परोक्ष या प्रत्यक्ष संपदा इनकी रक्षा
करनी चाहिए ।

सूक्ष्मेभ्योऽपिप्रसंगेभ्योऽद्यामाधोहि सर्वदा ।
द्वयोहि'कुलयोः शोकभावदेयुररक्षिताः ॥ ६२ ॥

छोटी छोटी बातों से भी स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिए ।
क्योंकि बिना रक्षा किये पतिकुल और पितृकुल दोनों को
दुःखी बना सकती हैं ।

महिष्या दृष्ट्या भाभ्यं गृहकार्येषु दक्षया ।
सुसंस्कृतोपस्करया ध्यये चामुक्तदक्षया ॥ ६३ ॥

महारानी को सदा प्रसन्न रहना चाहिये, घर के कामों में प्रवीण होना चाहिये, अपने सब सामान स्वच्छ तथा सुन्दर रखने चाहिये, और हाथ खोल कर व्ययन करना चाहिये ।

धर्मशास्त्रार्थकुशलाः कुलीनाः सत्यवादिनः ।

समाः शत्रौ च मित्रे च सुपतेः स्युः सभामदः ॥ १३ ॥

जो धर्मशास्त्र जानते हों, कुली न हों सत्यवादी हों शत्रु और मित्र दोनों को एक दृष्टि से जो देखें, वे ही राजा के समा सद बनाये जाय ।

न सा समा यत्र न सति वृद्धा वृद्धा न ते येन वदति धर्म ।

नासौ धर्मो यत्त नैवास्ति मर्त्यं न तत्सत्यं वञ्छलेनानुविद्यं ॥ १४ ॥

यह समा नहीं है जहां अनुमयी वृद्ध न हों, वे वृद्ध नहीं हैं जो धर्मानुकूल न बोलें । यह धर्म नहीं है जहां सत्य न हो, और यह सत्य सत्य नहीं है जो कपटहीन न हो ।

सभाया न प्रवेष्टव्या वृद्धा न नासर्मजयं ।

अनु वन्ति नु वन्त्यापि नरः क्रिञ्चिपमधुने ॥ १५ ॥

समा में जाय ही नहीं, यदि जाय तो ठीक ठीक को, क्योंकि समा में जाकर बिना बोले या उल्टा बोले मनुष्य पापमार्गी होना है ।

तस्मात्सम्यः सर्वा गम्या रागद्वेषवित्रिणः ।

वचस्तथा विषं नूपायथा न नरकं मरेत् ॥ १६ ॥

इस कारण मर्त्य मनुष्य समा में जाय, रागद्वेष दूर करके वह धैर्य धारण करे जिससे नरकमार्गी होना न पड़े ।

माता पिता गुरुर्भाना भार्या पुत्रः पुरोहितः ।

न दंड्यो नाम राज्ञोक्तिस्वधर्मे योजुतिष्ठति ॥ ६८ ॥

माता, पिता, गुरु, भाई, स्त्री, पुत्र और पुरोहित ये राजा के, जो अपने धर्म का पालन करते हैं, दण्डनीय नहीं हैं ।

अपत्यो ब्राह्मणो बालः स्त्री तपस्वी च रोगवान् ।

क्रियते स्वंगताद्दुष्येण सतो दोषैर्न लिप्यते ॥ ६९ ॥

ब्राह्मण, बालक, स्त्री तपस्वी और रोगी, इनसे कोई बड़ा नारी अपराध भी हो जाय तो भी राजा को चाहिए कि यह इनका दोष न करे, केवल कोई बहुत बड़ा दोष हो उससे उसे पाप नहीं होता ।

न तु हन्याममहीपालो दुर्न कस्यां चिदादि ।

दूताहत्यायु नरकमाविशेतचिरैः सह ॥ ७० ॥

यही भारी आपत्ति की सम्भावना रहने पर भी राजा दुर्न को न मारे, दुर्न का दोष करने से राजा अपने दीवानों के साथ नरकगामी होता है ।

विशोधयेममहीपालो मन्त्रिशालामशेषतः ।

अयुजीनाहंतित्यानुमत्या मंत्रहस्यचिन् ॥ ७१ ॥

विचार करने के समय राजा मन्त्रिशाला को तूय दुर्न-वाड़े, बिना सावधान हुए यह मन्त्रिशाला में न दूँटे ।

मंत्र हर्णांतर भीतिर्देशकालोचितस्थितिः ।

परचराजिमवेक्ष्यः सामान्यः पृथिवीपतेः ॥ ७२ ॥

जो मंत्र-संग्रह में प्रेम रखता है, देशकाल के अनुसार रह सकता है, और जो राजा में प्रेम रखता हो, वह राजा का मान्य हो सकता है ।

अथः सारैः कुरिनीः सुभित्तैः सुगरीभिः ।

अतिविपरीतमेव सामं सुभित्तैश्च अस्ति ॥ ७१ ॥

मीनर में बन्दवान् साधे स्नेही और गुप्त परीक्षित (गिरी) के द्वारा ही राज्य निर रहता है जिस प्रकार मत्त पर मकान टूटता रहता है ।

आरतिदिनकनीं दूष्यतां वाणि म्भे

अथरदिनकनीं सुभित्तैः वाणिभ्योऽपि ।

इति मन्त्रि विवादेऽप्यमाने भवान्-

सुभित्तैश्च दानां दुर्भयः कार्यकनीं ॥ ७२ ॥

राजा का दिन चाहने वाला मनुष्य प्रजा का शत्रु हो जाता है, प्रजा का दिन चाहने वाला राजा का विरामनाशक हो जाता है राजा उसे निकाल देना है । इस प्रकार दोनों और के विकट विवाद में ऐसा मनुष्य मिलना बड़ा कठिन है जो राजा और प्रजा दोनों का बल्ल्याण करे ।

पदकनीं भिद्यते मन्त्रश्च नुः कर्णः स्थितो भवेत् ।

द्विकर्णस्य तु मन्त्रस्य ब्रह्माप्यतं न गच्छति ॥ ७३ ॥

छ कानों में पहुचने पर मन्त्र प्रकाशित हो जाता है, चार कानों में यह स्थिर रहता है, कोई तोसरा नहीं जानता, और जो मन्त्र दो ही कानों में रहे, उसका पता ब्रह्मा को भी नहीं लगता ।

एक इन्द्राच्च वाहन्यादिषु घृष्टो घनुष्मता ।

बुद्धिबुद्धिमता युक्ता इति राश्व सनायक ॥ ७४ ॥

घनुधारी का छोड़ा हुआ घाण एक मनुष्य को मार सकता है या न भी मार सकता है । पर बुद्धिमान की बुद्धि

का यदि विनियोग किया जाय तो वह समूचे राज्य तथा राज्य के अधिपति का भी नाश कर देती है ।

न तद्रथैर्न नागैर्न नंदयैर्नच पत्तिभिः ।

कार्यं संसिद्धिमभ्येति यथा बुध्या प्रसाधितं ॥ ७७ ॥

रथों हाथियों घोड़ों और सैनिकों से भी जो कार्य सिद्ध नहीं होता, वह बुद्धि के द्वारा सिद्ध हो जाता है ।

दुर्योधनः समर्थोपि दुर्मन्त्री प्रलभ्य गतः ।

राज्यमेकदशकारोचैः सुर्मन्त्री चन्द्रगुप्तकः ॥ ७८ ॥

दुर्योधन समर्थ था, पर घुरे मन्त्री के कारण उसका नाश हो गया । एक चन्द्रगुप्त ने ही राज्य किया जिसका मन्त्री धूर्ष्ट था, योग्य था ।

भगवच्चपिबोद्धव्यं मंत्रिभिः पृथिवीपतिः ।

यथा स्वदोषनाशाय विदुरेणाविकामुतः ॥ ७९ ॥

राजा न सुने तो भी मन्त्रियों को राज्य की बातें उससे कहनी चाहिए । जिस प्रकार स्वयं दोषमुक्त होनेके लिए विदुर धृतराष्ट्र को समय समय पर समझा दिया करते थे ।

पृष्टो ऋते मित्रं ऋते परिणामे सुखादहं ।

मन्त्री चेत्प्रियवक्तास्यात्केवलं स त्रिपुः स्मृतः ॥ ८० ॥

पूछने पर झोले, थोड़ा थोड़े और वैसा झोले जो परिणाम में सुखकारी हो । जो मन्त्री केवल प्रियवक्ता हो वह शत्रु है, वह राजा और राज्य का नाश कर देता है ।

सुलभाः पुरुषान् राजन्सततं प्रियवादिनः ।

मन्त्रिपरय च पथ्यस्य वक्ताभ्योता च दुर्लभः ॥ ८१ ॥

महाराज प्रिय बोलने वाले मनुष्यों का धारा नहीं है पर अप्रिय किन्तु हितकारी व त का बोलने और सुनने द्वारा दोनों ही दुर्लभ है ।

दुर्गाणि राज कार्याणि सत्रलानि दूदानि च ।

मृष्यमङ्गं च तेज्वेव स्थापनीयं प्रयत्नतः ॥ ८२ ॥

राजा को सजल और मजबूत किला बनाना चाहिए, और घन अन्न उसी में यत्न पूरक रखना चाहिए ।

दुर्गे बहुविधं श्रेयं पर्वतस्य जलस्य च ।

भाकारस्य घनस्यापिभूमेरपि भवेत्कचित् ॥ ८३ ॥

किला अनेक प्रकार का होता है, पर्वत का किला, जल का किला, चार दीवारी का किला, घन का किला और कहीं कहीं पट जमीन का भी किला होता है ।

न गजानां महत्त्वेण न स्थैर्येण वाजिनां ।

तथा सिध्यति कार्याणि यथा दुर्गं प्रभावतः ॥ ८४ ॥

हजारों हाथियों रथों और घोड़ों से जो कार्य नहीं होता, यह काम किले से हो जाता है ।

विपहीनो यथा नागो मदहीनो यथा गजः ।

सर्वेषां पश्यतो याति दुर्गंहीनश्च मूपतिः ॥ ८५ ॥

विपहीन साँप, मदहीन हाथी जिस प्रकार सबके देखते देखते ही अपमानित हो जाते हैं, उसी प्रकार दुर्गहीन राजा भी ।

शतमेक्रोहि संपत्ते दुर्गं स्योदि धनुर्दरा ।

तस्माद्दुर्गं प्रसूतति नोतिशास्त्रविदोऽनया ॥ ८६ ॥

किले में गहक एक धनुर्धारी भी सौ बीरों से युद्ध कर सकता है, इसी कारण नीतिशास्त्र जाननेवाले दुर्ग की प्रशंसा करते हैं ।

एकः शतयोगयते प्रकारस्थोऽधनुर्धरः ।

शतं सहस्राणि तथा सहस्रं लक्षमेव च ॥ ८० ॥

किले के चार दीधारी पर से एक धनुर्धारी भी आशुमियों को लड़ा सकता है, सौ मनुष्य हजार को और हजार लाख को लड़ा सकने हैं ।

त्रिविधाः पुरुषा राजनुचमाधममध्यमराः ।

मिषोद्वेक्षधैरैतांस्त्रिविधेष्वपि कर्मसु ॥ ८१ ॥

उत्तम मध्यम और अधम तीन प्रकार के मनुष्य होते हैं, इनको उत्तम मध्यम और अधम तीन प्रकार के कार्यों में लगावे ।

तुल्यार्थं तुल्यसामर्थ्यं कर्मैर्जं व्यवसायिनः ।

अर्थराश्याहं भृत्यं यो न हन्यात्स हन्यते ॥ ८२ ॥

जो धन और पराक्रम में बराबर हो, रहस्य जानना हो, उद्योगी हो और भाड़े का हिस्सेदार हो, ऐसे को जो नहीं मर्यादा डालता, वह खुद मारा जाता है ।

त्रिजिज्ञेयं यदा राजा समं भृत्येषु तिष्ठति ।

सत्रैःपमः समर्थानामुत्साहः परिधीयते ॥ ८३ ॥

जो राजा अपने सब भूत्यों को समान देखता है, उसके उद्योगी भूत्यों का उत्साह कम हो जाता है ।

प्रसादो निष्कलो यस्य यस्य कोषो निरर्थकः ।

न तं भर्तारमिच्छति पतिं शूद्रमिवाग्राजः ॥ ८४ ॥

जिसकी प्रसन्नता निष्कल हो, जिसका क्रोध निरर्थक हो, ऐसे स्वामी को लोग नहीं चाहते, जैसे स्त्रियाँ वृद्ध को पति बनाना नहीं चाहती ।

न्यजेन्नामिनमत्युग्रं मत्पुत्रात्कृण्वन् न्यजेत् ।

कृपणाद्विशेषोऽनस्माद्य कृतनाशकं ॥९२॥

जो स्वामी यड़ा क्रोधो हो उसका त्याग कर दे, उसकी अपेक्षा भी जो कृपण हो उसका त्याग करे, कृपण की अपेक्षा जो भूत्यों के कार्यों का अन्तर न समझे उसका त्याग करे, उसकी अपेक्षा भी उसका त्याग करे जो भूत्य के कार्यों को मूल जाय ।

अधिवेदिनि भूपाले मरयति गुणिनां गुणाः ।

प्रवासामिके कांते यथा साध्यास्तनोवति ॥९३॥

जहाँ का राजा अधिवेकी रहता है वहाँ 'गुणियों के गुण मर जाते हैं । जिस प्रकार प्रवासो पति को स्त्री के स्तनों का बढ़ना रुक जाता है ।

किंशुके किं शुकः कुर्यात्फलितेपि बुभिक्षितं ।

भदातरि समृद्धेपि किं कुयुरूपमीविनः ॥९४॥

शुक भखा होने पर भी फलित पलातु वृक्ष पर क्या लाभ उठा सकता है ? इस प्रकार मालिक धनी भी हो पर कृपण हो तो भूत्यों का क्या लाभ हो सकता है ।

सेवया धनमिच्छद्भिः सेवकैः पश्यवत्कृतं ।

स्वातन्त्र्यं यच्छरीरस्य मूढैस्तदपि हारितं ॥९५॥

सेवा के द्वारा धन चाहने वाले सेवकों ने क्या किया है ? उसे देखो । मूर्खों ने अपने शरीर की स्वतन्त्रता भी बेच दी ।

परं वनं कलं मैत्र्यं वरं भारोपजीवनं ।

दुःखो विवेकहीनानां सेवया न धनार्जनम् ॥ ९६ ॥

वन का वास अच्छा, फल भोजन भी अच्छा, भार ढोकर जीना भी अच्छा, अथवा जीवन का भार होना भी अच्छा, पर विवेकहीन पुरुषों को सेवा द्वारा धनार्जन अच्छा नहीं ।

जीवन्तोपि मृताः पञ्च म्यासेन परिकीर्तिताः ।

दृष्टिदो व्याधितो मूर्खः प्रवासी नित्यसेवकः ॥ ९७ ॥

व्यासदेव ने इन पाँच मनुष्यों को जीते हुए भी मृत बतलाया है, दृष्टि, रोगी, मूर्ख, प्रवासी और सेवक ।

न कश्चिच्चन्द्र कोपामामात्मोद्योनामभूवृत्ता ।

होतारमपिशृण्वन्तन्ददत्त्वेव हुताशनः ॥ ९८ ॥

कोधी राजाओं का कोई भी अपना नहीं होता । हवन करनेवाले होता को भी भग्नि जलाता ही है । इसी प्रकार कोधी राजा भी अपने सेवक को जला सकता है ।

गृभाकारोपि सेव्यः स्याद्भसाकारैः समासदैः ।

हंसाकारोपि संन्यास्यो गृभाकारैः समासदैः ॥ ९९ ॥

राजा चाहे गीध के आकार का हो और समासद हंस के आकार के हों, फिर भी वे राजा की सेवा करें ही गे । हंस के आकार का भी मनुष्य यदि निर्धन है तो गीध के आकार वाला भी उसका त्याग कर देगा ।

चक्रं सेव्यं नृपः सेव्यो न सेव्यः केवलो नृपः ।

वश्य चक्रस्य माहात्म्यं सृष्टिर्द्वयः पात्रतां गतः ॥ १०० ॥

राजा के चक्र (नौकर चाकर आदि) की सेवा चाहिए, केवल राजा की नहीं । चक्र का बड़ा महत्व है, चक्र के कारण मृत्पिण्ड पात्र धन गया ।

गंतव्या राज्यसभा दृष्टव्या राजपूजिता लोकाः ।

यद्यपि न भण्ट्यर्थास्तथाप्यनर्था विनश्यति ॥ १०१ ॥

राजसभा में जाना चाहिए, राजसम्मानित मनुष्यों देखना चाहिए । यद्यपि इनसे कोई फल नहीं होता है, विपत्ति का नाश अवश्य होता है ।

भत्याघ्न विनाशाय दूरतश्चाफलप्रदाः ।

मध्यभावेन संप्यते राजा बहिर्गुरुः स्त्रियः ॥ १०२ ॥

बहुत पास जाने से नाश हो जाता है, दूर रहने से फल नहीं होता । इस कारण राजा, अग्नि, गुरु और स्त्री से मध्य भाग से करनी चाहिए ।

आसन्नमेव नृपतिर्भजते मनुष्यं

विद्याविहीनमकुलीनममंगलं वा ।

प्रापेद्य भूमिपतयः प्रमदा लताश्च

यः पश्येत्ता भवति तं पश्येद्यति ॥ १०३ ॥

राजा पास धाले मनुष्य पर ही प्रसन्न रहता है, यह वा भूर्ग हो, अकुलीन हो या अयोग्य हों । प्रायः राजा, स्त्रियों और लताएं उसी का आलिंगन करता है जो उनके पास रहता है ।

यस्मिन्मेवाचिर्दं चक्षुराश्रययति पार्थिवः ।

कुलीनो चाकुलीनोऽपि न धियो भावन्न भवेत् ॥ १०४ ॥

राजा जिसकी ही ओर अधिक ध्यान दे, यह कुलीन या अकुलीन यह लक्ष्मी का भाजन हो जाता है ।

धवलान्यातपात्राणि वाजिनश्च मनोरमाः ।

सदा मत्ताश्च मार्तगाः प्रसन्ने सति शूपतौ ॥ १०५ ॥

राजा जब प्रसन्न हो जाता है तब श्वेत छत्र, सुन्दर घोड़े,
और मतवाले हाथी मिलते हैं ।

राजामानरि देव्यां च कुमारो मुग्य मन्त्रिणि ।

पुरोहिने प्रतीहारे ममं वनेन राजवन् ॥ १०६ ॥

राजमाता, महारानी, राजकुमार, प्रधान मंत्री, पुरोहित
और प्रतीहार इनका राजा के समान आदर करे ।

पद्माद्भ्येषु वध्यंते सामर्थ्यमपराङ्मुखाः ।

विकटैरायुधैर्वानि ते स्वर्गः योगिनो यथा ॥ १०७ ॥

जो युद्ध में बिना पीठ दिखाये भवानक अस्त्रों के द्वारा
मारा जाता है वह स्वर्ग जाता है, जिस प्रकार योगी लोग
स्वर्ग जाते हैं ।

पदानि कष्टं तुङ्ग्यामि भाद्रवेप्सुनिवर्तिना ।

राजा मुकुटमादत्ते इतानी विपलापिनौ ॥ १०८ ॥

जा लाग युद्ध में नहीं मुड़ने, आगे बढ़ते जाते हैं, उनका
एक एक पैर बढ़ता यज्ञ के समान है । जो युद्ध से भाग आते
हैं, उनका पुण्य राजा छे लेता है ।

तवाहंवादिनं क्षीयं निदेति परमां गतिं ।

न हृष्याद्विनिवृत्तं च युद्धं प्रेक्ष्यमागतं ॥ १०९ ॥

इतने प्रकार के मनुष्यों को युद्ध में न मारना चाहिए, जो
कहे कि मैं आपकी शरण हूँ, जो नपुंसक हो, जो धरमहीन
हो, जो युद्ध से छोड़ा जाता हो और जो युद्ध देखने भागा
हा ।

राजा के चक्र (नौकर चाकर आदि) की सेवा चाहिये, फेरल राजा की नहीं । चक्र का बड़ा महत्व है चक्र के कारण मृत्पिण्ड प्राप्त बन गया ।

गंतव्या राश्वसभा द्रष्टव्या राजपूजिता लोकाः ।

यद्यपि न भवन्त्यस्यास्तयाप्यनया विनश्यति ॥ १०१ ॥

राजसभा में जाना चाहिए, राजसम्मेलन देखना चाहिए । यद्यपि इनसे कोई फल नहीं मिलता किन्तु जाना अवश्य होता है ।

मृगः कामासक्तो गणयति न कार्यं न च हितं-

यथेष्टं स्वच्छन्दमहनि किल मधोगत्र इव ।

ततो मानाध्मातः पतति न यदा शोक गहने

तदामात्ये दोषान्क्षिपति न निजं वेत्य विनयं ॥ ११५ ॥

कामो राजा कोई कार्य नहीं कर सकता, और वह हिता-हित भी नहीं समझता, मतवाले हाथी के समान जो चाहता है, वही करता है । अभिमान में फूँडकर जब वह पड़ी विपत्ति में पँसता है, तब सारा दोष मन्त्री को दे देता है, पर अपनी गुराणियों को नहीं समझता ।

गुणवद्गुणवद्वा कुर्वता कार्यज्ञानं

परिणतिद्वधापा यत्नतः वर्तितेन ।

अतिरमसकृतानां वसेणा मा विपत्तं-

र्भवति हृदयदाही शम्भु तुन्धो विराटः ॥ ११६ ॥

अच्छा वा बुरा कोई भी कार्य करने को पहले उसके फल का निश्चय कर लेना चाहिये, अल्हसे में किये हुए काम विपत्ति के लिए होते हैं, उनसे सदा कष्ट उठाना पड़ता है ।

आपाद्यतुर्ध भागेन ध्वयं कर्म प्रवर्तयेत् ।

प्रभूत तैलदीपोदि पिरं भद्राणि परयति ॥ ११७ ॥

अपने चौथे हिस्से का ध्वय करना चाहिये, जित्त दीपक में अधिक तेल रहता है वह बहुत देर तक जलता है ।

अर्थात्ताम्रार्जनं कार्यं वर्धनं रक्षणं तथा ।

अद्वयमानो नितादाया सुमेधसि दीपने ॥ ११८ ॥

अधकः अर्जन करना चाहि, माय के बिना केवल लक्ष्य करने से सुमेधका भी नाश हो सकता है, वह भी सतम हो सकता है ।

द्विजा अपि न गच्छति यां गतिं नारि योगिनः ।

स्वाम्ययं संत्यज्याणांस्तां गतिं याति सेवकः ॥ ११० ॥

प्राह्मणों को भी जो गति नहीं मिलती, योगियों को भी जो गति नहीं मिलती, सेवक स्वामी के लिए प्राण त्याग कर के उस गति को पाता है ।

राजा तुष्टोपि मृत्यानां मानमात्रं प्रयच्छति ।

तेषु संमान मात्रेण प्राणैः प्रत्युपकुर्वते ॥ १११ ॥

राजा प्रसन्न होकर अपने मृत्यों को केवल सम्मानित करता है, और ये भी सम्मानित होने के कारण प्राणों से उन उपकार का प्रत्युपकार करने हैं ।

सारामारपरिच्छेत्ता स्वामी मृत्यस्य दुर्लभः ।

अनुकूलः शुचिर्दक्षः प्रभोमृत्योहि दुर्लभः ॥ ११२ ॥

पथार्थ और अथार्थ का ज्ञान रखने वाला स्वामी मृत्य को दुर्लभ है और अनुकूल शुद्ध तथा दक्ष मृत्य भी स्वामी को दुर्लभ है ।

पान भक्षस्तथा नार्यो मृगया गीत वाहिने ।

एतानि युक्त्या सेवेत प्रसंगो यत्र दोषवान् ॥ ११३ ॥

शराय, भोजन, स्त्रियां, आखेट, गाना यज्ञाना इनका नियमित उपयोग करे, क्योंकि इनमें आसक्ति से हानि होती है ।

अतितेजस्वपिनृपः पानासक्तो न साधयन्पर्यान् ।

दुष्टमपि दग्धुमशक्तो बहवाग्निः स पिवन्नग्निं ॥ ११४ ॥

शरायी राजा चाहे बड़ा तेजस्वी हो, पर वह कोई काम सिद्ध नहीं कर सकता । बहवाग्नि एक तिनके को भी नहीं जला सकता । क्योंकि वह समुद्र पान करता है ।

गृपः कामासक्तो गणयति न कार्यं न च हितं-

पयेष्टं स्पष्टं द्रव्यं किंल मत्तोगज इव ।

तत्रो मानाध्यातः पतति न यदा शोक गहने

तदामात्ये दोषान्क्षिपति न नित्र येत्य विनय ॥ ११५ ॥

कामी राजा कोई कार्य नहीं कर सकना, और यह हिता-हित भी नहीं समझना, मनवाले हाथी के समान जो चाहता है, यही करता है । अभिमान में फुल्लकर जब यह पड़ी विपत्ति में फँसता है, तब सारा दोष मन्त्री को दे देता है, पर अपनी गुराण्यों को नहीं समझता ।

गुणवद्गुणवशा कुर्वता कार्यनाशं

परिणतिद्वेषाया पछतः पश्चितेन ।

भक्तिभक्तकृतानां कर्मणा मा विपत्ते-

र्भवति हृदयदाही शन्य तुभ्यो विपाकाः ॥ ११६ ॥

भय्या या घुरा कोई भी कार्य करने के पहले उसके फल का निश्चय कर लेना चाहिये, जल्दी में किये हुए काम विपत्ति के लिए होते हैं, उनसे सदा काष्ट उठाना पड़ता है ।

आवाहगुणं भागेन स्वयं कर्म प्रवर्तयेत् ।

प्रभूत तैरुदीपोदि चिरं भद्राणि परयति ॥ ११७ ॥

अपने छोटे हिरसे का व्यव करना चाहिये, जिस दीपक में अधिक तेल रहता है वह बहुत देर तक जलता है ।

अर्थात्तमर्जनं कार्यं वर्धनं रक्षणं तथा ।

भक्ष्यमाणो नितादावा सुमेधनि दीपने ॥ ११८ ॥

अर्पकः अर्जन करना चाहिये, भाग्य के बिना केवल लक्ष्य करने से सुमेधका भी नाश हो सकता है, वह भी लक्ष्य हो सकता है ।

कर्मणा मनसा वाचा चक्षुषां च चतुर्विधं ।

प्रमादयति लोकं यस्तं लोकानुग्रहीदति ॥ ११९ ॥

कर्म मन वचन और चक्षु इन चारों के द्वारा जो लोक व प्रसन्न कर सकता है उसी पर यह लोक प्रसन्न होता है ।

संमोक्षणं संकथनं संशयोपममागमः ।

शान्तिभिः सहकारिण्यि न विरोधः कदाचन ॥ १२० ॥

जाति घालों के साथ मोक्षण, चार्तालाप, कुशल प्रश्न, भ्राना जाना करना चाहिये, विरोध कभी नहीं करना चाहिये ।

संहतिः धैर्यसौ राजन्विगुणेष्वपिर्विबुधु ।

शुपेनापि परिग्रहः न पुरोदति तंडुलाः ॥ १२१ ॥

धैर्य गुणहीन भी हों पर उनकी संहति अच्छी होती है, चावल जब भूसी को छाड़ देता है तब उसको भांडुर उत्पन्न करने की शक्ति नष्ट हो जाती है ।

मृदोः परिमत्रोन्नित्यं वैरं तीक्ष्णस्वनित्यशः ।

वस्तुज्य तद्वद्वय तस्मान्ममण्यां वृत्तिं समाग्रयेत् ॥ १२२ ॥

कोमल प्रवृत्ति वाले मनुष्य का पराजय होता है, तीक्ष्ण प्रवृत्ति वाले का लोगों से विरोध हो जाता है । इस कारण इन दोनों का त्याग करके मध्यम वृत्तिका अवलम्बन करना चाहिये ।

अबुद्धिमाधितानां च क्षतव्यमपराधिनां ।

नहि सर्वत्र पांडित्यं सुलभं पुरुषे क्वचित् ॥ १२३ ॥

मूर्ख मनुष्य के अपराधों को क्षमा कर देना चाहिये, क्योंकि सब मनुष्यों में पाण्डित्य होना सम्भव नहीं है ।

तेजसि निप्रमोषेते नातिहृङ्गमाचरेत् ।

अति निमंभनादग्निप्रदनादपि जायते ॥ १२३ ॥

हमारील तेजस्वी मनुष्य के प्रति कठार व्यवहार नहीं करना चाहिये, क्योंकि अधिक रगड़ने से चन्दन से भी अग्नि उत्पन्न हो जाती है।

किमप्युक्तं महतां सिद्धिमेतिलषीयतां ।

अदीपो भूमितेदीनध्वान्नहति न आनुमान् ॥ १२४ ॥

कुछ कार्य ऐसे होते हैं जो चड़ों से सिद्ध नहीं होने, किन्तु ये छोटी के द्वारा ही सिद्ध होते हैं। घर के भीतर का अग्नि-दीपक ददाता है, सूर्य नहीं।

अथावशुचिर्न कार्यमानिष्यं गृहमागते ।

हेतुमप्यागतेष्ठापो नोपवहरतेतुमः ॥ १२५ ॥

घर भाये हुए शायु का भी उचिन अतिथि-सत्कार करना चाहिये ॥ पड़े उसको भी छाया देते हैं जो उन्हें काटने आता है।

हनुर्मेधोवपतिगुर्मेधः सहुधमपि ।

बुद्धिमतः सहने च विधाय हृदि विचन ॥ १२६ ॥

मात्ने धातों का हेतुकर भेड़ा माग जाता है, और सिंह सजुवा जाता है, बुद्धिमान मनुष्य मन में कुछ विचार कर विपत्ति का सामना करने हैं।

अत्रति ते सूचयिषः पराभयं सवन्निमादा विचरे न माविना ।

अभिरुचिर्हृदि न भवति विचर न नृणां निशिता हरेणः ॥ १२७ ॥

ये मूर्ख मनुष्य पराजित होते हैं जो मायावियों के प्रति मायायी नहीं होते। ये मनुष्यों के भीतर धुमकर शब्द उनका

बध करते हैं, जैसे, नङ्गे बदन वाले मनुष्य का बध सीधे बाध करते हैं ।

कोहं कैः देशकालौ समविषम गुणा केरुणः के सहायाः

का शक्तिः कोम्युपायः फलमिदमक्रियत्कीदृशीदिवसंपद ।

संपत्तौ को निबधः प्रविदित वचनस्योत्तरं किंनुमेत्या-

दित्येवं कार्यसिद्धावबहितमनसोहस्तगाः संपदः स्युः ॥१२१॥

मैं कौन हूँ, कैसा देश काल है, अच्छे बुरे गुण वाले कितने शत्रु हैं और कितने सहायक हैं, मेरी शक्ति क्या है, उपाय क्या है, इसका फल क्या है, माग्य अनुकूल है कि नहीं, सम्पत्ति में रुकावट क्या है, मेरा रह य प्रकट होने पर मैं क्या उत्तर दूँगा, इस प्रकार कार्य-साधन में जो साधधान रहते हैं सम्पत्ति उनके हाथ में रहती है ।

स्वधर्मे राघवरचैव ह्यधर्मे दशरुठका ।

एवं वर्द्धति लोकाश्च यतो धर्मेस्ततो जयः ॥ १२० ॥

स्वधर्म में रामचन्द्र थे और अधर्म में राघव । लोग कहते हैं कि जिधर धर्म रहता है उधर विजय रहती है । रामचन्द्र विजयी हुए, और राघव पराजित ।

धर्मः प्रागेवर्चिष्यः सचिवगतमतिः सर्वदा लोकनीयो

प्रच्छासीरोपयोगी मृदु कठिन रसौ योजनोद्यौ च काले ।

शैवं लोकानुवृत्तिं वरचयनचरैर्महलं वीक्षणीय-

मात्मायन्नेनरक्ष्योरथ शिरसिपुनः सोपिनापेक्षणीयः ॥१२१॥

धर्म का विचार पहिले करना चाहिए, मन्त्री को अपना मत बतला कर सब राज्यकार्य सदा देखना चाहिए, क्रोध और रोग छिपाना चाहिए, समय पर कोमल या कठिन रस की योजना करना चाहिए । प्रजासंबन्धी बातों को विभ्रसनीय

घरों के द्वारा जानना चाहिये, अपने राज्य का निरीक्षण करना चाहिये, यत्न पूर्वक अपनी रक्षा करनी चाहिये, पर रण में उसकी भी उपेक्षा कर देनी चाहिये, ।

३.

कृतौ विवाहे न्यसने रिपुस्ये
यशस्करे कर्मणि मित्रसंग्रहे ।

मित्रा मुनारीभ्वधनेषु वंशुषु
धनस्यपस्तेषु न गण्यते कुपैः ॥ १३२ ॥

यज्ञ, विवाह, दुग्ध, शत्रुनाश, यश बढ़ाने वाले कार्य, मित्रों का संग्रह, प्रिय स्त्री, गरीब वन्धु इनके लिए धन का खर्च होना बुद्धिमान नहीं गिनते ।

स्वाम्यमात्म्यञ्च राज्यं च कोशो दुर्गं बलं सुदृढम् ।

एतावदुच्यते राज्यं सम्बुद्धिम्यवाप्तयम् ॥ १३३ ॥

राजा, मन्त्री, राज्य, पशुना, किला, सेना और मित्र ये ही राज्य कहे जाते हैं । यह राज्य पराक्रम और बुद्धि पर स्थित है ।

संधि विग्रह याकानि संस्थितिः संभवस्तथा ।

द्वैषोभावश्चभूपानो वरगुणाः परिकीर्तिताः ॥ १३४ ॥

संधि, विग्रह, शाकमन, घेरा, शरणागत, भेद ये राजाओं के छः गुण कहे जाते हैं ।

वत्साहस्य प्रभोर्मत्स्यैव शक्तित्रयम् जगुः ।

भात्मनः सुदृढरथैवतन्मित्रं त्योदयाश्रयः ॥ १३५ ॥

राजा की तीन शक्तियाँ होती हैं, उत्साह शक्ति, प्रभु शक्ति और मन्त्र शक्ति । उसका उदय भी तीन प्रकार का होता है, भयता उदय, मित्र का उदय और मित्र के मित्र का उदय ।

बध करते हैं, जैसे, नङ्गे चदन वाले मनुष्य का बध तीसे बध करते हैं ।

कोहं कै देशकालौ समविषम गुणा करणः के सहायः

का शक्तिः कोम्युपायः फलमिद्वचक्रियाकीदृशीदैवम्पर ।

संपत्तौ को नियधः प्रविदित वचनस्योत्तरं किंनुमेत्या-

दित्येवं कार्यसिद्धावबहितमनसोहस्तगाः संपदः सुः ॥१॥

मैं कौन हूँ, कैसा देश काल है, अच्छे घुरे गुण वाले किन शत्रु हैं और कितने सहायक हैं, मेरी शक्ति क्या है, उपाय क्या है, इसका फल क्या है, माग्य अनुकूल है कि नहीं, सम्पत्ति में रुकावट क्या है, मेरा रह य प्रकट होने पर मैं क्या उत्तर दूँगा, इस प्रकार कार्य-साधन में जो सावधान रहने की सम्पत्ति उनके हाथ में रहती है ।

स्वधर्मं राघवश्चैव दधमे दशकंडकः ।

एवं वदति लोकाश्च यतो धर्मस्ततो जयः ॥ १२० ॥

स्वधर्म में रामचन्द्र थे और अधर्म में रावण । लोग कहते हैं कि जिधर धर्म रहता है उधर विजय रहती है । रामचन्द्र विजयी हुए, और रावण पराजित ।

धर्मः प्रागेवर्त्तिभ्यः सचिवगतमतिः सर्वंदा श्रीकृतीषो

प्रष्ट्यापीरोपरांगी मृदु कटिन रमो योऽज्ञोऽपी च कामे ।

शैवं शोऽज्ञानुदृशं वरपवनचरैर्महलं वीरवर्गीव-

भास्मायम्वेनरक्षोराण शिरमिदुनः सोऽविनायैःशरीषः ॥१२१॥

धर्म का विचार पहिले करना चाहिए, मन्त्री को करना मन बनला कर सब राज्यकार्य सदा देखना चाहिए, क्रोध और रोग छिड़ाना चाहिए, समय पर कामना या कटिन राग को योजना करना चाहिए : प्रज्ञामन्त्रार्थी जानें वे विध्वंसारी

घरों के द्वारा जानना चाहिये, अपने राज्य का निरीक्षण करना चाहिये, यद्यप्यर्थक अपनी रक्षा करनी चाहिये, पर रण में उसकी भी उपेक्षा कर देनेी चाहिये, ।

८

कनो विवाहे व्यसने त्रिपुल्लवे

यशस्करे कर्मणि मिशसंग्रहे ।

मित्रा मुनारीभ्यधनेषु बंधुषु

घनव्यवस्तेषु न गण्यते दुपैः ॥ १३२ ॥

यह, विवाह, दुःख, शत्रुनाश, यश यद्दाने वाले कार्य, मित्रों का संग्रह, मित्र स्त्रो, गरीब बन्धु इनके लिए घन का तर्क होना बुद्धिमान् नहीं गिनते ।

स्वाम्यमायमस्य राज्यं च कोशो दुर्गं बलं सुहृदः ।

एतावदुच्यते राज्यं सत्यं बुद्धिपराधयं ॥ १३३ ॥

राजा मन्त्री, राश्व, यशाना, क़िला, सेना और मित्र ये ही राज्य कहे जाते हैं । यह राज्य पराक्रम और बुद्धि पर स्थित है ।

संधि विग्रह वानानि सन्धितिः संधयस्तथा ।

द्वैघोमावदचभूषाणां वदगुणाः समिकोर्तिताः ॥ १३४ ॥

संधि, विग्रह, वाकमण, घेरा, शरणागत, भेद ये राजाओं के छः गुण कहे जाते हैं ।

अस्माकस्य अमेर्मकारैव शक्तिप्रयं जगुः ।

आत्मनः सुहृदरघैरतमित्रस्थेदपाक्षयः ॥ १३५ ॥

राजा की तीन शक्तियाँ होती हैं, उत्साह शक्ति, प्रभु शक्ति और मात्र शक्ति । उसका उदय भी तीन प्रकार का होता है, अपना उदय, मित्र का उदय और मित्र के मित्र का उदय ।

माम दाने भेद दंडा विस्तृताय चतुष्टयं ।

हस्त्यश्वरथगदानाः सेनांगत्याञ्चतुष्टयं ॥ १३१ ॥

साम, दान, दण्ड और भेद ये चार राजा के उपाय हैं। हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल ये चार सेना के अंग हैं।

दुष्टाविनीन शत्रूणां भयकृद्दण्डप्रथमम् ।

शस्त्रधारणमौघ्यस्य रथो विष्णुद्वप्रदापहं ॥ १३२ ॥

शस्त्र धारण करना दुष्ट और अधिनयी शत्रु को भयभीत करता है, यह एक मित्र के समान है, धूल का घोटक है तथा राक्षस, विष्णु और प्रह के दोषों को दूर करनेवाला है।

वर्षाभिलक्षणेन हिमाद्रिनां निवारणम् ।

राज्यलक्ष्मी गृहं वर्षा चतुष्टयं छत्रधारणं ॥ १३३ ॥

छत्र धारण करना वर्षा, हवा, धूल, धूप, शीत आदि से रक्षा करता है। राजा की लक्ष्मी का यह आश्रय है, वर्षा बढ़ानेवाला और नैर्घों का तेज बढ़ाने वाला है।

धामरं धीकरं दिव्यं राज्यशोभाकरं परं ।

सिंहासनं सुलैख्यं करं लोकानुरंजनं ॥ १३४ ॥

धामर धारण करने से शोभा होती है, उससे राज्य की भी शोभा होती है, यह दिव्य है। सिंहासन से सुख और ऐश्वर्य बढ़ता है और लोग प्रसन्न होते हैं।

सुमनो वर रक्षानां धारणं दिव्यं रूपकृतं ।

पापलक्ष्मीप्रशमनं चंदनाद्यनुलेपनं ॥ १३५ ॥

फूलों की माला और रत्नों की माला धारण करने से सुख होता है। चन्दन आदि के अनुलेपन से पाप दूर होता है, शोभा बढ़ती है।

स्नानं नाम मनः प्रसाद जनन दुःस्वप्न विष्वंसने-

शौचस्थापनं मलापहरणं संवर्धनं तेजसां ।

रूपोद्योतकं त्रिपुण्यमथनं कायाग्निं सदीपनं-

मारीचो य मनीहरं अमहरं स्नाने दरीतेगुणाः ॥ १४१ ॥

स्नान करने से मन प्रसन्न होता है, घुरे स्वप्न नहीं आते यह शुद्धि का स्थान है, मल स्वच्छ करता है, तेज बढ़ाता है, रूप बढ़ाता है, शत्रुओं को नष्ट करने वाला है, शरीर की अग्नि को शीत करने वाला है, स्त्रियों के लिए मनोहर है धकावट दूर करने वाला है । स्नान में ये दश गुण हैं ।

ताम्बूलं मुखरोगनाशिनिपुणं संवर्धनं तेजसो

निम्बं जादरवह्निवृद्धिजननं दुर्गन्धं दोषापहं ।

वक्त्रार्णकरणं महर्षजननं विद्वन्भूषाभरणे

कामस्थापनं समुद्रपकरं कदम्बा मुखस्थासर्वं ॥ १४२ ॥

ताम्बूल (पान) मुँह के रोगों को नष्ट करता है, तेज बढ़ाता है, जठराग्नि को बढ़ाता है और दुर्गन्ध नष्ट करता है मुँह की शोभा बढ़ाता है, मन प्रसन्न करता है, काव पर्यंक है, लक्ष्मी बढ़ाता है, और सुखी करता है ।

देवता तिथि विप्राणां पूजनं पापनाशनं ।

लोकद्वयेपि पुनरुद्दवानं धर्मं यशस्करं ॥ १४३ ॥

देवता भतिथि और ब्राह्मण की पूजा से पाप नष्ट होता है, दान से धर्म होता है यश बढ़ता है और इससे दोनों लोकों में कल्याण होता है ।

सुत भृत्य मुद्गरैरिस्वामि सदगुरुदैवते ।

एकैकोत्तराणि वृद्धा श्रीकृताः पत्नमूर्धनि ॥ १४४ ॥

पुत्र भृत्य मित्र शत्रु स्वामी गुरु मीर देवता इनको पर
 मित्रों में एक एक थी बटायें । अर्थात् पुत्र को एक श्री, भृत्य
 को दो, मित्र को तीन, शत्रु को चार, स्वामी को पाँच गुरु को
 छः मीर देवता को सात ।

राजानं प्रथमं विदुतनो भार्या ततोऽननं ।

राज्यमग्नितोकेन्द्रे कुतो भार्या कुतो धनं ॥ १४१ ॥

पहले राजा को प्राण करें तब रानी और पुनः धन राजा
 के बिना रानी कहाँ मिलेंगी और धन कहाँ मिलेगा ।

यः कुलाऽमित्राऽऽचारैरतिशुद्धः प्रतापवान् ।

धार्मिको नीतिशुशलः स स्वामी भुङ्गते सुखं ॥ १४२ ॥

जो कुलीन आचारचान् शुद्ध प्रतापी, धार्मिक और नीति
 निपुण हो वही संसार में स्वामी हो सकता है ।

कथं नाम न सेव्यं ते यत्नः परमेस्वराः ।

अचिरेनैव ये तुष्टाः पूरयन्ति मनोरथान् ॥ १४३ ॥

परमेश्वरों (धनियों) को क्यों न सेवा की जाय, जो शीघ्र
 ही प्रसन्न होकर मनोरथ पूर्ण करते हैं ।

शुद्धदामुपकार कारणात् द्विषतामप्यपकार कारणात् ।

मृग संभय इत्यतेतुपैज्जंडरं को न विभक्तिं केवळं ॥ १४४ ॥

मित्रों के उपकार करने के लिए और शत्रुओं के अपकार
 करने के लिए विद्वान् राजाश्रय चाहते हैं । केवल पेट तो
 कोई भी पाल लेता है ।

बालोऽपि नाऽधर्मतज्जो मनुष्य इति भूमिपः ।

महती देवतास्त्वेषा वररूपेण तिष्ठति ॥ १४५ ॥

यालक राजा का भी मनुष्य समझ कर तिरस्कार नहीं करना चाहिये, क्योंकि यह मनुष्य शरीरधारी एक यद्वा देवता है ।

वस्य प्रसादे पद्मास्ते विजयश्च पराक्रमे ।

मृत्युश्च वसति क्रोधे सर्वतेजोमयोहि सः ॥ १५० ॥

जिसकी प्रसन्नता में लक्ष्मी रहती हैं, पराक्रम में विजय, और क्रोध में मृत्यु, यह राजा का तेजोमय है ।

यस्मिन्नेवाऽधिकं चक्षुरारोहयति पार्थिवः ।

सुतेऽमान्येषु दासीने सलक्ष्म्याऽऽश्रीयते जनः ॥ १५१ ॥

राजा जिसकी ओर प्रेम से देखे, वह पुत्र हो, मन्त्री हो या उदासीन हो, वही लक्ष्मी का भाजन होता है ।

रामान् दुषुक्षति यदि क्षितिधेनुमन्तो-

सेनाऽप्यवसमिव लोकममुं दुषाण ।

तस्मिन्प्रसम्पदनिधौ परितुष्यमाने

नामा कलैः कलति कल्पलता भूमिः ॥ १५२ ॥

राजन् यदि तुम इस पृथिवी रूपी गौ को दूहना चाहते हो तो घड़ड़े के समान अपनी प्रज्ञा को पुष्ट करो, उसके अच्छी तरह पुष्ट हो जाने पर यह भूमि कल्पलता के समान अनेक फल देगी ।

सम्पाऽमृता च परुषा प्रियवादिनी च

हिंसा दयालुरपि चार्थपरा वदाम्बा ।

निष्कदशा प्रचुर निष्पदनाऽऽगमा च

वैश्याग्नेव नृपनीतिरनेकरूपा ॥ १५३ ॥

राजा की नीति वैश्या के समान अनेक रूप की होती है । कहीं सत्य, कहीं झूठी, कहीं कठोर, कहीं प्रियवादिनी, कहीं

हिंसक कहीं दयालु, कहीं लोभी, कहीं दानी, और कहीं सुखचर्ने वालों और कहीं खूब धन बटोरने वाली ।

राजस्त्वद्दृशनेनैव गलति त्रियितक्षणात् ।

रिपोः शस्त्रं कवेर्देन्यं नीवीवधोष्टृगीदृशां ॥ १५३ ॥

राजन् आपके दर्शनमात्र से ही तीन चीजें गिर जाती हैं शत्रु का शस्त्र, कवि की दोनता, और स्त्रियों का यस्त्र, अर्थात् आप धीर, दाता और सुन्दर हैं ।

आशा कीर्तिः पालनं ब्राह्मणानां दानं भोगो मित्र-संरक्षणं च ।

येषामेते षड्गुणा न प्रवृत्ताः कोऽर्थोतेषां पार्थिवापाधयेव ॥ १५४ ॥

जिसका हुक्म न चला, कीर्ति न हुई, जिसने ब्राह्मणों का पालन न किया, दान न दिया, भोग न किया, मित्रों की रक्षा न की, ये छः गुण जिसके न हुए, उसको राजा का श्राधित होने का क्या लाभ हुआ ।

बहुधा राज्यलाभेन यस्तोपस्रव भूयते ।

बहुधाराऽऽव लाभेन यस्तोपो मम भूयते ॥ १५५ ॥

राजन् अनेक राज्यों के लाभ से जो प्रसन्नता आपको हुई वही प्रसन्नता मोटी धार से घी मिलने के कारण मुझे हुई ।

राजसेवा मनुष्याणामसिचाराऽवलेह्यं ।

पद्मान्तपरिष्वंगो व्यालीवदन्तुर्धनं ॥ १५६ ॥

राजा की सेवा मनुष्यों के लिए तलवार को धार चाटना है, सिंह का आलिंगन करना है, और सर्पिणी का चुम्बन करना है ।

इष्टेषस्तु मुञ्चं निवस्तु मवनौगष्टेत् स राज्ञःसर्मा

कृशार्थी गिरमेव त्वमदिवदेत्कार्यं विदध्यात्कृती ।

भाहेसात्पनमत्रयेद्विधनेरावत्रयेद्वसमान्-

कुर्वीतारहृतिं जनस्य जनयेत्कस्यापिनाशकृतिः ॥ १५८ ॥

जो सुखपूर्वक राजनभा में रहना चाहे, उसे राज नभा
जाना चाहिए, उस विद्वान् को समा में उत्तम वचन बोलने
चाहिए, और अपना कार्य सिद्ध करना चाहिए, बिना पश्चिम
के मालिक से धन जमाय, मिथों को प्रसन्न करें, लोगों का
शुक्लार करें, पर अपकार किसी का न करें ।

अशुक्तं शुक्तं वा यदि निहितमहं न विमुक्ता-

स्तुपाहेतचित्त्वं जहमपि शुक्तं तस्य विमुक्तात् ।

विश्वानुर्यैः शुक्तं कथमपि समायागमित्रये-

स्वकार्यं संशुद्धेति नृनिदस्येव कथयेत् ॥ १५९ ॥

मृतं स्वामी योग्य अयोग्य जो कुछ बहे उसकी स्तुति करें,
उसके मृत-शुद्ध को भी प्रशंसा करें, समा में अपनी निरपृद्धता
का अभिप्राय करें, इस प्रकार जब राजा प्रसन्न हो जाय, तो
राज्य में अपना अभिप्राय कह सुनायें ।

निदृश्यं भिन्नं कर्म शुभदास्यपि पण्डितैः प्रका-

शयमानं शुभमवेदिनमीश्वराणां ।

जिस शत्रु ने शीघ्रही राज्य पाया है, प्रजा पर उसका दब दबा अभी नहीं बैठा है वह थोड़े ही परिश्रम से उखाड़ा जा सकता है । क्योंकि वह शीघ्र रोपा गया है इसलिए जड़ जमी नहीं है ।

सप्रतिषर्धं कार्यं प्रभुरभिर्गतु सहायवानेव ।

दृश्यन्त्यपि न पश्यति दीपेन विना स चक्षुरपि ॥ १६२ ॥

जिस कार्य में विघ्न है वैसे कार्य की सिद्धि बिना सहायक के नहीं होती । आँख वाला भी मनुष्य अन्धकार में बिना दीपक की सहायता के नहीं देख सकता ।

मित्रं स्वच्छतया रिपुं नयवलैतुर्ध्वं धनैरीश्वरं-

कार्येण द्विजमादरेण युवतिं प्रेम्णाशनैर्बोभवान् ।

आयुर्प्रस्तुतिभिर्गुरुं प्रणतिभिर्मूर्खं कथाभिर्बुधं-

विद्याभिरसिकरसेन सकलं शीलेन कुर्षाद्दशं ॥ १६३ ॥

शुद्धता से मित्र को, नीति से शत्रु को, लोभी को धन से, भु को कार्य से, ब्राह्मण के आदर से, युवती को प्रेम से, ग़ैजन से वयुधों को, स्तुति से गुरु को, खुशामद से मूर्ख को, विद्या से विद्वान् को, रस से रसिक को और शील से सब को धरा करे ।

